प्रथम संस्करण
सितम्बर १९६६

प्रकाशक :
अपरा प्रकाशन
४१ ए, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता-१

मुद्रक :
अपरा प्रिन्टर्स
४१ ए, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता-१

मूल्य : दस रुपये

बंगला के १९ शीर्षस्थ कथाकारों की स्वनिर्वाचित प्रणय कहानियाँ

•

अनुक्रम

•

ताराशंकर बन्द्योपाध्याय : बनजारिन

मनोज वसु : प्रतिशोध

प्रेमेन्द्र मित्र : राग

शिवराम चक्रवर्ती : प्रणय-संकट

आशापूर्णा देवी : कंगन

सुबोध घोष : आर्किड ५७

गजेन्द्रकुमार मित्र : समर्पण ७१

लीला मजूमदार : स्थल-पद्म ७९

विमल मित्र : मीनू-दी ८५

ज्योतिरिन्द्र नन्दी : टैक्सीवाला १०१

नरेन्द्रनाथ मित्र : श्वेत-मयूर १२२

नरेन्दु घोष : तृष्णा १४९

नारायण गंगोपाध्याय : एक और शरीर १६८

वाणी राय : मीडिया १८३

विमल कर : नीरजा २०३

रमापद चौधुरी : तीतर-रुदन का मैदान २१४

समरेश वसु : रेत का तूफ़ान २३०

कविता सिन्हा : अधखिले फूल की तितली २५१

शंकर : हनीमून २६०

बंगला-कथाकार : संक्षिप्त-परिचय २८७

•

अनुवादक

•

कुसुम खांटिया : कंगन, आर्किड, समर्पण, तीतर-रुदन का मैदान, रेत का तूफ़ान, हनीमून • पुष्पा देवड़ा : तृष्णा, एक और शरीर, नीरजा • सविता बनर्जी : राख, टैक्सीवाला • सुशीला सिंघी : मीडिया • डा० माहेश्वर : बनजारिन, श्वेत-मयूर, अधखिले फूल की तितली • मोहन ठाकौर : प्रतिशोध • छेदीलाल गुप्त : प्रणय-संकट • [illegible] : स्थल-पद्म • दिनेश : मीलू-दी

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय
१८९८

कथा-यात्रा के यात्रिक

मनोज वसु
१९०१

प्रेमेन्द्र मित्र
१९०४

शिवराम चक्रवर्ती
१९०५

आशापूर्णा देवी
१९०९

सुबोध घोष
१९०९

गजेन्द्रकुमार मित्र
१९०९

लीला मजुमदार

विमल मित्र
१९१२
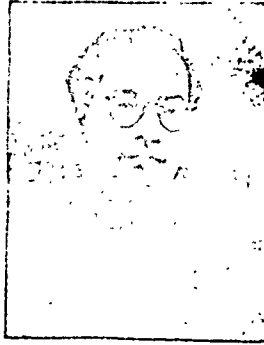
नरेन्द्रनाथ मित्र
१९१६

नारायण गंगोपाध्याय
१९१८

वाणी राय
१९१९

विमल कर
१९२१

रमापद चौधुरी
१९२२

कविता सिन्हा
१९३१

शंकर
१९३३

ज्योतिरिन्द्र नन्दी, नवेन्दु घोष और समरेश वसु के चित्र समय पर उपलब्ध नहीं होने के कारण नहीं दिये जा सके हैं।

ताराशंकर बन्दोपाध्याय

बनजारिन

शम्भू बाजीगर इस मेले में प्रति वर्ष आता है। उसके ठहरने का स्थान मां कंकाली के रजिस्टर में पक्के-बन्दोबस्त की तरह कायमी हो गया था। लोग कहते हैं बाजीगरी, मगर शम्भू कहता है इन्द्रजाल। छोटे-से तम्बू के प्रवेश-पथ के ऊपर ही एक कपड़े के साइन-बोर्ड पर लिखा है, 'इन्द्रजाल-सर्कस'। अक्षरों के एक ओर एक बाघ की तस्वीर और दूसरी ओर एक आदमी की, जिसके एक हाथ में खून से सनी तलवार है और दूसरे में एक कटा सिर। प्रवेश-शुल्क केवल दो पैसे। इन्द्र-जाल का अर्थ है, गोरखधंधे का खेल। भीतर कपड़ा लगा कर शम्भू पर्दे में एक मोटा लेन्स लगा देता है। ग्रामीण उसी लेन्स में आँख लगा कर मुग्ध विस्मय से देखते हैं 'अंग्रेजों का युद्ध', 'दिल्ली का बादशाह,' 'काबुल का पहाड़,' 'ताज बीबी का मकबरा' वगैरह-वगैरह। फिर शम्भू लोहे की रिंग लेकर खेल दिखलाता है और अन्त में एक किनारे से पर्दा उठाकर दिखाता है—बड़े-से पिंजड़े में बन्द एक चीता। चीते को बाहर निकाल कर उसके ऊपर शम्भू की स्त्री राधिका बन-जारिन सवारी करती है, चीते के सामने के दोनों पंजों को खींच कर अपने कंधों पर रख लेती है और ठीक चीते के सामने खड़ी हो कर उसका चुम्बन लेती है। सब से अन्त में चीते के मुंह में अपना बड़ा-सा जूड़ा ठूस देती है। लगता, अपना सिर चीते के जबड़ों में रख दिया है। सीधे-सादे ग्रामवासी स्तम्भित विस्मय से,

सांस रोके यह सब देखते और ताली पीटने लगते। इसके बाद ही खेल खत्म हो जाता, और दर्शक बाहर निकलते। दर्शकों के साथ ही शम्भू भी बाहर आ जाता और नगाड़ा पीटने लगता...धम्-धम्-धम्। नगाड़े के साथ ही पत्नी राधिका बनजारिन एक बड़ा-सा करताल बजाती है...झन्-झन्-झन्...।

बीच-बीच में शम्भू चिल्लाता है, 'वो...बड़ा...बाघ।'

'बड़ा बाघ क्या करता है ?' बनजारिन प्रश्न करती है।

'पक्षीराज घोड़ा बनता है, आदमी का चुम्बन लेता है और जीवित मनुष्य का सिर मुंह में रख लेता है, चबाता नहीं।'

वार्तालाप समाप्त करते ही वह अन्दर जाकर चीते को तेज नोंकवाली किसी चीज से कोंचता है। तुरन्त चीता दहाड़ने लगता है। तम्बू के सामने खड़ी जनता भय एवं कौतूहल से कांपता हृदय लिये तम्बू की ओर चल पड़ती है।

प्रवेश-द्वार के पास खड़ी बनजारिन दो-दो पैसे लेकर प्रवेश करने देती है।

इसके अतिरिक्त, बनजारिन के अपने भी कुछ खेल हैं। उसके पास एक बकरी, दो बन्दर और कुछेक सांप हैं। सवेरा होते ही वह अपना झोला-डंडा लेकर गांव में निकल पड़ती है और गृहस्थों के घरों में खेल दिखा कर, गाना गा कर, कुछ कमा लाती है।

इस बार ककाली के मेले में आने पर शम्भू बहुत नाराज हुआ। जाने कहाँ से एक और बाजीगर आकर डेरा डाले हुए था। शम्भू का स्थान अवश्य खाली था, किन्तु यह तम्बू उसके तम्बू से काफी बड़ा और नये तरीके का था। बाहर दो घोड़े और पास ही बैलगाड़ी पर एक बड़ा-सा पिंजड़ा भी। जरूर इस पिंजड़े में बाघ है।

तीनों बैलगाड़ियों से सामान उतार कर शम्भू ने गहरी घृणा और हिंस्र दृष्टि से नये तम्बू की ओर देखा और दबे गले से बोला, 'स्साला !'

उसका चेहरा भयानक हो उठा। शम्भू की आकृति में जैसे एक निष्ठुर हिंसक छाप है। क्रूर निष्ठुरता की परिचायक ताम्रवर्णी देह है उसकी, दीर्घ आकृति, सारी शारीरिक गठन में एक श्रीहीन कठोरता, मुंह पर ललाट के नीचे गहरी लकीर, सांप की तरह छोटी-छोटी गोल आंखें, उस पर वह वक्रदन्त भी है। सामने के दो दांत हिंस्र भाव से बाहर निकल कर दिन-रात जागते रहते हैं। हिंसा और क्रोध से वह और भी भयानक हो उठा।

राधिका भी क्रोध से, रोशनी में तेज धारवाली छुरी के समान तमतमा उठी। उसने कहा, 'अच्छा ठहरो बच्चू, बाघ के पिंजड़े में गेंहुअन छोड़ दूंगी।'

राधिका की उत्तेजना के स्पर्श से शम्भू और भी उत्तेजित होकर गुस्से में लम्बे डग भरता नये तम्बू में जा घुसा, 'कौन है यहां का मालिक, कौन है ?'

'क्या चाहिए ?' तम्बू के भीतर एक ओर का पर्दा हटा कर एक नौजवान बाहर आया। छः फीट से भी अधिक लम्बा, देह का प्रत्येक अवयव दृढ एवं सबल, फिर भी देख कर आंखें जुड़ा जायं, ऐसी लम्बी छरहरी देह। अरबी घोड़े का शरीर जैसे दमकता है, वैसा ही एक लावण्य झरा पड़ता है उसके छरहरे लम्बे शरीर से। सांवला रंग, लम्बी नाक, साधारण आंखें, पतले होंठो के ऊपर जैसे तूलिका से अङ्कित नुकीली मूछें, माथे पर झूलती लटें, गले में सोने की तावीज। वह सम्मुख आ खड़ा हुआ। दोनों एक-दूसरे की आंखो से आंखें मिलाये खड़े थे।

'क्या चाहिए ?' नये बाजीगर ने फिर प्रश्न किया। स्वर के साथ-साथ शराब की कड़ी गन्ध शम्भू के नथुनों के आस-पास भरभरा उठी।

शम्भू ने खट् से अपने दाहिने हाथ से उसका बायां हाथ पकड़ लिया और कहा, 'यह जगह हमारी है। मैं आज पाच साल से यही बैठता आ रहा हू।'

छोकरे ने भी उसी प्रकार झट् अपने दाहिने हाथ से शम्भू के बांये हाथ को दबोच लिया। उन्मत्त हंसी गूंजी। बोला, 'हो सकता है। आओ, पहले थोड़ी शराब चक्खो...।'

शम्भू के हृदय में जैसे जलतरंग पर कोई द्रुत रागिनी बज उठी। बोला, 'कितनी बोतलें हैं तुम्हारे पास पट्ठे, शराब पिलाने को ?'

छोकरा शम्भू की गर्दन के पीछे ताक कर अवाक् हो गया, वहां राधिका खड़ी थी। काली सांपिन की तरह लम्बी, छरहरी बनजारिन की सारी देह जैसे शराब में भिगोई हुई है। उसकी घनी काली लटों में, सफेद रेखा की तरह पतली माग में, नुकीली नासिका में, खिंची अधखुली दो आंखो की मदिर दृष्टि में, सुघर ठोड़ी में, सर्वाङ्ग में मादकता है। वह जैसे मदिरा के समुद्र में नहा उठा। मदिरा जैसे उसके सर्वाङ्ग से छलक रही है। महुआ-फूलों की गन्ध जैसे सांसो में मादकता भर देती है, बनजारिन का गेहुंआ सौन्दर्य भी आंखो में ऐसा ही नशा जगा रहा है। राधिका ही नही, हर बनजारा लड़की का यह जातिगत रूप-वैशिष्ट्य है। इसी वैशिष्ट्य ने राधिका के सौन्दर्य में एक प्रतीक की सृष्टि कर दी है, किन्तु उसकी मोहक मादकता के पीछे छुरी की धार-का-सा पैनापन है। उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में जिस हिंस्र एवं तीक्ष्ण उग्रता का आभास है, वह मोहमत्त पुरुष को भी जैसे तर्जनी दिखाकर जड़ कर देती है, भय का संचार कर देती है, मानो उसे हृदय से लगाते ही हृत्पिण्ड तक छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

राधिका की 'खिल-खिल' रुकती ही नही। वह नये बाजीगर की विस्मयमुग्ध स्तब्धता

को लक्ष्य कर के बोली, 'हुजूर की बोलती क्यों बन्द हो गयी ?'

इस बार बाजीगर हंस कर बोला, 'मैं बनजारे का बच्चा हूं, बनजारे के घर शराब की कमी ! आओ ।'

बात सच है । यह जाति कभी भी शराब खरीद कर नहीं पीती । ये चोरी-छिपे शराब चुराते हैं, पकड़े जाते हैं, जेल भी जाते हैं, फिर भी स्वभाव नहीं छोड़ते अपना । सरकार की दृष्टि में भी इनका यह अपराध अत्यन्त नगण्य मान लिया गया है ।

शम्भू के कलेजे में सांस अटक गयी । यह भी उसकी बिरादरी का निकल आया, नहीं तो...। वह राधिका की ओर कठोर दृष्टि से ताक कर बोला, 'तू क्यों आई यहां ?'

राधिका फिर खिलखिला उठी, 'मर तू, मैं क्या शराब नहीं चक्खूंगी ?'

तम्बू के एक छोटे-से कमरे में मद-गोष्ठी जमी । चारों ओर हड्डियों के टुकड़े बिखरे हुए थे, एक पत्ते में उस समय भी थोड़ा-सा मांस रखा हुआ था, दूसरे पत्ते में प्याज और मिर्चें, तथा थोड़ा-सा नमक । दो बोतलें लुढ़की हुई हैं और एक आधी भरी रखी है । एक अर्धनग्न बनजारिन पास ही मदहोश पड़ी है, उसके सिर के बाल धूल में लिथड़ रहे हैं, दोनों हाथ जमीन पर आगे की ओर फैले हुए हैं और होठों पर अभी तक शराब की फेन है । हृष्ट-पुष्ट, शान्त-शिष्ट चेहरा है उसका । राधिका उसे देख कर एक बार फिर खिलखिला उठी, बोली, 'तुम्हारी बनजारिन है ? कैसी केले के कटे पेड़ की तरह पड़ी है, जी !'

नया बाजीगर मुसकुराया । डगमगाते हुए थोड़ी दूर जाकर एक जगह से मिट्टी हटा कर दो बोतलें निकालीं ।

शराब पीते-पीते बातें कर रहे थे केवल राधिका और नया बाजीगर । शम्भू नशे के बावजूद गंभीर होकर बैठा था । पहला चुक्कड़ पीकर ही राधिका बोली, 'क्या नाम है तुम्हारा, बाजीगर ?'

नया बाजीगर हरी मिर्च को दांतों से कुतरता हुआ बोला, 'नाम सुनकर मुझे गाली दोगी, बनजारिन ।'

'काहे ?'

'नाम, किसन बनजारा है ।'

'तो क्या, गाली दूंगी काहे ?'

'तुम्हारा नाम जो राधिका है, इसीलिए ।'

राधिका हंसते-हंसते लोट-पोट हो गयी । दूसरे ही पल जाने क्या एक चीज अपने कपड़ों में से निकाल कर नये बाजीगर के ऊपर फेंकती हुई बोली, 'तो लो,

कालिया-दमन करो किसन, देखू!'

शम्भू चंचल हो उठा, किन्तु किसन बनजारे ने फुर्ती से उस चीज को हाथ के झटके से जमीन पर गिरा दिया। एक काला गेहुंअन का बच्चा था। आहत सर्प-शिशु हिस्-हिस् करता हुआ फन उठा कर डंसने दौड़ा। शम्भू चीत्कार कर उठा, 'आ-कामा' अर्थात् विष के दांत अभी तोड़े नहीं गये है। इस बीच किसन ने सांप की गर्दन को बांये हाथ से दबा कर हंसना आरंभ कर दिया था। हंसते-हंसते ही उसने टेंट से एक छुरी निकाली और दांये हाथ में पकड़ कर दांत से खोल ली और सांप के विष के दांत तथा थैली काट कर सांप को फिर राधिका की देह पर फेंक दिया। राधिका ने सांप को बांये हाथ में पकड़ लिया, किन्तु सांप की तरह ही वह क्रोध से फुफकार उठी, 'हमारे सांप को तूने कमाया क्यों?'

किसन बोला, 'तूने जो कहा दमन करने को।' और वह हो-हो कर हंस पड़ा। तुरन्त राधिका उठकर तम्बू से बाहर हो गयी।

सन्ध्या के पूर्व ही।

नये तम्बू में आज से ही खेल दिखाया जायेगा। वहां खूब आयोजन आरंभ हो गया है। बाहर मचान बंध गया है और उस पर बाजा बज रहा है। पेट्रोमैक्स जलाया जा रहा है। राधिका अपने छोटे तम्बू के बाहर आकर खड़ी हो गयी। उन्होंने खेल दिखाने वाला बड़ा तम्बू अभी खड़ा नहीं किया है। राधिका की दोनों आंखें जैसे हिंस्र-भाव से प्रज्ज्वलित हो उठी हैं।

शम्भू पास के ही एक पेड़ के नीचे नमाज पढ़ रहा है। थोड़ा हट कर दूसरे पेड़ के बगल में किसन भी नमाज पढ़ रहा है। बनजारों की भी विचित्र जात है। पूछने पर बतायेंगे 'बनजारा'। धर्म इस्लाम। आचार में पूरे हिन्दू, मनसा देवी की पूजा करते हैं, मंगलचण्डी और षष्ठी का व्रत रखते हैं, जमीन पर साष्टांग गिर कर काली-दुर्गा को प्रणाम करते हैं और नाम रखते हैं शम्भु, शिव, किसन, हरी, काली, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी। हिन्दू पुराणों की कहानियां उन्हें कंठस्थ हैं। एक ऐसा ही सम्प्रदाय पर्दे पर चित्र दिखा कर हिन्दू पुराणों की कहानी गाता है। ये अपने को पटुआ कहते हैं,—चित्रकारों की जाति। विवाह, लेन-देन आदि पूरापूरी इस्लामी प्रथा से नहीं होता, उनके सम्प्रदाय के अपने अलग नियम हैं। फिर भी शादी मुल्ला ही कराता है, मरने पर जलाते नहीं, दफनाते हैं। बनजारे जीविका के लिए सांप पकड़ते हैं, सांप नचा कर गाना गाते हैं, बकरी और बन्दर लेकर खेल दिखाते हैं। बहुत हुआ तो कोई साहसी बनजारा इसी प्रकार तम्बू लगा कर बाघ का खेल दिखाता है, किन्तु इस नये बाजीगर के समान बड़ा तम्बू

राधिका जल्दी से तम्बू में घुस गयी। मिट्टी हटा कर देखा, शराब की तीन बोतलें मौजूद थीं। उसने एक कपड़ा लेकर तीनों बोतलों को उसमें बांध लिया और पोटली को इस तरह गोद में ले लिया, जैसे बड़े जतन से वह कोई शिशु गोद में उठाये हो।

तम्बू के बीच में किसन गहरी नींद सो रहा था। उसे पांव से ठेल कर राधिका बोली, 'पुलिस आई है। दरवाजे पर है। उठ, बाहर निकल।'

और वह बड़े मजे में दूध पीते हुए बच्चे को लेकर तम्बू से बाहर हो गयी। उसके पीछे-पीछे आकर किसन दारोगा के सामने खड़ा हो गया।

'यह तम्बू तेरा है ?' दारोगा ने पूछा।

'जी हजूर।' सलाम करके किसन बोला।

'तम्बू की तलाशी लेनी है। शराब है कि नहीं, देखूंगा।'

इस बीच शिशु को सीने से चिपकाये बनजारिन भीड़ की जलराशि में जलबिन्दु की तरह खो गई थी।

शम्भू गुम-सुम बैठा है। राधिका औंधी पड़ी फूट-फूटकर रो रही है। शम्भू ने बड़ी निर्दयता से उसे पीटा है। शम्भू के लौटते ही उसने हंसते-हंसते शम्भू के शरीर पर लोट-पोट कर बताया था कि उसने कैसे पुलिस की आंखों में धूल झोंकी थी।

'चूना लगा दिया दारोगा को भी।'

शम्भू क्रोधित दृष्टि से चुपचाप राधिका को देखता रहा। राधिका का इस ओर ध्यान ही नहीं था। वह हंसती हुई बोली, 'खाओगे कुछ ?'

अचानक शम्भू ने अप्रत्याशित भाव से उसकी चोटी पकड़ ली और निर्ममता से प्रहार करने लगा।

'सब माटी कर दिया तूने। उसको जेहल भेजवाने के लिए मैं पुलिस को बोल आया था और तू यह करतूत कर आई।'

राधिका सहसा भीषण रूप से उग्र हो उठी, किन्तु शम्भू की पूरी बात सुनते ही उसे कल रात की बात याद हो आई। सच, यही बात तो उसने कही थी। और उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया, चुप-चाप मार सहती रही और जमीन पर औंधे मुंह पड़ी सिसकती रही।

आज अचानक इस तम्बू [illegible]

अत्यन्त जीर्ण पुरानी वाडिस है। और समय होता तो वह बालों की दो चोटियां बना कर दोनों कंधों कर झुला लेती, मगर आज उसने चोटी नही की, अपनी हर प्रकार की दीनता और जीर्णता के प्रति घृणा और क्षोभ से डूब मरने को जी कर रहा था उसका। उस तम्बू में बिल्ली की तरह गोल चेहरे तथा बुढ़िया की तरह थुलथुल औरत ने पहना था टाइट पाजामा और उसके ऊपर साटन का चमकदार जांघिया और कंचुकी की तरह की बाडिस। वैसी बदसूरत औरत भी जैसे सुन्दरी लग रही थी। उनके नगाड़े के स्वर में कांसे-पीतल के बर्तन की तरह एक झङ्कार देर तक झन-झनाती रहती थी। और न जाने कब का पुराना टपटपाता हुआ एक यह नगाड़ा, छि !

फिर भी वह आप्राण चेष्टा कर रही है, जोर से ताली पीट रही है।

शम्भू नगाड़ा बजाना रोक कर कहता है, 'ये...बड़ा बाघ।'

राधिका ने रुंधे गले को साफ करके किसी प्रकार पूछा, 'बड़ा बाघ क्या करता है ?'

शम्भू ने बड़े उत्साह से ही कहा, 'पक्षीराज घोड़ा बनता है, आदमी से लड़ता है। आदमी का सिर मुंह में रखता है, चबाता नही।'

फिर वह कूद कर अन्दर गया और चीते को जोर से कोंचा। वृद्ध वनचारी भयानक आर्तनाद की तरह गरज उठा।

साथ-साथ उस तम्बू से सबल पशु की तरुण, हिंस्र, क्रुद्ध गर्जना गूंज उठी। राधिका तब भी मचान पर खड़ी थी। उसके रोंगटे खड़े हो गये। क्रूर हिंसक दृष्टि से उसने उस मचान की ओर ताका, देखा, किसन खड़ा हंस रहा है। राधिका से नजर मिलते ही उसने हांक दी, 'फिर एक बार।'

और तुरन्त उस तम्बू के भीतर से उसका बाघ फिर प्रबल गर्जन से हुंकार उठा। राधिका की आंखों में खून उतर आया। और जनता किसन के तम्बू में नदी की तरह उमड़ी पड़ रही थी।

शम्भू के तम्बू में थोड़े-से लोग सस्ते में मजा लूटने के लिए घुसे। खेल खतम करने पर आये हुए थोड़े से पैसों को मुट्ठी में बांधे भयानक हिंस्र मुख से शम्भू चुपचाप बैठा रहा। जल्दी से राधिका मेले में निकल पड़ी। थोड़ी देर बाद ही वह जाने किस चीज का एक टिन लेकर हाजिर हुई।

अपनी विरक्ति के बावजूद शम्भू ने प्रश्न किया, 'यह क्या है ?'

'केरासिन, उस तम्बू में आग लगाऊंगी। टीना पूरा नही मिला, दो सेर कमती है।' उसकी आंखों में लपटें उठ रही थी।

शम्भू की नजर भी भभक उठी, 'ले आ शराब।'

शराब पीते-पीते राधिका ने कहा, 'आह ! धू-धू करके भस्म होगा जब...।' वह खिलखिला पड़ी। वह अंधेरे में ही बाहर आ खड़ी हुई। उस तम्बू में अभी खेल हो रहा था। तम्बू के छेद में से दीख रहा था। किसन झूले का करतब दिखा रहा था। उफ् ! अचानक एक झूला छोड़ कर ऊपर ही उसने दूसरा पकड़ लिया। दर्शकों ने ताली पीटी।

शम्भू ने उसकी कुहनी छू कर कहा, 'अभी नहीं, आधी रात में।'

वे फिर शराब लेकर बैठ गये।

सारा मेला शान्त, स्तब्ध है। सब अन्धकार से ढंका हुआ है। बनजारिन धीरे-धीरे उठी, एक पल के लिए भी उसकी आंख नहीं लगी थी।

हृदय की एक अजीब कशमकश और मन की एक दुर्दान्त पीड़ा के बीच उसका सारा अस्तित्व तना हुआ था। वह बाहर आकर खड़ी हुई। गाढ़ा अंधेरा जमाट हुआ पड़ा था। वह एक बार बाहर इधर-से-उधर तक घूम आई, कहीं कोई जाग्रत नहीं। वह आकर तम्बू में घुसी। 'फक् !' एक दियासलाई की कांटी जलाई उसने। किरासिन तेल का टिन पड़ा था। फिर वह शम्भू को बुलाने गयी। शीत-ग्रस्त कुत्ते की तरह गुड़ी-मुड़ी होकर वह खर्राटे भर रहा था। क्रोध और घृणा से उसका मन छिः-छिः कर उठा। कुत्ता, बेइज्जती भूल गया, नींद लगी है उसे! उसने शम्भू को नहीं जगाया। दियासलाई जूड़े में खोंस ली। हाथ में टिन लेकर वह अकेली बाहर आ गई।

पीछे से ही ठीक होगा। इधर सब जल कर राख हो जाय तब कहीं उधर मेले के लोग देख पावें। क्रूर हिंस्र सर्पिणी के समान ही वह अंधकार में सनसनाती हुई निकल गयी। तम्बू के पीछे आकर उसने टिन नीचे रख दिया और हांफने लगी। चुपचाप उसने दो मिनट सांस ली। बैठे-बैठे तम्बू के अन्दर का दृश्य देखने के लिए उसने कनात को ऊपर उठाकर पेट के बल लेट कर सिर घुसा दिया। सारा तम्बू अंधेरे में डूबा है। सांप की तरह ही पेट के बल रेंगती हुई बनजारिन तम्बू के बीच में आ खड़ी हुई। जूड़े में से दियासलाई निकाल कर उसने एक कांटी जलाई। उसके पास ही किसन एक असुर के समान जमीन पर पड़ा खर्राटे भर रहा था। राधिका के हाथ में कांटी जलती रही। आह ! किसन के कठोर मुख पर कैसा साहस है ? ओह, क्या चौड़ा-चकला सीना है, और बांहों की मछलियां...! उसके अगल-बगल कोड़े के दागों के निशान हैं, [illegible] घोड़े की पीठ पर [illegible] है किसन। उफ् ! उसके कंधे पर कितना बड़ा [illegible] है, दुर्दान्त [illegible] बाघ के पंजे का [illegible] आकार। [illegible] हुई दियासलाई बुझ गयी।

राधिका के कलेजे में जैसे कुछ मथने लगा, उसी प्रकार जैसे पहली बार शम्भू को देख कर हुआ था। नहीं, आज का आलोड़न उससे भी भीषण है। पागल बन-जारिन पल भर में जो कर बैठी, उसने उसकी कल्पना भी नहीं की थी। वह उन्मत्त आवेग में किसन के सीने से चिपट गयी।

किसन जाग पड़ा, मगर चौंका नहीं, पुष्ट, क्षीण, कोमल देह को गाढ़ आलिंगन में बांध कर बोला, 'कौन, राधी ?'

उसके मुह पर हथेली दबाकर राधिका बोली, 'हां, चुप।'

किसन ने चुम्बनों से उसका चेहरा ढंक दिया, बोला, 'ठहर, शराब लाता हू।'

'ना, उठ, चल, यहां से अभी भागें हम।'

राधिका अंधेरे में हांफ रही थी।

'कहां ?' किसन ने पूछा।

'कही...दूर देस।'

'दूर देस ? और यह तम्बू-अम्बू ?'

'भाड़ में जाय। शम्भू ले लेगा। तू भी तो उसकी राधिका को लेकर उसका दाम नहीं देगा।'

और वह धीमे स्वर में किलक उठी।

उन्मत्त बनजारिन, दुरन्त यौवन से उमड़ती। किसन ने दुविधा नहीं की, बोला, 'चल।'

चलने के पहले राधिका एक बार रुकी, बोली, 'रुक।' उसने किरासिन शम्भू के जर्जर तम्बू पर उलट दिया और टिन घास पर फेंक दिया।

'चल अब,' उसने कहा। दियासलाई निकाल कर जलायी और तेल-सनी घास में छुला दी।
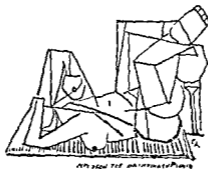
खिलखिला कर बोली, 'मर बुड्ढे !'

मनोज बसु

प्रतिशोध

[illegible] कलकत्ते से आकर के पहले चिट्ठी भी लिखवाई था। पता लिख कर देकर, अनजान नहीं था। कुंडी खटखटाई, सब खामोश। मैं कुंडी बजाते जा रहा था। सहसा आवाज आई, 'कौन है?'

किवाड़ के पीछे से ही आवाज थी। मैंने अपना नाम बताया। पांच वर्ष बीत जाने पर भी भूलना मुमकिन नहीं था। फिर भी अपने गांव का नाम बताया और कहा, 'तुम्हारे मामा ने कुछ सामान भिजवाये हैं।'

रीना बोली, 'अरे मगन, दरवाजा खोल कर बैठकखाने में बैठा दे।...मैं आ रही हूँ, पंकज दा।'

मगर है कहां मगन? कोई आवाज नहीं आ रही। बरसात जोरों की पड़ रही थी। जिसका मैं अनिता के घर से रेन-कोट मांग लाया था। अब भाग्य को कोसता खड़ा हूं। रीना का मामला न होता तो कभी का चला गया होता। पांच वर्षों के बाद विवाहिता रीना कैसी लगती है, देखने का लोभ था। रीना का विवाह नरनाथ के साथ हुआ था। ग्रेजुएट, जापानी दूतावास में काम करता था, अच्छी तनख्वाह थी। घर बसा कर पति-पत्नी अत्यन्त सुखी हैं। कालाचांद काका ने ही यह सब बताया था। जब मौका मिला है तो उनका मुख देख ही लिया जाय। लड़की का भाग्य अच्छा है, जो मेरे पल्ले पड़ते-पड़ते बच गयी।

पांच साल पहले स्कूल-फाइनल की परीक्षा दी थी। पढ़ाई-लिखाई में यों भी अच्छा था, उस पर तीन-तीन प्राइवेट ट्यूटर। स्कालरशिप हाथ से निकल भी जाय तो भी डिस्टिंक्शन तो कई मिलेंगे ही। इन्ही दिनों कालाचांद काका की मां के श्राद्ध में बहुत-भोजियां आयीं। रीना और उसकी मां दोनों। उस समय रीना किशोरी थी, राजकन्या जैसा रूप था उनका। गंवई गाव में ऐसी सुन्दर लड़की शायद ही कभी दीख पड़ती है। जैसा प्राय औरतों का तरीका है, श्राद्ध-काण्ड समाप्त हो जाने पर मां ने कालाचांद काका और रीना की मा से प्रस्ताव किया, 'ब्याह कौन अभी कर डालना है, अभी तो पंकज की पढाई बहुत बाकी है, 'उनकी' बड़ी इच्छा है पंकज को विलायत भेज कर बैरिस्टर बनाने की। बस, बात पक्की हो जाय, विलायत जाने के ठीक पहले यह शुभ कार्य निबटा लिया जायगा, ताकि किसी मेम से शादी करके न लौटे।'

पात्र हर प्रकार से योग्य था। उन लोगो को भी आपत्ति नही थी। पिताजी और भी एक कदम आगे बढ़ कर बोल उठे, 'लड़की सचमुच लक्ष्मी है। सिर्फ बात ही नही, एक गहना देकर आशीर्वाद दिये देता हू।'

आशीर्वाद का दिन तय हो गया, किन्तु उसके ठीक तीन दिन पहले अनायास वज्र-पात हुआ। हैजे से पिताजी का देहान्त हो गया। रीना वगैरह लौट गये। पिताजी का जैसा नवाबी कारबार था, उसको देखते सभी जानने को उत्सुक थे, कि वे कितने लाख रुपये छोड़ गये है। मगर छोड़ गये थे, वे अच्छा-खासा उधार। जान पड़ता है, उन्होंने उधार लेने के तरीकों में अद्भुत दक्षता हासिल कर ली थी। उधार देने वाले अन्दरूनी हालत का जरा भी अन्दाज नहीं लगा पाते थे। वे तो मानो उधार देकर स्वयं कृतार्थ होते थे। वे ही क्यों, मेरी मां तक को कभी भनक नही लगी।

फिर भी, पात्र तो मैं वाकई अच्छा ही था। कालाचांद काका बोले, 'कुछ परवाह नहीं। पंकज की पढाई का खर्च रीना के पिता देंगे। बैरिस्टर न हुआ तो क्या, वकालत पास कर सदर अदालत में वकील बन बैठेगा। किस्मत हुई तो वकील से हाकिम हो जायगा।'

किन्तु मां बदल गई, 'कालाचांद, अभागी है यह लड़की। आशीर्वाद करते ही सर्वनाश ले आई। कही बहू बन कर आ गई तो घर सहित सब कुछ चौपट कर डालेगी।'

उधर रीना की मां भी जो मन में आया बोल बैठी, 'बाल-बाल बच गये। रीना का भाग्य ही बलवान था। कैसा धोखेबाज था भला आदमी! ठीक देवों की मूर्ति-जैसा, ऊपर से रंग-पुता, भीतर से सब खोखला। विसर्जन होते ही सारी पोल

सुन्दर बीस तल्ले की हवाई इमारत बना डाली मैंने ?

पिताजी के साथ स्कूल के सेक्रेटरी की घनिष्टता थी। उनको जा पकड़ा, 'पिताजी की मृत्यु से बड़ी मुश्किल में फंस गया हूं। जैसे भी हो, कोई रास्ता निकालना ही पड़ेगा आपको।'

'यही तो मैं भी कहता हूं। बड़ी मुश्किल में फंसा दिया है तुमने। नये नियमों के अनुसार ग्रेजुएट से कम कोई मास्टर नहीं हो सकता। खैर, तुम्हें प्राइमरी सेक्शन में लिये लेता हूँ। तनख्वाह होगी पचीस रुपये।'

उस समय मुट्ठी में स्वर्ग मिल गया था मुझको।

सेक्रेटरी ने कहा था, 'लेकिन बीस रुपया चन्दा काट लिया जायगा। दस्तखत करोगे पचीस पर, मिलेंगे तुम्हें बीस काट कर। जो भी बच जाय। क्यों भाई, मुंह छोटा क्यों कर रहे हो ? सुबह-शाम तो तुम्हारी रहेगी। वही तो असल चीज है। मास्टर न होने पर तुम्हें कौन पहचानेगा ? ट्यूशन कौन देगा ? स्कूल की नौकरी का मतलब ही है मछली-भरे तालाब के किनारे बंसी ले कर बैठ जाना। हिम्मत हो, उतनी बार मछली पकड़ कर थैला भरते चलो। इसके लिये टिकट नहीं खरीदना पड़ा, उल्टे पांच रुपये महीने के मिलेंगे।'

नतीजे में पांच साल से बंसी सम्हाले हूं। क्लास में पढ़ाते वक्त जानता हूं, मछली का चारा लगाया जा रहा है। अच्छा पढ़ाकर नाम कमा लेने से ट्यूशन फंसाने में सुविधा हो जाती है। किन्तु बाजार का हाल खराब हो जाने के कारण अब ऐसी अनिश्चित आमदनी से काम नहीं चलता। असित के पिता, पंचानन हाल्दार, ट्रेडिंग कारपोरेशन के बड़े बाबू हैं। जमीन-जायदाद का झगड़ा मिटाने गांव आए थे। आखिर निरुपाय हो कर उनके पास गया, 'असित को नौकरी दिला दी है आपने, जैसे बने मुझे भी वही ले लीजिए।'

असित के साथ मेरा पुराना गहरा स्नेह है—हाल्दार बाबू को यह मालूम था। अतएव एक वाक्य में पत्ता नहीं काटा। बोले, 'जितना-कुछ पढ़े हो उस हिसाब से हमारे आफिस में दो प्रकार की नौकरी तुम्हें मिल सकती है।'

मैं उत्सुक कानों से उनकी बात सुन रहा था।

'एक तो जनरल मैनेजर की। आज जो वहां है, उन्होंने एक भी परीक्षा पास नहीं की। बड़ी मुश्किल से अंग्रेजी में दस्तखत कर पाते हैं वे। तनख्वाह है—ढाई हजार। लेकिन भैया, तुम्हें यह नौकरी नहीं मिल पायेगी। इसके लिये कुछ और भी क्वालिफिकेशन की जरूरत है। सीनियर पार्टनर का साला होना पड़ता है।'

चुरुट में लम्बा कश लगाते धुआं छोड़ते बोले, 'या फिर तुम मैनेजर के अर्दली हो सकते हो। पचीस रुपया माहवार की तनख्वाह होगी। लेकिन इसे पाने के लिये

कुछ तकदीर लगानी पड़ेगी। तकदीर माने समझे? रुपया।'
कलकत्ते लौट कर अभी बैठे थे, दौरा भी ठीक से शुरू नहीं। पत्र लिखा, 'एक नौकरी ठीक की है। अच्छी भी नहीं, उससे कुछ ऊंची। टाइम-कीपर की। पचहत्तर रुपये महीना। तकदीर होगी—चार महीने की तनख्वाह। तकदीर लेकर तुरन्त चले आओ। देर होने से नौकरी खाली नहीं रहेगी।'
तीन सौ रुपये—लेकिन उधार सौ तीन रुपये का भी नहीं है। अमित को गिड़गिड़ा कर लिखा, 'तुम नौकरी-पेशा आदमी हो। रुपये उधार दिलवा दो। नौकरी हाथ से निकल गई तो सपरिवार भूखों मरना पड़ेगा।'
अमित का जवाब मिला, 'कलकत्ता चले आओ। पहुंचने के साथ-साथ दस-दस रुपयों के दो नोट मेरी मुट्ठी में रख दिये। साथ ही थी गांव के उन मशहूर लोगों के पतों की लिस्ट जो कलकत्ता में आ बसे थे। कहने लगा, 'एक महीने का सिनेमा और रेस्टोरेंट खाना बन्द कर ये पैसे दे रहा हूं। आज की हालत में अकेला कोई पचहत्तर रुपये नहीं दे पाएगा। तुम्हें पते-ठिकाने दे रहा हूं। तिल से ताड़ बना लो। पिताजी को पकड़ो तो वे भी बीस-पच्चीस दे देंगे। खबरदार, मेरे पैसों का जिक्र उनसे मत करना।'
अभी कई दिन यही दर-दर घूमना चलेगा। सुना था, रीना पैसेवाली है। सोचा था कि उससे भी तरकीब से पैसों की बात उठाऊंगा। लेकिन यहां तो सब उलट-पलट हो गया। मानो बड़ा लाट साहब बन गया हूं मैं—मुझे कोई अभाव है ही नहीं। कष्ट है तो सिर्फ एक ही, कि इच्छानुसार किताबें नहीं पढ़ पाता।
देखा, एक अधबूढ़ा, दुबला-पतला आदमी ताक-झांक कर रहा है। पूछ रहा है, 'घर के लोग किधर हैं?'
'हिमांशु बाबू तो अभी आफिस में...' उस आदमी ने वाक्य पूरा नहीं करने दिया, 'हा-हा' करता हंस पड़ा, 'क्यों भाई, हिमांशु घटक किस आफिस में काम करते हैं? उन्हें नौकरी दिलवायी किसने? अच्छा चरका दिया है आपको। शायद उसकी पत्नी ने आपसे ऐसा कहा होगा। अच्छा, वह खुद कहां चली गई? बड़े झंझट में फंसा दिया उसने। देखते ही भाग निकलती है। घर मेरा तो नहीं है। मालिक को कब तक धोखा देता रहूं?'
'भागी नहीं हैं। नौकर कहीं बाहर निकल गया है; उसे ढूंढ़ने गई हैं। अभी वापस आ जायेंगी।'
'बहुत अच्छे! तो हिमांशु ने नौकर भी रख लिया है। लगता है नौकर-चाकर, रसोइया-महाराजिन सब-के-सब इस परिवार में अब आ जुटे हैं। खुद रात-दिन मुंह ढंक कर खटिया तोड़ता है, शराब पीकर नृशंस जानवर की तरह लक्ष्मी-

प्रतिमा-जैसी इस बेचारी को धुनना रहता है। मारते-मारते गरीब लड़की के शरीर को चलनी कर दिया है। देख कर रास्ता काट जाता है। अगर मालिक को बता दूं, कि तीन महीने को जगह चार महीने का भाड़ा बाकी है, तो मकान छोड़ने का नोटिस मिल जायगा बच्चू को। और फिर घर खाली कर सड़क पर रहना पड़ जायेगा। लेकिन इस बेचारी लड़की को भी उसके साथ ही निकलना पड़ेगा—यही सोच कर कुछ कह नहीं पाता।'
पास बैठ कर उससे सारी बात विस्तारपूर्वक सुनी। वह मकान-मालिक का आदमी था। घर खाली हो जाय तो मकान-मालिक के तो पौ-बारह हो जायें। पांच सौ रुपया सलामी और दुगना भाड़ा। लेकिन खुद गरीब होकर दूसरे गरीब का नुकसान करना अच्छी बात नहीं है। इतने दिनों वह मामला संभाले रहा है। पर अब अधिक दिन नहीं संभाल पायेगा। उसको भी तो अपनी नौकरी का डर है। अगर वह किसी तरह एक महीने का भाड़ा भी दे देता, तो काम चल जाता वह जानता है, कि हिमांशु के लिये वह भी दे पाना संभव नहीं है, किन्तु···
बाईस रुपया भाड़ा था। अमित के दिये दो नोट मेरी जेब में ही पड़े थे। राह-खर्च के लिए जो कुछ लेकर घर से निकला था उसमें से दो रुपये निकल सकते है। रीना की मां कहती फिरती थी, कि लड़की का भाग्य अच्छा था। मेरे साथ विवाह न होकर वह बच गयी थी। आज बदला लेने का बड़ा अच्छा मौका था। मुझे तो रोज ही अभाव रहते है, थोड़े और सही। पर यह मौका छोड़ना उचित नहीं होगा।
'लिखिये, रसीद लिखिये।'
रसीद देकर आदमी चला गया। हृदय की आग से धधकते हुए मैंने रसीद के पीछे लिखा, 'भाड़ा दिये जा रहा हूं। बुरा मत मानना, रीना। यह भी तो हो सकता था, कि तुम्हारा सारा भार मुझे ही वहन करना पड़ता। उस दशा में मैं ही भाड़ा चुकाता, भाग्य प्रबल था, जिसने उस स्थिति से बचा लिया।'
सोचा, रसीद को चादर के नीचे रख कर थोड़ा दबा दूं। सोते समय हाथ लगेगी। चादर उठाने लगा तो छि-छि, इतने मैले-कुचैले-तार-तार गद्दे-तकिये तो मुर्दे के साथ श्मशान भिजवा दिये जाते हैं। कोई उन पर सो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। बिना पाड़ की रंगीन चादर से उन्हें ढंक दिया गया है। कमरों में घूम-फिर कर और भी बहुत-कुछ देखा। उलट कर रखी बाल्टी के नीचे कई शराब की बोतलें दबी थीं—रास्ते पर आती रीना दिखाई दे रही थी, झटपट सब कुछ जैसा ढंका-दबा था, ज्यों-का-त्यों कर दिया।
दोने में मिठाई लाई थी वह। कहने लगी, 'गगन कहीं मिला ही नहीं। आजकल

कलकत्ते के नौकरों का हाल देख रहे हैं न ? खुद ही दुकान चली गयी।'

'बहुत अच्छा किया, रीना। अपना हाथ जगन्नाथ। जैसा वक्त जा रहा, है, उसमें दूसरे पर निर्भर न रहना ही अच्छा।'

भूख लग रही थी। पेट भर कर खाया और उठ खड़ा हुआ। रीना बोली, 'नौकरी हो जाने पर आइयेगा।'

'जरूर। बड़ा आनन्द मिला आज। तुम दोनों बहुत सुखी हो। कबूतर-कबूतरी की तरह, ऊंचे वृक्ष की डाल पर घोंसला बना कर गुटरगूं...'

रीना कल-कुण्ठ से कह रही थी, 'अरे, ऊंचा वृक्ष कहां मिल पाया ? ग्राउण्ड फ्लोर में रहती हूं। कलकत्ते में मकानों का जैसा अकाल है, सच मानिये, ऊपर के तल्ले को लेने की कितनी कोशिश की है हमने। अभी जो वहां रहते हैं, वे सौ रुपया भाड़ा देते हैं। हमने डेढ़ सौ तक लगा दिये हैं। लेकिन आज-कल किराये-दार को निकाल भी तो नहीं सकते !'

ट्राम में चढ़ कर रेन-कोट उतार दिया। पाकेट में क्या जाने कुछ गड़ा। यह क्या ? असित को लिखी मेरी चिट्ठी उस कम्बख्त ने इसी रेनकोट में ही डाल रखी थी। कहीं रीना ने पढ़ तो नहीं लिया वह पत्र ? पत्र की तह में रीना के झुमके रखे हुए थे। गजब हो गया ! चिट्ठी की दूसरी ओर मेरी ही तरह रीना ने भी लिख रखा था : 'आपको इतना पैसा देना है। किन्तु 'वे' घर पर रुपये नहीं रखते—बैंक में जमा कर देते हैं। आफिस से कब लौटें, कुछ ठीक नहीं है। ये दोनों झुमके रखे हैं। आजकल इनका फैशन नहीं है, कोई नहीं पहनता इन्हें। इन्हें बेच कर रुपये चुका दीजियेगा। बुरा मत मानियेगा, पंकजदा। एक दिन घनिष्ट होते-होते रह गई थी—हो जाती तो क्या वक्त-जरूरत मेरे गहने नहीं लेते आप ?'

प्रेमेन्द्र मित्र

राख

इस तरफ का बरामदा जरा संकरा है, नीचे उतरने की सीढ़ियां भी कहीं-कहीं से टूट-फूट गई हैं। फिर भी, शाम होने के पहले कुर्सियां, टेबिल इधर ही बिछाई जाती हैं, क्योंकि यहां से दूर पहाड़ों का दृश्य और नदियां दिखाई देती हैं।
हालांकि यह सफाई देना बेकार है। पहाड़ और नदियां आजकल कोई नहीं देखता, किसी जमाने में सचमुच ही इन दृश्यों को देखना, बड़ी बात थी। आज इन सब का कोई अर्थ नहीं है। पहले जहां आनन्द आता था, अब वह अर्थहीन अभ्यास में परिणत हो गया है।
बरामदे में इन कुर्सियों को बिछाने की बात को लेकर, इस घर की और भी कितनी ही चीजों का गम्भीर परिचय मिल सकता है। यह कहानी इसीलिये लिखी ही गई है।

सबसे पहले जगदीश बाबू यहां आकर बैठते हैं, यह नीची-सी आराम-कुर्सी उन्हीं के लिये निर्दिष्ट है। कुर्सी के दोनों हत्थों पर अपने बलिष्ठ दोनों हाथ और सामने के टूल पर दोनों पैर रखे निश्चिन्त निढाल होकर आराम से आंखें मूंदे पड़े रहना, उनकी विलासिता है।
अपनी इच्छा से वे बहुत कम बोलते हैं, हठात् देखने से लगेगा कि वे सो गये हैं।

आराम-कुर्सी में जगदीश बाबू के लिये या कोई स्थान न देख पा रहा लगता है, शायद वे मन नहीं पाते हैं। कभी-कभार उन्हें या आभास उन्हें नहीं है। लेकिन मन तो यह है कि थोड़ी ही देर बाद जगदीश बाबू कुछ आत्मिक परिश्रम से, आराम-कुर्सी में उन्हें दिखाई देते हैं। जगदीश बाबू आराम-प्रिय और आलसी भले जितने हों, उन्हें अपनी पत्नी के सुख-दुख का ख्याल तो रहता ही है।

लेकिन नहीं, जगदीश बाबू को उन्हें भी तकलीफ नहीं करनी पड़ी। बरामदे की सीढ़ियों से डाक्टर बाबू आते दिखाई दिये।

सुरमा बोल उठीं, 'रहने दो, रहने दो। तुम्हें अब जाने की जरूरत नहीं है।' फिर डाक्टर की ओर मुखातिब होकर बोलीं, 'डाक्टर! मेरी जर्दे की डिबिया लाकर दो, इकट्ठे बैठो। शायद बिस्तर पर छोड़ आई हूं। और हां, शायद घर की बत्ती बुझा कर नहीं आई हूं, उसे बुझा आना।'

आदेश नहीं, स्वर में अनुरोध की ही मिठास है, लेकिन यह मिठास भी कुछ यान्त्रिक है।

मिठास तो शायद सुरमा की बहुत-सी बातों में अब भी बहुत है। चेहरे में, स्वर में, और स्वभाव में भी।

उम्र के साथ-साथ चेहरे की चमक बेशक कम हो गई हो, फिर भी प्रसाधनों के कारण सुन्दर लगती है। सुरमा के सौन्दर्य का इतिहास अभी पूरी तरह भुलाया नहीं जा सकता। हालांकि उसका एक और इतिहास है। लेकिन नहीं, वह बात अभी नहीं।

डाक्टर बाबू घर की बत्ती बुझा कर, जर्दे की डिबिया लिये हुए, दूसरी ओर

सुरमा के आमने-सामने बैठ गये हैं, नदी और पहाड़ की ओर पीठ करके। नदी और पहाड़ को देखने का आग्रह उन्हें कभी भी नहीं रहा। बराबर वे इसी आसन पर, इसी तरह बैठते आये हैं।

शाम के धुंधलके में भी डाक्टर बाबू न जाने कैसे मलिन मालूम देते हैं, सिर्फ कपड़े और चेहरे से ही नहीं, उनके मन में भी वही उदासीनता है, जो उनके हर काम से प्रकट होती है।

यों पोशाक पहनने की रुचि में ही उदासीनता सबसे पहले दिखाई देती है। ढीला-ढाला बदरंग पेन्ट, उस पर बन्द गले का कोट। और वह भी बटन न होने के कारण खुला हुआ। इसी कोट को पहने वे सारे दिन रोगियों को देख कर लौटते हैं। एक तरफ की जेब, स्टेथिस्कोप के वजन से ही शायद फट-सी गयी है। कुछ कागज वहां से झांक रहे हैं। बालों को इन दिनों संवारने की चेष्टा की गई थी, मगर वह भी शायद अनिच्छा से ही।

डाक्टर बाबू के चेहरे की क्लान्त और उदासीन रेखायें, उनकी आंखों की उज्ज्वलता के कारण ही शायद स्पष्ट नहीं हो पाती हैं। इस निर्जीव-से व्यक्ति की बस आंखें ही हमेशा जगी रहती हैं। कौन जाने ये आंखें किसके लिए पहरा देती हैं।

कुछ देर तक खामोशी रही। सुरमा के पास पानदान रक्खा हुआ है, जो हमेशा उनके साथ रहता है। वे बड़े करीने से पान लगा रही हैं। जगदीश बाबू आराम-कुर्सी पर निश्चेष्ट लेटे हुए हैं। डाक्टर बाबू शायद सुरमा का पान लगाना समाप्त होने तक प्रतीक्षा में अपने हाथ के नाखूनों का बड़े ध्यान से निरीक्षण कर रहे हैं।

सुरमा ने पान लगा लिये और उन्हें मुंह में दाबे वे कई क्षणों तक सामने की ओर देखती हुई नीरव बैठी रहीं, फिर अचानक पूछा, 'तुम्हारा वह फूल का चारा आया, डाक्टर?'

जगदीश बाबू आंखें मूंदे ही बोल उठे, 'वह चारा आ चुका इससे तो आकाश-कुसुम मांगती तो सहज ही मिल जाता।'

सुरमा हंस पड़ीं। बोली, 'तुम डाक्टर को इतना अकर्मण्य क्यों समझते हो, भई? उस बार हमारे पानी के पम्प के लिए अगर डाक्टर व्यवस्था नहीं करते तो—हो पाता?'

आराम-कुर्सी में से ही निद्रित-सा स्वर सुनाई पड़ा, 'हां, सो तो नहीं होता। पर कोई और बनवा देता तो शायद पम्प से पानी जरूर आता।'

तीनों ही इस रसिकता के कारण हंस पड़े। इस घर में यह एक पुराना मजाक है। सुरमा बोलीं, 'सच, तुम किस तरह डाक्टरी करते हो, मैं यही सोचती हूं? लोग विश्वास के साथ तुम्हारी दवायें पीते हैं क्या?'

'क्यों नहीं पीते। एक वार सेवन करने के वाद अविश्वास करने का उन्हें मौका ही नहीं मिलता।' जगदीश वावू वोले।

सुरमा हंसती हुई, पानदान से .जरा-सा चूना जीभ में लेकर वोलीं, 'भई, तुम तो डाक्टर से वेकार कुढ़ते हो। तुम्हें तो उसका कुछ भी अच्छा दिखाई नहीं देता।'

'यह तो उनकी आंखों का दोप है। वहुत-सी अच्छी चीजें वे नहीं देख पाते। इतनी देर वाद डाक्टर वावू का मुंह खुला था।

सुरमा हंस कर वोलीं, 'यह सच है। आंखें मूंदे पड़े रहने से देख कैसे सकते हैं?'

'आंख क्या शौक से वन्द किये रहता हूं? आंखें अगर खोले रहता, तो अव तक न जाने कव का कुरुक्षेत्र मच जाता।'

सुरमाजी और जगदीश वावू के ठहाकों के वीच डाक्टर वावू का मौन कुछ खुलने लगा था। (सुरमा की ओर देखकर डाक्टर की आंखों में कोई दर्द तैरता नजर आता है क्या?)

हंसी रोक कर सुरमा ने कहा, 'धत्तेरे की! मैं तो भूली जा रही थी। डाक्टर, तुम्हें जरा एक वार उठना ही पड़ेगा।'

'अभी? क्यों?'

'अभी नहीं उठने से काम नहीं वनेगा। दादा ने न जाने क्या पार्सल भेजा है, कल से स्टेशन पर पड़ा है। ये तो जाने का समय नहीं निकाल पाये। अव तुम्हें ही जाकर छुड़ा लाना है।'

डाक्टर वावू कुछ अलसाये-से वोले, 'कल जाने से नहीं होगा?'

'क्यों नहीं, एक महीने वाद भी जा सकते हो। चीजें खो जाने के वाद अगर जा सको तो और भी अच्छा हो।' सुरमा के स्वर में मिठास से अधिक झुंझला-हट ही थी।

'एक रात में ही क्यों खो जायेगा?' डाक्टर ने संकुचित भाव से ही समझाने की चेष्टा की।

सुरमा ने जरा झल्लाकर कहा, 'तुम्हारे साथ मैं वहस नहीं करती। सीधे-सीधे कहो न, कि नहीं जा सकोगे। मेरा कहना ही झख मारना है।'

डाक्टर वावू अव लज्जित-से होकर उठ पड़े, 'मैं नहीं जाऊंगा, यह कहां कहा मैंने? मैं तो यह कह रहा था, कि एक रात वीतने में क्या फर्क पड़ जाता?'

'और रात वीत जाने के वाद ही जाने में तुम्हें ऐसी कौन-सी सुविधा हो जायेगी? कोई काम भी करने को नहीं है, चुपचाप वैठे ही तो रहते हो।'

वात गलत नहीं है। डाक्टर यहां चुपचाप वैठे रहने के लिए ही आते हैं, आज से ही नहीं, सालों से।

फिर भी डाक्टर बाबू अपना हैट उठाते हुए बोले, 'चलिए, आप भी चलिए न जगदीश बाबू। गाड़ी तो साथ है ही, जरा घूमना भी हो जायेगा।'
जगदीश बाबू से पहले सुरमा ने ही आपत्ति की, 'खूब रही, मैं यहां अकेली बैठी रहूंगी, क्यों ?'
डाक्टर जरा हंस कर बोले, 'अरे, तुम भी आओ न।'
'इससे तो अच्छा है, पूरा घर और पड़ोस, सभी एक पार्सल लेने के लिए चलें। सच में, तुम न जाने दिन-ब-दिन क्या होते जा रहे हो ?'
डाक्टर बाबू इस पर, बिना कुछ बोले ही सीढ़ियों से उतर गये। 'दिन-ब-दिन क्या होते जा रहे हो ?' गाड़ी में बैठकर स्टेशन की ओर जाते हुए डाक्टर इस बात को सोचेंगे क्या ? शायद नहीं। भावना और आवेग से उद्वेलित सागर, बहुत दिन पहले ही शान्त एवं स्थिर हो चुका है। वे दिन अब शायद याद भी नहीं आते। स्मृति के वे सारे पृष्ठ, शायद अब बहुत नीचे दब गये हैं। जीवन अब एक बंधे-बंधाये रूटीन से चलने का अभ्यस्त हो गया है।
आग कब राख होकर एकदम बुझ गई है, इस बात को वह जान भी नहीं पाये। आग एक दिन भभक उठी थी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु वह जैसे अब किसी अन्य की कहानी है। उस अमरेश को वह दूर से, अस्पष्ट रूप से, पहचान भर सकते हैं। उसके साथ अब उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

उस दिन वह लड़का सारे समाज के विरुद्ध दुस्साहस के साथ लड़ने से पीछे नहीं हटा था।
लड़की ने शायद भीत-स्वर में एक बार कहा था, 'तुम यहां भी चले आये ?'
'इससे भी दूर जा सकता था।'
'किन्तु···?'
'किन्तु ये लोग क्या सोचेंगे, यही कह रही हो न ? उससे अधिक तुमने क्या सोचा है, यह मेरे लिए बड़ी बात है।'
'मैं तो···' लड़की चुपचाप सिर नीचा किये रही। अमरेश उसके मुंह की ओर गौर से देख कर कह रहा था, 'तुम में सोचने तक का साहस नहीं है, सुरमा ?'
सुरमा ने मुंह उठा कर नरम स्वर में कहा, 'नहीं।'
'वही साहस पैदा करने तो मैं यहां आया हूं, सुरमा। मैं तुम्हारे उस साहस के लिये प्रतीक्षा करूंगा।'
सुरमा चुप थी। अमरेश ने फिर कहा, 'सोच रही होगी कि इस तरह कितने दिन तक प्रतीक्षा करूंगा—यही न ? जरूरत होगी तो चिरकाल तक, हालांकि ऐसा

होगा नहीं।'

शायद जगदीश बाबू उस समय कमरे में प्रवेश कर रहे थे। उनके आज वाले चेहरे से पहले वाले चेहरे में कोई फर्क नहीं था, नाटे कद के गोल-मटोल से व्यक्ति। शान्त और निरीह चेहरा। जीवन के शुरू से ही संघर्ष करते हुए, वे दुनियादारी में एकदम से निपुण हो चुके थे। लेकिन चेहरे से उसका आभास नहीं मिलता। देखने से लगता है, भाग्य हमेशा उन पर अयाचित अनुग्रह ही करता आया है। सुरमा को देखते हुए यह बात गलत भी नहीं थी।

उन्होंने कमरे में घुसते ही कहा, 'अभी ट्रेन के कपड़े भी नहीं बदले ? नहीं, नहीं, सुरमा, इस समय तुम इन्हें छोड़ दो। सारी रात ट्रेन में कष्ट सहन किया है। नहा-धोकर, खा-पीकर जरा सो लीजिये पहले।'

अमरेश ने हंस कर कहा था, 'छुट्टी न देने का अपराध मेरा है, उनका नहीं।'

जगदीश बाबू जोर से हंसे थे। हंसते हुए वे इतने बुरे दिखते हैं, अमरेश ने भी कभी नहीं सोचा था। सुरमा के पीछे की ओर खड़े हुए उनके उस हास्य-विकृत मुंह का उसने वेदना-मिश्रित आनन्द के साथ उपभोग किया था।

अन्त में उठते हुए बोले, अच्छा, फिर उठा ही जाय।'

जगदीश बाबू साथ चलते-चलते कह रहे थे, 'आपने समय का चुनाव ठीक नहीं किया, अमरेश बाबू। ऐसी विकट गर्मी में आप कुछ भी देख नहीं पायेंगे। बाहर निकलना भी मुश्किल है।'

'इसे मैं दुर्भाग्य न मानूं, तो ?' जगदीश बाबू की विस्मित दृष्टि को लक्ष्य करके उसने फिर कहा, 'और गर्मी तो एक-न-एक दिन खत्म होगी ही।'

'तब आपको कहां पाऊंगा ?' जगदीश बाबू के स्वर में कहीं जरा सन्देह का पुट भी था।

'हां, हां, क्यों नहीं पायेंगे ? शायद ज्यादा ही पायेंगे।'

अमरेश डाक्टर ने झूठ नहीं कहा था। सचमुच ही एक दिन धूलि-धूसरित उस गरीब छोटे-से शहर के रास्ते के किनारे, अमरेश डाक्टर का साइन-बोर्ड झूलता नजर आया।

जगदीश बाबू ने कहा था, 'विलायती डिग्री का खर्चा भी नहीं निकलेगा, डाक्टर। जंगल के शहर में हम-जैसे लकड़ी के व्यापारियों का अगर किसी तरह काम चल जाता है, तो क्या तुम्हारा भी चल जायेगा ?'

अमरेश डाक्टर ने हंस कर कहा था, 'लकड़ी का व्यापार और डाक्टरी के सिवाय क्या जीवन-यापन के लिए और कुछ नहीं है ?'

अमरेश डाक्टर रोगी के घर कभी दिखाई दिये हों चाहे नहीं, पर जगदीश बाबू

के घर के उस संकरे बरामदे में ये प्रतिदिन दिखाई देते हैं ।
'कुर्सी को घुमा कर बैठो, डाक्टर ।'
'क्यों, आपके उस पहाड़ और नदी को देखने के लिए ? आपका ट्रेड-मार्क पढ़ कर उसका मूल्य नष्ट हो गया है ।'
'मृत मनुष्यों का चीर-फाड़ कर-कर के आपका मन भी मर गया है, डाक्टर ।' यह कहने के बाद ही जगदीश बाबू ने विस्मित होकर कहा, 'उठ क्यों गई, सुरमा ?'
'आ रही हूं,' कह कर सुरमा मुंह नीचा किये चली गई ।
अमरेश डाक्टर एक अजीब हंसी हंस कर बोला, 'लड़कियां चीर-फाड़ की बात सहन नहीं कर पातीं । ठीक कह रहा हूं न, जगदीश बाबू ?'
जगदीश बाबू ने कोई उत्तर नहीं दिया था ।
अमरेश डाक्टर ने कहा, 'यह इन लोगों की करुणा है ।'
जगदीश बाबू ने गम्भीर होकर कहा था 'उसे पाने के सभी योग्य नहीं होते ।'
डाक्टर के आने-जाने को इस घर में शुरू-शुरू में किसी ने प्रोत्साहन नहीं दिया था । लेकिन बाद में धीरे-धीरे सब अभ्यस्त हो गये । शायद जगदीश बाबू भी सहज हो गये थे ।
'दो-चार दिन मुझे जंगल में ही रहना पड़ेगा डाक्टर, गिनवाई के समय वहां रहना जरूरी है । देख-भाल करना जरा । वैसे तुम्हें कहने की कोई जरूरत तो खैर नहीं ही है ।'
डाक्टर ने हंस कर कहा था, 'अरे नहीं, नहीं । आप आने को मना करके भी देख सकते हैं ।'
जगदीश बाबू हंसे थे । सुरमा भी हंसी थी । हंसते समय शायद उसका मुंह लाल हो गया था । लाल होने का कोई कारण नहीं था शायद ।
लेकिन सुरमा ने ही एक दिन तीव्र स्वर में कहा था, 'मैं अब सहन नहीं कर पा रही हूं ।'
'नहीं कर पाओगी, यही तो मैं आशा करता हूं ।'
'नहीं, नहीं । तुम यहां से चले जाओ । इस तरह से अपने को और मुझे मारने से क्या फायदा ?'
'जिन्दा रहने के लिये तो रास्ते खुले हैं, अब भी ।'
'वह रास्ता जब पहले ही नहीं अपनाया, तो…'
'वह गल्ती तो मेरी नहीं है, सुरमा । तुम अपने मन को नहीं समझ पाई थी, और मैं सुयोग का मूल्य नहीं जानता था । लेकिन क्या इसीलिये हमें भाग्य की इस

निष्ठुर रसिकता को मान लेना चाहिये ?'
जरा रुककर अमरेश ने आगे कहा था, 'अपराध की बात सोच रही हो? अपराध करके चरम मूल्य भी जिसके लिये दिया जा सके, इतनी बड़ी चीज क्या दुनिया में नहीं है?'
'मेरी समझ में नहीं आ रहा, मुझे डर लगता है।'
'सब समझ जाओगी, मैं उसी की प्रतीक्षा में तो हूं।'
एक दिन ऐसा लगा था, शायद प्रतीक्षा सार्थक होने को है। जगदीश बाबू ने कार-बार के लिए एक जंगल में जमा लिया था, उसे देखने के लिये सब लोग गये थे। उस रहस्य से घिरे जंगल में पिकनिक की उत्तेजना में सारा दिन बिताया। फिर शाम के समय सब घूमने के लिये निकल पड़े।
अमरेश और सुरमा इस पथहीन जंगल में न जाने किस तरह औरों से बिछुड़ गये थे। उन दोनों का अलग हो जाना, शायद अनजाने रूप से नहीं हुआ था, अमरेश का भी शायद उसमें हाथ था।
सुरमा ने कुछ समय बीतने पर कहा भी था, 'इस जंगल में गुमराह हो सकते हैं।'
'रास्ता तो जंगल को छोड़, और कहीं भी खोया जा सकता है।'
इस पर सुरमा ने जरा चिढ़कर कहा था, 'हर समय तुम्हारी इस तरह की बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।'
'कहीं तुम्हारे दिल में दर्द छुपा है इसीलिये, नहीं तो अच्छी लगतीं। अपने-आपको तुम पकड़ में नहीं आने दे रही हो, इसीलिये तुम्हें ये सब बातें असह्य लगती हैं।'
सुरमा मौन होकर कुछ आगे बढ़ गई।
उस अरण्य की पृष्ठभूमि में उसकी सुगठित देह और चाल-भंगिमा में, वनदेवी-जैसा रूप और माधुर्य निखर उठा था। इस अपूर्व सौन्दर्य का उपभोग करने के लिये ही शायद अमरेश कुछ क्षण निःशब्द खड़ा रहा। फिर पास जाकर बोला, 'इस जंगल में रास्ता खोने के बजाय हमें रास्ता मिल भी सकता है।'
सुरमा फिर भी मौन थी। अमरेश ने अचानक उसका एक हाथ अपने हाथ में ले लिया, और बोला, 'चुप मत रहो सुरमा, बोलो, आज तुम्हें बोलना ही होगा। तुम्हें सिर्फ दुर्बल होने की लज्जा है। इस सम्बल को लेकर सदैव के लिये जिन्दा नहीं रहा जा सकता। जिन्दा रहना क्या उचित नहीं है, सुरमा ?'
सुरमा ने रुंधे गले से कहा, 'मैं क्या कर सकती हूं, तुम्हीं बताओ ?'
कटे पेड़ के तने पर पैर रखे अमरेश ने कहा, 'इस कटे पेड़ को देख रही हो सुरमा, लकड़ी के व्यवसाय के लिये इसकी कीमत है, किन्तु इससे अधिक, और असली कीमत भी इसकी है। तुम भी, व्यवसाय की लकड़ी नहीं हो, सुरमा। तुम अरण्य की हो।'

सुरमा को निरुत्तर पाकर अमरेश फिर बोला, 'आज मैं कुछ भी सहज भाव से नहीं कह पा रहा हूं। उसके लिए क्षमा चाहता हूं, सुरमा। मेरे अन्दर ही सब कुछ जैसे गुड़मड़ हो गया है।'
सुरमा अमरेश के और करीब आ गई। उसने अमरेश के सीने पर अपना सर टिका दिया, और आहिस्ते से, रुंधे गले से बोली, 'तुम मुझे साहस दो।'
अन्त में, उनका जाना नहीं हुआ। अप्रत्याशित बाधायें आई। जगदीश बाबू अचानक गम्भीर रूप से बीमार पड़ गये, सुरमा और अमरेश दिन-रात बिना सोये रोग-शैया के पास बैठे रहे, और शान्त भाव से मुक्तिक्षण की प्रतीक्षा करते रहे। अब ज्यादा दिन नहीं हैं, यही उन लोगों की शेष प्रतीक्षा है। नये जीवन के शुरुआत की यह पहली कीमत भर चुकानी पड़ रही है।
जगदीश बाबू अच्छे हो गये, फिर भी उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी कुछ दिन और। दो-चार दिन और। छोटी-मोटी बाधायें हैं बस, घाट से बंधे-बंधाये लंगर को एकदम उखाड़ फेंकने में सुरमा के मन में थोड़ी-सी विह्वलता भर है। थोड़ा-सा समय उसे दिया जा सकता है, अपने अन्दर साहस बटोरने का। अमरेश कहीं भी जबर्दस्ती करना नहीं चाहता। वह चाहता है, सब अपने-आप जड़ समेत उखड़ जायें, सब बन्धन खुल जायें। उसके पास असीम धैर्य है।
अमरेश डाक्टर ने प्रतीक्षा की कुछ दिन और। फिर और अनेक दिनों तक प्रतीक्षा करता रहा। परन्तु,

परन्तु, बहुत-बहुत अधिक प्रतीक्षा की उसने।

और धीरे-धीरे कब आग बुझ गई, उसे मालूम भी नहीं। कब विगत वर्ष के पत्ते धूसर होकर विवर्ण हो गये। वे सभी अभ्यास के सांचे में जीर्ण-मलिन होकर दुनिया की धूल में धूसरित हो गये, और इनमें सबसे मलिन और क्लान्त हो गया था डाक्टर।

आग उसके अन्दर बस चिनगारियों के रूप में जल रही है। ऊपर सब-कुछ राख हो गया है। डाक्टर निर्दिष्ट कुर्सी पर अब भी आकर रोज बैठता है। नदी और पहाड़ की ओर पीठ करके। किन्तु यह भी एक अभ्यास ही है। डाक्टर स्टेशन से पार्सल लाने को दौड़ता है, यह एक दुर्बल आशावादिता मात्र है।

शिवराम चक्रवर्ती

प्रणय-संकट

उपकथा में प्रेम-कहानी मिलती अवश्य है, लेकिन इसीलिए प्रेम ही कोई उपकथा हो, यह कोई जरूरी नहीं। इस विशेष युग में भी नहीं।

स्थान ठीक गिरि-संकट नहीं है, संकट का समुद्र भी नहीं है, समुद्र और पहाड़ मिल कर उभय-संकट की तरह प्रेम के लिये वह संकट-भूमि हो सकती है न···

मतलब जो ताजा-ताजा प्रेम में डूबे हैं, उन्हीं के बारे में यह कहना पड़ रहा है। उनके लिये यह एक प्रकार का फन्दा है। उसी फन्दे की चर्चा इस कहानी में है। भयानक अजदहे-सा पहाड़ टेढ़ा-मेढ़ा होकर समुद्र के ऊपर जैसे अपना फन काढ़े है—प्रेम की चोटी की सीमा की तरह। हताश प्रेमियों की आखिरी मंजिल। उसी फन-जैसी चोटी के ऊपर से फेनिल समुद्र के गर्भ में कूद कर मोक्ष-लाभ का लोभ संवरण करना उनके लिये कठिन मालूम पड़ता है।

पीछे वाले होटल से पहाड़ का रास्ता चक्कर काटता हुआ चला गया है ऊपर—प्रेम की उसी समाधि की तरफ। जगह का नाम भी पड़ा है—'प्रेम समाधि'। उपकथा के युग में पहली बार जो प्रेम-कातर-जोड़ा अपने प्रेम का समाधान न कर पाने की वजह से, प्रेम के हाथों ही समाधिस्थ हुआ, वही यह नाम इसे दे गया है। होटल के एक कमरे में बैठा वही प्राचीन वृतांत लड़का-लड़की दोनों को सुना रहा था······

'…वह थी एक फागुन की संध्या। सूरज उस समय रंगीन होकर डुबकी लगा रहा था समुद्र में, और उस रंग की छुवन वाली लहरें आसमान चूम रही थी। रंगीन हो उठा था सारा आकाश। उसी रंगीन फागुन की शाम को…

ठहरो, होटल का पोथा जरा देख लू। उसमें शायद लिखा मिले, कि किसी 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' यह हुआ। आषाढ की एक अशान्त बरसाती गोधूलि बेला में…या भादों की मटमैली शाम में या कि सावन के किसी सावनी दिन में, वही…अगर गड़बड़ी हुई हो, इसमें भी मैं चौंकने का नहीं। प्रेम में जितनी भी गड़बड़ी मचती है, सच कहा जाय तो, बरखा से भीगे दिनों में ही।

और कार्तिक की कोई काली घुप रात या जाड़े की कोई कुहासे से भरी रात भी हो सकती है। पुरोप हो तो भी उसमें कोई दोष नहीं दीखता…। लाओ तो पोथा, मेरी दराज में ही है। खींचो उसे, मिल जायेगा।

मिलता नहीं ? छोड़ो, जहन्नुम में जाने दो। उसके पीछे सर न खपाने से भी काम चलेगा। यह सब छोड़ देने में भी हर्ज नहीं है। मगर, ऐसी घटना घटे "किसी मधु-ऋतु में"—नियम ऐसा ही है। मात्र प्रेम ही जीवन हो, इतना ही नहीं, जीवन भाग्य भी तो है, वसंत-निर्भर। क्योंकि कवि इस दिशा में भी कह गये हैं, 'एमोन दिने तारे बोला जाये, एमोन घनघोर बरसाये…।' प्रेम नितांत आषाढ में भी हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

छोड़ो। अब उस दिन की तह में लौट चलें। फागुन की उस आग लगी सन्ध्या में एक लड़के और एक लड़की को देखा गया। देखा गया कि वे पहाड़ी रास्ते पर चले जा रहे हैं। सीधा-सहज तब जाया नहीं जाता था। रास्ता कांटों से भरा था। रास्ता कांटामय हो, तब का नियम यही था।

यहां तक कि किसी-किसी समय वे सड़क अनिवाहन भी करते थे, ऐसा सुना जाता है। पढ़ा जा सकता है किताबों में भी। जीवन की भांति, यान-वाहन के जैसी ही, सड़क भी थी अनिवाहनों की।

इस मैली गोधूलि की रोशनी में उन्होंने सड़क का अनिवाहन किया। दुनिया, समाज को पीछे छोड़ कर, आशा-आकांक्षा सब कुछ को ताक पर रख कर, हाथों में हाथ लिये वे सड़क काटते चले जा रहे थे। कंकड़ से भरी कठिन सड़क।

मानू प्रांत की सराय को पीछे छोड़ आये थे। जो सराय एक दिन ऐसी दिव्य स्वर्ण-महल 'पैलेस डी होटल' हो जायेगी।'

'क्यों ? क्यों हो जायेगी ?' पूछा लड़की ने।

'क्योंकि जैसे स्वर्ग के प्रेम की खातिर, वैसे ही इस होटल के लिए भी तो वे शहीद हो गये कि नहीं ? अमर प्रेम की चर्चा-चर्चा फैल गयी चारों तरफ। उसकी खातिर

शिवराम चक्रवर्ती

प्रणय-संकट

उपकथा में प्रेम-कहानी मिलती अवश्य है, लेकिन इसीलिए प्रेम ही कोई उपकथा हो, यह कोई जरूरी नहीं। इस विशेष युग में भी नहीं।

स्थान ठीक गिरि-संकट नहीं है, संकट का समुद्र भी नहीं है, समुद्र और पहाड़ मिल कर उभय-संकट की तरह प्रेम के लिये वह संकट-भूमि हो सकती है न··· मतलब जो ताजा-ताजा प्रेम में डूबे हैं, उन्हीं के बारे में यह कहना पड़ रहा है। उनके लिये यह एक प्रकार का फन्दा है। उसी फन्दे की चर्चा इस कहानी में है। भयानक अजदहे-सा पहाड़ टेढ़ा-मेढ़ा होकर समुद्र के ऊपर जैसे अपना फन काढ़े है—प्रेम की चोटी की सीमा की तरह। हताश प्रेमियों की आखिरी मंजिल। उसी फन-जैसी चोटी के ऊपर से फेनिल समुद्र के गर्भ में कूद कर मोक्ष-लाभ का लोभ संवरण करना उनके लिये कठिन मालूम पड़ता है।

पीछे वाले होटल से पहाड़ का रास्ता चक्कर काटता हुआ चला गया है ऊपर—प्रेम की उसी समाधि की तरफ। जगह का नाम भी पड़ा है—'प्रेम समाधि'। उपकथा के युग में पहली बार जो प्रेम-कातर-जोड़ा अपने प्रेम का समाधान न कर पाने की वजह से, प्रेम के हाथों ही समाधिस्थ हुआ, वही यह नाम इसे दे गया है। होटल के एक कमरे में बैठा वही प्राचीन वृतांत लड़का-लड़की दोनों को सुना रहा था······

'...वह थी एक फागुन की संध्या। सूरज उस समय रंगीन होकर डुबकी लगा रहा था समुद्र में, और उस रंग की छुवन वाली लहरें आसमान चूम रही थी। रंगीन हो उठा था सारा आकाश। उसी रंगीन फागुन की शाम को...

ठहरो, होटल का पोथा जरा देख लूं। उसमें शायद लिखा मिले, कि किसी 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' यह हुआ। आषाढ की एक अशान्त बरसाती गोधूलि वेला में...या भादों की मटमैली शाम में या कि सावन के किसी सावनी दिन में, वही...अगर गड़बड़ी हुई हो, इससे भी मैं चौंकने का नहीं। प्रेम में जितनी भी गड़बड़ी मचती है, सच कहा जाय तो, बरखा से भीगे दिनों में ही।

और कार्तिक की कोई काली घुप रात या जाड़े की कोई सुहागे से भरी रात भी हो सकती है। पुरोप हो तो भी उसमें कोई दोष नहीं दीखता...। लाओ तो पोथा, मेरी दराज में ही है। खींचो उसे, मिल जायेगा।

मिलता नहीं? छोड़ो, जहन्नुम में जाने दो। उसके पीछे सर न खपाने से भी काम चलेगा। यह सब छोड़ देने में भी हर्ज नहीं है। मगर, ऐसी घटना घटे "किसी मधु-ऋतु में'—नियम ऐसा ही है। मात्र प्रेम ही जीवन हो, इतना ही नहीं, जीवन भाग्य भी तो है, वसंत-निर्भर। क्योंकि कवि इस दिशा में भी कह गये हैं, 'एमोन दिने तारे बोला जाये, एमोन घनघोर बरसाये...।' प्रेम नितांत आषाढ़ में भी हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

छोड़ो। अब उस दिन की तह में लौट चलें। फागुन की उस आग लगी सन्ध्या में एक लड़के और एक लड़की को देखा गया। देखा गया कि वे पहाड़ी रास्ते पर चले जा रहे हैं। सीधा-सहज तब जाया नहीं जाता था। रास्ता कांटों से भरा था। रास्ता कांटामय हो, तब का नियम यही था।

यहां तक कि किसी-किसी समय वे सड़क अनिवाहन भी करते थे, ऐसा सुना जाता है। पढ़ा जा सकता है किताबों में भी। जीवन की भांति, यान-वाहन के जैसी ही, सड़क भी थी अनिवाहनों की।

इस मैली गोधूलि की रोशनी में उन्होंने सड़क का अनिवाहन किया। दुनिया, समाज को पीछे छोड़ कर, आशा-आकांक्षा सब कुछ को ताक पर रख कर, हाथों में हाथ लिये वे सड़क काटे चले जा रहे थे। कंकड़ से भरी कठिन सड़क।

मातृ प्रांत की सराय को पीछे छोड़ आये थे। जो सराय एक दिन ऐसी दिव्य स्वर्ण-महल 'पैलेस ही होटल' हो जायेगी।'

'क्यों? क्यों हो जायेगी?' पूछा लड़की ने।

'क्योंकि जैसे स्वर्ग के प्रेम की खातिर, वैसे ही इस होटल के लिए भी तो वे शहीद हो [illegible] नहीं? अमर प्रेम की यश-खबरें फैल गयी चारों तरफ। उन्हीं खातिर

'जिन्दा रहने के लिये जिन्दा रहेगा। प्रेम ही तो जीवन है और जीवन ही प्रेम है। और कि जीवन का भोर ही है प्रेम। जितना प्रेम है, जीवन में उतनी ही भोर है। एक अंधियारी रात कटी कि भोरौरी में नया जागरण हुआ। जीवन का एक और सवेरा। नये प्रेम का नवजन्म। एक ही जीवन में जन्म-जन्मांतर।'

'दर्शन की बात छोड़िये। जिसने एक को देखा है—देखा है कि उस एक की तरह और दूसरा नहीं। उसी एक के मिलने पर उसे छोड़ कर किसी और को वह चाहता नहीं। जिन्दा रहना भी नहीं चाहता। वैसे एक को पाकर भी अगर उसे खोना पड़े, तब मैं तो—'

वाक्य के मध्य-पथ पर विराम की भांति आ खड़ा न होने पर भी वह रुक जाता है। साफ है कि यह एक डेथ-सेन्टेन्स है।

'हां, ऐसा प्रेम भी है क्यों नहीं। कुएं के जैसे तलस्पर्शी आंख-कान बन्द कर डूबने-जैसा। अन्धे की तरह हत्या करना उस गहराई में। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि आंख-कान खोल कर चलनेवाला प्रेम नहीं है। वही प्रेम है, सड़क की तरह लम्बा। गहरा न होने पर भी उमंगित। इसी राह प्रेम में चलते-चलते खोना और खोते-खोते पाना है। वह चलना ही प्रेम के लिये जिन्दा रहना है। और जिन्दा रहने के लिये है प्रेम। आत्महत्या का महत्व उसके आगे नहीं है। अन्धकूप--हत्या भी नहीं।'

सुनकर वह लड़का गुम हो गया। इसके बाद बड़बड़ा उठा, 'किसी को प्रेम करने पर क्या उसे छोड़ा जा सकता है? सही-सही प्रेम में पड़ने पर क्या कोई कभी भूल सकता है? प्रेम क्या मिट्टी का ढेला है?'

'मिट्टी ही तो है।' मैंने कहा, 'प्रेम की सम्पूर्णता मिट्टी है। मिट्टी है तभी उस पर खड़ा हुआ जा सकता है। बसेरा लिया जाता है, डर के पार, लड़खड़ा कर, गिरने का भी 'चारु' रहता है, मगर जो मिट्टी में गिर कर उठता है, वही उसे पकड़ता है। प्रेम में उठा भी जा सकता है, उसे मिट्टी मान कर ही। प्रेम में उन्नति की, ऐसा सुना नहीं? जो प्रेम अकाट्य है, वह हीरे की भांति दुर्लभ है, उसे भी प्रेम से ही काटना पड़ता है। प्रेम की सीढ़ी से चढ़कर ही नये प्रेम के बरामदे में जाया जा सकता है।'

'नहीं, नहीं, नहीं। इला के विना मैं जिन्दा नहीं रह सकता--नहीं, जिन्दा नहीं रह सकता। इला को विना पाये--' आर्त स्वर में लड़के ने कहा। इसके बाद इस आत्म-स्वीकृति की शर्म से वह लाल होता रहता है। सर झुका कर जाने क्या सोचता रहता है; कुछ देर तक। इसके बाद इसी भावातिरेक में उठ कर निकल जाता है कमरे से।

मगर आत्म-स्वीकृति की उसे जरूरत नहीं थी। उन्हें देख कर ही मैं समझ गया था। पहले दिन ही, जिस दिन देखा था। बहुत दिन नहीं हुए, पहले इला के पिता लड़की को लेकर घूमने आये यहां। लड़की की हवा बदलने के लिये। इसके कई दिनों बाद लड़का आया।

इला के पिता हैं एक नामी बीमा-कम्पनी के मालिक। खूब पैसे वाले। और लड़का...लड़के के पास परिचय देने योग्य कुछ विशेष नहीं है। गांव से कलकत्ता आकर इला के यहां से ही बी० ए० की परीक्षा दी है शायद। उसी समय इला को पढ़ाया था कुछ दिन। इसके बाद जैसा होता है...पढ़ाते-पढ़ाते ही...न्यूटन के सेब की कथा...इस पढ़ाई की अपेक्षा में ही वे जैसे बैठे थे। पढ़ा नहीं सका, पढ़ने लगा खुद ही को।

और इस पढ़ाई का भोंक एक बार अगर चढ़ बैठा तो रोके नहीं रुकता। प्रेम की समाधि तक भी गिरा जा सकता है। मैंने उठाने की कोशिश नहीं की, क्योंकि प्रेम अतुलनीय है, यह जानता हूं न। सिर्फ, दिल ने जो मौत की सजा दी है उन्हें, बेवकूफ की तरह वहां वे अपील न करके उपचार इजलास में, उनके निकट ही (दोनों के सर खाने के बाद अगर कहीं कुछ छटा रह गया हो) नहीं, नहीं, नहीं, ऐसा काम मत करो—इतनी देर तक यही मैंने कहना चाहा है। हो सकता है, ठीक-ठिकाने से कह नहीं सका होऊं। जो बात मुंह से कहने की जरूरत थी, वहीं मिटपिटा कर रह गयी। जहां संकेत से काम चलाना चाहिए, वहां शिव शम्भू का गीत गाया है। फिर भी, अपनी काबलियत के मुताबिक बात कहने की चेष्टा की है। जितना खोल कर कहा जा सकता है—खोल-खोल कर। बुद्धि की उसी ऊंची अदालत में वह मर्सी-पिटीशन मैंने पेश की, सीधे लफ्जों में—बहुत हुआ, अब माफ करो।

कारीडोर से गुजरते समय इला के बाप के गले का स्वर सुनाई पड़ा। उस तरफ खड़े होकर वे कह रहे हैं, 'नहीं, ऐसा नहीं होता, असती। कितनी बार तो कह चुका तुम्हें, कि ऐसा हो नहीं सकता। यह दसवीं बार कह रहा हूं। यही एक बात सुनने की खातिर कलकत्ते से यहां दौड़े आने की जरूरत नहीं थी। वही तो साफ शब्दों में मैंने बता दिया था। अब फिर यह सुनने को न मिले। यह सब

...-खड़े सुनने का समय नहीं है।'

...ने संध्या-भ्रमण को वे निकले।

...कमरे से।

...? अपने कान से ही तो सुन लिया ?' बोला असती, 'अब

'पापा के कहने से क्या होता है ? हम लोगों का तो सब तय है ही ।' बताया इला ने ।

'तो क्या, क्या हम भागेंगे ? यही तय किया तुमने ? यहां से कहीं और पहुंच कर ब्याह करके सुखी-नीड़ बसायेंगे---दोनों ही ?'

'नहीं । भागूंगी नहीं । लेकिन यहां से चले जायेंगे जरूर, इस लोक से ही । पापा को एक सबक दे जाऊंगी ।' इला रुकी, 'और वह आज ही, आज शाम को ही । जैसा हम लोगों ने तय किया है ।'

'नहीं इला, तुम क्यों मरोगी ? मुझ जैसे अभागे के लिये तुम क्यों मरो आखिर ? अच्छा है, मैं अकेला ही ।'

'असती दा, क्या कह रहे हो तुम ? तुम्हारे बिना क्या मैं जिन्दा रह सकती हूं ? जिन्दा रहना जब संभव नहीं है, तब हमारा मर जाना ही अच्छा है । और एक साथ मरने के लिये ही तो तुम्हें बुलाकर यहां लायी हूं । कनकलता जिस राह गयी, वही राह हमारी है । वहीं पहुंच कर हमेशा के लिये हम मिल जायेंगे ।'

'तब ऐसा ही हो, इलू ।' असती ने लबी सांस ली ।

उस दिन की गोधूलि की आभा में एक और पौराणिक पुनरावृत्ति हुई । पुनः एक लड़का, एक लड़की हाथों में हाथ डाले चले जा रहे हैं कंकरीली सड़क पर । सड़क के दोनों तरफ जंगली फूल खिले हैं, पहाड़ी चूहे दौड़ रहे हैं इधर-उधर । दोनों में से किसी की नजर उधर नहीं है । कहीं चिड़िया चहक रही थी, लेकिन कान नहीं थे उनके । इतिहास घूम-फिर कर वहीं आता है । खास कर मर्मांतक प्रकरण अपनी इति हासिल करके प्राणान्त परिच्छेद में शेष होता है । उसी 'महाप्रस्थानेर पथे' ये दो यात्री । छाया की तरह मैं उनका अनुसरण करता हूं । उनका संकल्प अकल्प कर सकता हूं; विकल्प कर सकता हूं---ऐसी आशा मुझे नहीं थी । क्षमता भी नहीं । इला के पापा ऐसे भौगोलिक परिवेश में एक ऐतिहासिक घटना घटायेंगे, और सामान्य लेखक होकर भी इस इतिहास भूगोल की ग्रन्थि विमोचन करूंगा मैं---इतना कुदरती मैं नहीं हूं । मगर और कुछ चाहे नहीं हो, इस ट्रेजेडी पर एक ग्रन्थमोचन तो हो ही सकता है, यही भरोसा मेरे अनुसरण की प्रेरणा थी ।

मेरी स्वयं संवाददाता की भूमिका है । एकदम ।

लड़का-लड़की दोनों आखिर में पहाड़ी की चोटी पर जा बैठे । बैठ कर ताका अतल समुद्र की ओर, जो तल-प्रदेश की लहरों में उच्छ्वसित हो रहा था । उमगा समुद्र । बैठे रहे बहुत देर तक । चुप । आंखों के सामने सूर्य डूबने लगा । धीरे-धीरे । उधर ताकते हुए क्या सोच रहे थे वे ? दूर समुद्र-सूर्य की भांति, भावना के पत्थर पर क्या वे भी ऊब-डूब रहे थे ? आज के सूर्य के संग क्या उन्हें भी डूब जाना पड़ेगा ?

सोच देखा, जिन्दा रहने में ही क्या लाभ है ? प्रेम ही है जिन्दगी की धड़कन। और नारी ही है हमारी प्राण-वायु। नारी छूट जाय तो जिन्दगी में रहा क्या ? कौन जिन्दा रहेगा है ऐसे में ? जिन्दा रहना चाहता ही कौन है ? अनाड़ी होकर जिन्दा रहने में कोई लाभ नहीं है। ऐसे में जिन्दा रहना—
किन्तु और भी जरा भावित होने पर हो सकता है, पता चले कि निश्वास वायु जिस तरह ली जाती है, उसी तरह छोड़ी भी जाती है। प्रेम भी ऐसा ही है, पाना-खोना। प्रेम को खोते जाना होगा पाने के साथ-साथ। किसी एक प्रेम को पकड़ कर बैठे रहना निश्वास को रोकने जैसा ही कष्टकर है। अकारण प्रिय लगने की जो खुशी है, प्रेम उसी की गुदगुदी है। मगर निश्वास के साथ मिलने पर ही। श्वास-प्रश्वास के जैसा ही सहज। वही प्रेम स्वच्छन्द है, जिसके आने-जाने की सड़क साफ हो। वहीं कोई बाधा नहीं। प्रेम किया जाता, अनायास भूल जाना।
नारी हमारी प्राणवायु है, हां, जरूर, उसके लिये तनाव स्वाभाविक है, लेकिन खींचातानी, कैसा तो लगता है। जिस सांस के लेने में भी कष्ट हो, छोड़ने में भी, जिन्दा रहने के लिये उसकी जरूरत भी है ही, लेकिन उस खींचातानी को प्रेम न कह कर 'दया' कहना उपयुक्त नहीं है क्या ?
प्रेम में पड़ने से ही कुछ नहीं होता। प्रेम में समयानुसार उठना भी पड़ता है। और कुछ नहीं, एक प्रेम है दूसरे प्रेम में पड़ने के लिये ही। प्रेम है उठ-बैठ कर लगे रहने वाली चीज। ऐसी प्राणवायु इसी आशा में छोड़नी भी पड़ती है, दूसरी सांस लेने की आशा नियोजन की खातिर। मगर उफ्, भाग्य के परिहास के कारण जो श्वासहत......
हताशा-श्वासवालों में से एक की दशा अन्त में अर्ध-स्फुट हो जाती है...
'इलू ! इलू मेरी ! अब, अब...?'
'विदा, हमेशा-हमेशा के लिये विदा, असीती दा।'
'सच, मैंने बहुत सोचा, तुम्हारे बिना जिन्दा रहने का कोई...कोई मतलब नहीं। मैं प्रस्तुत हूं इलू।'
'मैं भी।...तुम जरा भी न सोचो, मेरे अच्छे। नीचे लहरों की ओर देखो। और अब...अब जरा देर बाद ही हम लोगों का सारा कष्ट दूर हो जायेगा। सदा के लिये हमारा मिलन होगा।'
'चिर मिलन। यानी हमेशा के लिये मिल जाना। कौन जाने !' असती के अन्तिम कथन में जरा संशय छिपा रहता है।
असती और इला, एक दूसरे की तरफ ताकते हुए आखिरी बार का देखना देख रहे थे। वहां भी था एक लहराता गहरा समुद्र, दोनों की आंखों में भी शायद।

सिर के बल दौड़ कर जाना पड़ता है। यह तो फिर भी निमंत्रण है।'

अंजलि ने तेजी से उत्तर दिया, 'हुक्म पर सिर के बल दौड़ें वो, जो आफिस के नौकर हैं। मुझे क्या?'

'तुम तो बहुत-कुछ हो भाग्यवान! नहीं तो आफिस में इतने बड़े-बड़े लोगों के होते सुधीर मुखर्जी जैसे मामूली आदमी की स्त्री को बेटे के जनेऊ के समारोह में आमंत्रण क्यों मिलता? यह देख लो, कहने को नाम मेरा लिखा है, पर असली उद्देश्य तो तुम्हीं हो।'

'शुभ उपनयन' की छाप लगा हुआ बड़ा-सा एक नयनाभिराम लिफाफा, सुधीर ने अंजलि के आगे फेंक दिया।

'किसी का कुछ भी उद्देश्य हो, मेरे ऊपर उसकी क्या जिम्मेदारी है!' कहते-कहते अंजलि कन्धे पर पड़े भीगे कपड़ों को फैलाने के लिये आंगन की ओर चली गई।

सुधीर दालान में चहल-कदमी करता रहा।

ना, अंजलि की यह आपत्ति नहीं चलेगी। चटर्जी साहब ठहरे आफिस के कर्ता-धर्ता, विधाता। उनके निमंत्रण को टालना क्या सहज काम है?

जो भी हो, अंजलि के ऊपर झुंझलाहट और बड़े साहब के ऊपर क्रोध से मन में कड़वाहट भर गई थी, फिर भी चार जनों में, खास कर सब आफिसवालों में सिर तो ऊंचा हुआ ही है।

साहब ने जब अचानक अपने खास कमरे में बुला भेजा था, तो कैसा डर लगा था। दिल की धुकधुकी बन्द होने में ही नहीं आ रही थी।

और फिर जो हुआ, अप्रत्याशित था। लौटने पर, साथियों के उत्सुक प्रश्नों के उत्तर में, बड़ी लापरवाही से निमंत्रण का समाचार देने में क्या कम गौरव था? और निमंत्रण भी स्त्री? नहीं, [illegible] सुधीर की स्त्री को [illegible]।

दूर से गाड़ी लेकर चटर्जी साहब खुद आयेंगे, सुधीर और भी लापरवाही से [illegible] साथी की दृष्टि में [illegible] को [illegible] सुधीर [illegible] बोला था, 'हैरान होने की इसमें कौन-सी बात है? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

इस प्रश्न पर सुधीर मन-ही-मन बुरी तरह झुंझला उठा।

रिश्ता जो है, वह इतना उलझा हुआ, कि आसानी से सुलझा कर समझाया नहीं जा सकता। और फिर है भी तो अंजलि की तरफ से, सुधीर की तरफ से नहीं। *खैर, जैसे-तैसे यह प्रश्न तो टाल दिया था, पर अब अंजलि जो नहीं जाने की जिद* पर अड़ गई है, तो सारा मामला ही चौपट हुआ जा रहा है।

शायद अब कोई विश्वास भी नहीं करेगा।

और वह शीतांशु का बच्चा जो है, वह तो सब के सामने ही मजाक उड़ाने लगेगा। रसोई-घर के दरवाजे पर आकर वह एक पीढ़ा खींच कर बैठ गया।...

अंजलि चूल्हे में लकड़ियां सुलगा कर खाना चढ़ा रही है। इस तरफ के लगभग सभी घरों ने रेल-हड़ताल की आशंका से कोयलों का तो स्टाक जमा कर लिया है और खाना लकड़ियों की आंच पर पकाते हैं। अंजलि के चेहरे की ओर देख कर सुधीर कुछ हिचकिचा जाता है, जिस तरीके से बात कहने का इरादा किया था, *वह याद ही नहीं आता।*

लकड़ी की आंच की रक्तिम आभा लालटेन की पीली रोशनी से मिल कर अंजलि के मौन कठिन चेहरे की एक-एक रेखा को उजागर कर रही है। अंजलि का चेहरा इतना निर्दोष क्यों है?...वह जब चुपचाप बैठी रहती है तो सुधीर को उसकी ओर देखने में भी डर लगता है। वह किसी तरह से, कोई छोटी-मोटी बात करके इस अवांछित नीरवता को तोड़ देना चाहता है।

'खाना तैयार हो गया?'

अंजलि ने सिर उठा कर देखा। उसे पता है, यह सिर्फ भूमिका ही है।

'कह रहा था, यह तुम्हारे चौका-बर्तन की मोटी-मोटी कुछ बातें मुझे समझा जाओ तो ठीक रहे। दो दिन अब मुझको ही तो देखना होगा यह सब।'

'यह क्या पागलों की तरह बक रहे हो? जो असम्भव है, उसे लेकर ज्यादा बहस-वहस करनी मुझे पसन्द नहीं है। जाओ, जाकर बाहर हवा में बैठो। खाना बन जाने पर बुला लूंगी।'

यह तो एक तरह से बाहर भगाना ही हुआ।

और कोई समय होता, तो सुधीर बदले में भड़क उठता। पर आज गुस्से में मिजाज हाथों से निकलने देने में असुविधा ही होगी। इसीलिये वह हंस कर बोला, 'वहीं जाना-आना नहीं चाहिये क्या?'

'तुम्हारे आफिस के यह ऊपर वाले हमारे घनिष्ठ स्वजन हैं, या नजदीकी रिश्तेदार?' अंजलि वैसी ही तेज आवाज में बोली, 'स्वजन हैं, यह तो तुम भी नहीं कहोगे, और रिश्तेदारी है, सो भाभी के भतीजे हैं। ऐसा कोई नजदीकी

सम्बन्ध नहीं है, कि गये विना काम नहीं चले।'
'आह ! तुम समझती क्यों नहीं ? एक तो निमंत्रण दिया है और फिर आग्रह से लेने भी आयेंगे। सो इतने बड़े आदमी को क्या यों ही लौटा देना उचित होगा ? कल शाम को चार वजे आने को कहा है।'
'तो फिर कल आफिस जाओ तो मना कर आना। कह देना, तबीयत खराब है।'
'कल तो छुट्टी है। समझ में नहीं आता, क्यों ऐसी जिद्द पर अड़ी हो।'
सुधीर रुखाई से उठ खड़ा हुआ।
अंजलि भी उठ खड़ी हुई। रसोई-घर के सामने आंगन में टांगर फूलों से लदा वृक्ष चांदनी की चादर ओढ़े खड़ा था। कुछ देर उसी की ओर स्थिर दृष्टि से देख कर अंजलि मधुर हंसी हंस कर वोली, 'समझ में नहीं आता···तुम क्या सचमुच सोचते हो, कि जाने में कोई हर्ज नहीं है ? इस वेश-भूषा में, गहनों के नाम पर सिर्फ शंख की चार चूड़ियां पहन कर तुम्हारे उन बड़े आदमियों के घर जाऊंगी, तो तुम्हारी प्रेस्टिज नहीं घटेगी ?'
'प्रेस्टिज' नहीं घटेगी, यह तो सुधीर साफ-साफ नहीं कह सकता। पर अंजलि चटर्जी साहव के घर दो दिन तक आतिथ्य ग्रहण करके लौटेगी तो आफिस में उसकी जो 'प्रेस्टिज' बढ़ेगी, उसे भी तो नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता। और फिर एक बार साहब की नजरों में चढ़ गये तो तरक्की भी मिल सकती है, कोई असम्भव बात तो है नहीं। इसलिये, बात को उड़ाने के लहजे में बोला, 'और कहीं जाती, तो यह माना जा सकता था। यह तो मालिक का घर है, यहां मान क्या और अपमान क्या ? अस्सी रुपल्ली पाने वाले क्लर्क की वीवी से अगर कोई हीरे-मोती के गहने और बनारसी साड़ी पहन कर आने की उम्मीद करे, तो उसकी गलती है। इन लोगों को व्यापार में लाखों का मुनाफा हो रहा है, वाप की सम्पत्ति है, सो अलग। हम लोग कहां उनकी वरावरी करेंगे ? वीवी-वच्चों को सजा-धजा कर रखने-जैसी किस्मत कहां है हमारी ?'
'अच्छा वावा, चली जाऊंगी। भगवान की कृपा से वाल-वच्चे नहीं हैं, नहीं तो...'
अंजलि फिर चूल्हे के आगे वैठ कर काम निवटाने लगी। सुधीर चुपचाप वाहर आकर वैठ गया। अजलि ने सम्मति जरूर दी है, पर मानो सुधीर के ऊपर नाराज होकर ही। पर क्यों...? सुधीर की धारणा कुछ और ही थी। उसे आशा थी कि चटर्जी साहव, या अंजलि के मुंहवोले मंझले भैया, का सादर निमंत्रण पाकर अंजलि खुशी से फूली नहीं समायेगी। वल्कि तव पुराने सन्देह को उभार कर व्यंग-विद्रूप से, ताने-तिश्ने दे कर सुधीर ही मन की जलन मिटायेगा।
पर यह कैसे हुआ ?

इस भाग्यवान मनुष्य के प्रति अंजलि के मन में जो प्रगाढ़ श्रद्धा संचित है, वह क्या सुधीर को मालूम नहीं ? उस आकारहीन अभिव्यक्तिहीन श्रद्धा को ठीक भ्रातृ-प्रेम की श्रेणी में रखा जा सकता है या नहीं, यही सन्देह बरसों से सुधीर अपने मन के एक कोने में पालता आ रहा है। अचानक ऐसा क्या हो गया, कि सारी श्रद्धा-भक्ति, सारा प्रेम ऐसे कपूर की तरह उड़ गया ?

पुराने मैनेजर के जाने के बाद, नये मैनेजर के रूप में जब एम० एल० चटर्जी का आगमन हुआ था, तो यह संवाद सुन कर ही अंजलि कैसी अनमनी हो उठी थी। सिर की कसम दिलाई थी उसने सुधीर को कि चार लोगों के बीच कहीं अपनी क्षीण-सी रिश्तेदारी की चर्चा न कर बैठे।

उसके बाद उसने कभी एक बार भी तो 'मंझले भैया' का जिक्र नहीं किया था। कैसे कुछ पूछ-ताछ करने पर भी सुधीर शायद ही बतला पाता। उसकी अपनी पोस्ट इतनी नीचे थी, कि इन आठ महीनों में एक बार भी मैनेजर साहब से साक्षात्कार का अवसर ही नहीं मिला था।

यह अचानक ही परिचय का पर्दाफाश कैसे हो गया ? आकाश के चांद को धरती की मिट्टी के साथ मिलाई की साध कैसे जाग उठी ? सुधीर की कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था।

न अंजलि का यह बेमतलब का गुस्सा ही समझ में आ रहा था।

क्या इसकी जड़ में सिर्फ गहने-कपड़ों का अभाव है ?

पर अंजलि क्या ऐसी लड़की है ? बन्धक रखी कुटिया छुड़ाने के लिये एक-एक करके अपने सारे गहने खुद उसी ने उतार दिये हैं।

पर ऐसा हो नहीं सकता।

गहने, कपड़े लड़कियों के शौक की ही तो चीज नहीं हैं सिर्फ। पद, मर्यादा के चिन्ह भी तो हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा के मानदण्ड। जीवन-संग्राम में जिनकी विजय प्रत्यक्ष है, उनकी बहू-बेटियों को वस्त्राभूषण लाद-लाद कर चार जनों में डौंडी पीटने की शायद जरूरत नहीं है। पर जो अभागे पराजित हो गये हैं, उन्हें अपना वजन दिखाने के लिये प्रदर्शन करना ही पड़ता है। इसीलिये तो मध्यवर्ग के घरों में गहने-कपड़ों को लेकर इतनी अशान्ति बनी रहती है।

किसी आनन्दोत्सव में स्वजन-सम्बन्धियों के यहां से बुलावा आते ही शान्त जीवन में अभियोगों का तूफान आ जाता है।...पति-पत्नी में कलह हो जाती है, आत्म-विस्मृत शांति चूर-चूर हो जाती है।

अंजलि प्रकृति से ही गम्भीर है। कलह करना उसकी आदत नहीं है, न ताने दे-दे कर पति को उसकी अक्षमता का बोध कराना ही उसे पसन्द है। अभी आवेश में

लगती है।

अंजलि यहीं रहती है। मनीश को कितना ऐश्वर्य मिला है, पर अंजलि कितनी रिक्त है! उसे निमंत्रण दे कर मनीश कहीं भूल तो नहीं कर बैठा है?...मनीश के घर उसे क्या पग-पग पर कुण्ठित नहीं होना पड़ेगा?...अचानक धनी हो उठने वाले घर के गौरवस्फीत आडम्बर-बहुल परिवार में अंजलि को उपयुक्त मान-सम्मान तो मिलेगा?...मनीश को यह ख्याल नहीं आया होता, वही उचित था। इससे लाभ क्या हुआ? साथ रहने का मौका कितना मिलेगा?...घर में पहुंचने तक ही तो। देहरी पार करते ही अंजलि भीतर के विशाल नारी-समाज में विला जायेगी। लोग भी तो कम इकट्ठे नहीं हुए हैं। तीन खानदानों में कोई बचा भी नहीं छूटा। शायद अंजलि को अभी न लाना ही ठीक होता...लेकिन अब सोच कर लाभ भी क्या है? फिर अगर किसी समारोह पर नहीं बुलाता तो और कभी बुलाने के उसके अधिकार को मानता कौन? इतने बरसों से मनीश अंजलि का ही ध्यान करता रहा हो, ऐसी बात नहीं है। पर, अचानक आफिस में सुधीर का परिचय पाकर मन मानो हाहाकार कर उठा था। और फिर उपलक्ष सामने ही था, तो एक बार देखने की इच्छा हो ही आई। इसमें दोष क्या था? उसकी अपनी दो बहनें भी तो आयेंगी ससुराल से। बचपन में अंजलि के साथ नीला और लीला का कितना मेल था। उसी मेल से तो मनीश भी मंझले भैया कहलाने लगा था। बचपन की बातें छोड़ भी दी जायें तो अभी भी अंजलि का चेहरा देख कर कैसी ममता उमड़ती है! नीला और लीला की तरह इसे भी सस्नेह ममता से पास बैठा कर कुशल-क्षेम पूछने का जी चाहता है। जी चाहता है, पर इतने वर्षों बाद इस तरह उच्छ्वसित होना क्या अच्छा लगेगा? हो सकता है, अंजलि ही इस बीच बदल गई हो।

बात कोई होती नहीं।

दरअसल बात शुरू करना ही कठिन है। अंजलि भी मानो गूंगी हो गई है।

लम्बा रास्ता पार होने को आया। उतरने का समय नजदीक आते ही अंजलि नीरवता भंग करके कुछ हंसती हुई अचानक बोल उठी, 'जा तो रही हूं, पर जरा डर-सा लग रहा है।'

'डर?' मनीश चौंक उठा। 'डर की क्या बात है?'

'क्या पता बाबा, सुना है, आजकल तुम बहुत बड़े आदमी बन गये हो···!'

'मैं ही तो बना हूं ना बड़ा आदमी! बड़ा डर लग रहा है देख कर?'

'ऊहुं, सो क्यों लगेगा? असल में, बड़े लोगों का घर ही तो डरावना होता है।'

'पागलपन तो देखो इस लड़की का! नीला और लीला राह देखती बैठी हैं,

कितनी खुश होंगी तुझे देख कर। उनकी भाभी ने तो तुझे देखा ही नहीं है अब तक। वह भी—'

सभी मनीश की बनाई हुई बातें है। भाभी ने उसे देखा नहीं, यह ठीक है, पर देखने को आकुल हुई जा रही हैं, ऐसी बदनामी तो उनके दुश्मन भी नहीं करेंगे। और नीला, लीला तो समाचार सुनकर, बड़ी ही निरुत्साहित होकर सहज ही पूछ बैठी थी, 'अच्छा ? अंजू को भी बुला रहे हो ?' बस।

इस प्रश्न में भी कुछ अप्रसन्न-सा भाव था। मानो अंजू को अपनी बराबरी का दर्जा पाते देख कर उन्होंने अपने को अपमानित महसूस किया हो।

'बात यह है मंझले भैया, एक किनारे पर रहती हूं, समाज-परिवार के साथ सम्बन्ध मानो टूट-सा गया है। सो बड़ी अकेली हो गई हूं।'

'और बचपन में कैसी तेज थी ! उफ् !!'

'याद है तुमको ?' अंजलि इस बार सचमुच हंस पड़ी।

'याद ? थोड़ा-बहुत तो है हो। भले हो तुम लोग मिल कर मेरी स्मरण-शक्ति पर तुकबंदियां करते थे। है ना ? वह न जाने क्या...'

'ओ...वही जो मैंने और समीर ने मिल कर बनाई थी ? काशी से आये पण्डितजी', कहते-कहते रुक गई। उदास मुख से कहा, 'कहां चला गया समीर ? छोटी भाभी तब से तुम्हारे ही पास हैं ?'

'हां, एक तरह से मेरे ही पास हैं। कभी-कभी कमला के घर भी जाती हैं। पर कमला को, मां का बेटी की ससुराल में रहना पसन्द नहीं है, सो दो-चार दिन रह कर लौट आती है।'

'कितने दिन बाद सब से मिलना होगा।' गम्भीर, मृदु आवाज में कहा अंजलि ने। पर न आना ही अच्छा होता, यह बात क्या मनीश से भी बढ़ कर तीव्रता से नहीं समझ रही अंजलि ? सुधीर पर नाराजगी की इतना न सोचना ही बेहतर होगा। गरीबी की लज्जा कितनी प्रखर होती है ! और ऐश्वर्य का अहंकार कितना नग्न ! यह कहना तो अन्याय होगा कि आतिथ्य में कोई कसर रही हो। आने के साथ-साथ ही एक महरी ने स्नान-घर दिखा दिया था, यह पूछना भी नहीं भूली थी कि साबुन तौलिये की जरूरत है या नहीं। हाथ-मुंह धोते ही चाय-नाश्ता हाजिर हो गया और घर की मालकिन आते ही हंस-बोल कर कुशल-मंगल पूछ गयी थीं। उन्होंने अपना कर्तव्य भी सोलह आना निभा दिया था।

नीला एक कमरे में बच्चे को सुला रही थी। उस कमरे में किसी के भी आने की सख्त मनाही थी। लीला ने आकर खूब बातें की थीं। अंजलि का चेहरा ऐसा सूखी गोठ-सा क्यों हो गया है ? बाल-बच्चे क्यों नहीं हुए ? सुधीर मंझले भैया

के आफिस में कौन-सी नौकरी करता है ? तनख्वाह कितनी मिलती है ? वगैरह-वगैरह। सारी जानकारी हासिल कर के वह अभी-अभी हलवाइयों के काम की देख-भाल करने गई है।
देख-देख कर अंजलि को जोरों की हंसी आ रही थी। वाप रे ! इतना मोटा कोई कैसे हो जाता है ! कितने गज कपड़ा लगता होगा ब्लाउज में ?
छोटी मामी ने मिलते ही रोना-धोना शुरू कर दिया। पति और पुत्र का शोक पुराना हो चुका था, पर अंजलि से उसके वाद पहली मुलाकात हुई थी। सो उस दुख की वखिया उधेड़ी गई। और फिर कमला को भी यही मौका मिला था सौरी में बैठने के लिये। इतने भारी आयोजन में आ नहीं सकी। यह क्या कम दुख की वात है ? चुपके-चुपके भतीजे की वहू की निन्दा भी जी खोल कर की। पंचांग में और भी तो शुभ दिन थे...तब तक कमला को भी जेल से छुट्टी मिल जाती, पर वहू माने तव तो। पीहर का परिवार आ जाये, औरों का ख्याल उसे क्यों होने लगा ? पीहर की तो मक्खी भी नहीं छूटी होगी।

वस। अंजलि के प्रति और किसी का भी कोई कर्तव्य नहीं है। पर कौतूहल तो है। इधर-उधर ओट में, लुक-छिप कर जो दवी-दवी हंसी, इशारे, फुसफुसाहट, काना-फूसी चल रही है, वह अजलि की तीक्ष्ण संवेदनशीलता से छिपी नहीं है।
नीला का वेटा शायद सो गया है। अभी तक अंजलि से भेंट नहीं हुई, पर राय देने में वह भी पीछे क्यों रहे ? 'हाय, मर गई मैं तो ! शरम-लाज क्या कुछ नहीं है ? मुझे तो वावा मार डालो। काट डालो। पर ऐसी भूतनी-सी शकल ले कर चार लोगों के वीच जाने से रही।'
'और सूरत का क्या हाल हुआ है, देखा ?' लीला की आवाज थी, 'गाल तो दोनों जैसे किसी ने थप्पड़ मार-मार कर पिचका दिये हों...'
'गहनों के नाम पर शंख की चूड़ियां हैं सिर्फ। हैं जी, जमाई वावू की ये रिश्ते-दार कहां छिपी थीं अव तक ? आज तक तो देखा नहीं। हंय, विटिया रानी, नहीं हो तो तुम्हारी ही दो साड़ियां निकाल दो ना पहनने के लिये। चार लोगों के वीच वह कपड़े पहन कर निकलने से तुम्हारे ही मुंह पर थूकेंगे लोग।' मंझली बहू के पीहर की महरी कहते-कहते हंसी से दोहरी हुई जा रही थी।
'देगी मेरी जूती। न तो मैं साध से उसे न्योतने गई थी, न दौड़ी-दौड़ी लेने ही गई। आफिस से पेट्रोल मिलता है, सो क्या मुफ्त जलाने के लिये ? अरे भाई, प्यार-प्रीत जव थी, तव थी। अव तो यह आफिस के छोटे क्लर्क की वहू ही है और तुम हो वड़े अफसर। अव तुम्हीं लोग कहो, जाकर लाने की जरूरत क्या थी ?'

'लो, यह कह कर बात खतम कर रही हो ननदजी, अब भी है या नहीं इसकी कुछ ख्याल रखती है या नहीं ?' मनीष की छोटी ननदुल ने मजाक किया।
'बक-बक मत करो भाभी, मेरा जी जल रहा है।'
'यह लो। कोई भरोसा है ? ऐसा 'प्रीमियम कट' का चेहरा। सच, बड़ी मोहिनी सूरत है।'
पीहर की महरी फिर हंसते-हंसते बोली, 'वह सब कुछ नहीं है। गंगाजल एक तरफ है और हमारे जमाई बाबू एक तरफ। मैं तो साफ बात कहती हूं बहूरानी। बाजार में है कन्ट्रोल, खाने-पीने को कुछ मिलता नहीं। दो दिन यहां रह कर कुछ तर माल ही खाने को मिले।'
'मेरे तो तन-बदन में आग लग रही है। पड़ोसियों से ही दो-चार गहने-कपड़े मांग लाती कलमुंही।'
'अरे बिटिया रानी, बड़ी गहरी बात है। भाई बड़ा आदमी है। दिन-रात जो भैया-भैया कह कर गले पड़ती हैं, सो कुछ लिये-दिये बिना थोड़े ही छोड़ेंगी।'
'ऐसे थोड़े ही छोड़ेंगी। बुआजी का व्रत-उद्यापन हो जायगा तब टलेंगी महारानी।'
'तब भी टलें, तो प्राण बचे। तुम्हारे यहां के माल-मलीदे का मोह छूटेगा तब तो। आते ही तो रसगुल्ले और सन्देश पर जुट गई हैं।'
'क्या करें, घर के मालिक का हुक्म...'
अंजलि में चलने की भी शक्ति न रही। बरामदे के उस अंधेरे कोने से हिल भी न सकी।
कहां सुना था, सन्तान की लज्जा से रक्षा करने के लिए धरती मां फट गई थीं ? क्या कोरी कहानी थी यह ?...या बूढ़ी धरती मानो बहरी हो गई है ?
मिथ्या कलंक से सचमुच का दारिद्र्य क्या कम लज्जाजनक है ?
अगले दिन भोज है।
रात बीतते-न-बीतते ही चहल-पहल शुरू हो गयी। भीड़ में एक सुविधा यह है, कि अपने को छिपा कर चला जा सकता है। पर बिलकुल छिपा लेने से भी तो काम नहीं चलेगा। चेहरे पर हंसी-खुशी न बनाये रखने से तो पराजय और भी अधिक शोचनीय हो उठेगी।
पर इसी बीच एक विचित्र घटना घट गई।
मनीष ने बड़े व्यंग्य-भाव से घर में आ कर नीला को आवाज दी, 'अरे नीली, देख जरा, अंजू किधर है ? सुधीर ने आफिस के एक छोकरे के हाथ यह क्या भिजवाया है ? कहा, सुनार के यहां पड़ा था। कल मिल नहीं सका था। बहुत देर हो गई मुझे दिये। यह तो कहो याद आ गई, नहीं तो जाने कहां इधर-उधर डाल देता।'

सफेद कागज का आवरण हटा दिया मनीश ने।

अनूठी कारीगरी वाले कंगनों का एक जोड़ा था।

वजन और गढ़न, दोनों ही ललचाने वाली हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

अंजू के आते ही मनीश ने और भी व्यस्त हो कर उसे मानो जबरदस्ती ही वे कंगन पकड़ा दिये। मानो बड़ी हड़बड़ी में बोला, 'ले, यह देख अपने पतिदेव के कारनामे! जिस-तिस के हाथ ऐसी कीमती चीज भिजवादी जनाब ने। महीने भर पहले गढ़ने को दिये थे। जो भी हो, भई तेरे गांव के सुनार का भी काम तो बुरा नहीं है। ले, पहन ले। काम-काज का घर है, इधर-उधर भूल जाने से छुट्टी हो जायेगी।'

जैसी हड़बड़ी में आया था, वैसी ही व्यस्तता से लौट गया मनीश। उसने मुड़ कर भी नहीं देखा कि रंगमंच के लोग कैसे पत्थर बन गये थे।

पर पल भर के लिये ही।

नीला ने लपक कर कंगन ले लिये। कुछ देर उलट-पलट कर देखने के बाद लौटाते हुए बोली, 'हां, गढ़ाई तो अच्छी ही है, कितने तोले के हैं?'

'चार-एक तोले के होंगे।' अंजलि प्रकृतिस्थ हो गई थी, 'चूड़ियां बुरी तरह घिस गई थीं, सोचा, कंगन पहनने का इतना शौक है, सो वही बनवा लूं। हमारे उधर का सुनार तो बिलकुल बेकार है। उसे नहीं, यहीं कहीं बनने दिया था, शायद।'

पर मनीश भले ही भोला हो, और लोग तो नहीं थे। उसकी पत्नी तो ऐसी होशियार थी कि मनीश को बीच-बाजार में बेच-खरीद ले। बड़ा अफसर भले ही हो मनीश, सांसारिक बुद्धि उसकी इतनी पक्की नहीं है। नहीं तो कुरते की जेब में कंगन का कैश-मेमो रखकर दिन-दोपहरी चोरी-जैसा काम न कर बैठता।

उत्सव का घर ठहरा। आने वाली औरतों के शरीर पर एक-से-एक बढ़िया गहने थे। फिर भी अंजलि के कंगन घर भर के लिये कौतूहल की वस्तु हो उठे, 'देखूं जरा'...'अच्छा!'...'नीला भी यही कह रही थीं'...'किस सुनार से बनवाये हैं?' ...'गढ़ाई कितनी लगी?'...'अब बनो मत, कुछ भी नहीं पता तुम्हें? तुम्हारे पति ने क्या तुमसे बिना कुछ कहे ही...'

उत्तर देते-देते अंजलि परेशान हो गई।

रात को अगर सुधीर आ जाये, तो क्या किसी तरह यहां से निकला नहीं जा सकता? कोई बहाना नहीं बन सकता? पर सुधीर नहीं आयेगा, अंजलि को पता है। और फिर घर में कोई अंधेरा कोना भी नहीं है मुंह छुपाने के लिये। हजार-हजार कैण्डल पावर के इन हजारों बल्बों के प्रकाश में घूमते रहना होगा।

इधर मनीश की पत्नी भी आ कर पुकार गई हैं, 'आओ ननद जी, खाना खा लो।

भूख नहीं है ? यह क्या कह रही हो ? नहीं भाई, छब्बीस मील पार करके न्यौता निबाहने आई हो। अब 'भूख नहीं है' कहने से कैसे चलेगा ? तुम्हारे भैया सुन लेंगे तो मेरी खैर नहीं है। वैसे ही तो उनके मन में घुसा हुआ है, कि इस घर में तुम्हारा पूरा आदर-सत्कार नहीं हो रहा है। हम लोग मानो बड़े आदमियों को ही पूछते हैं !'

जाकर पत्तल के आगे बैठना ही पड़ा।

सोने की व्यवस्था थी छोटी मामी के कमरे में।

काफी रात गये, काम निबटा कर जब अंजलि सोने आई, तो देखा, छोटी मामी अभी भी जाग रही थी। अंजलि को देख कर क्षुब्ध कण्ठ से बोली, 'यह सब क्या सुन रही हूं, अंजू ?'

'क्या मामी ?'

थकान के मारे शरीर के साथ मानो कण्ठस्वर भी टूट-सा गया है।

'सुना है, मनि ने तुझे कंगन गढ़ा दिये हैं ? तू वही पहन कर सिर ऊंचा किये घूम रही है ! और सब से कह रही है कि जमाई ने बनवाये हैं ? छि छि बेटी ! यह क्या कर रही है ?'

अंजलि म्लान-सी हँसी हंस कर बोली, 'क्यों मामी ? तुम्हारे जमाई की क्या एक जोड़ा कंगन गढ़ा देने की भी हैसियत नहीं है ?'

'हैसियत है या नहीं, यह तो तुम्हीं जानो बिटिया। होती तो तुम सिर्फ शंख की चूड़ियों का गुच्छा खटखटाती हुई ही सगे-सम्बन्धियों के बीच न आ पहुंचती। अरी सुनो बिटिया, आग कभी भी राख से ढकी-छिपी नहीं रहती। सुना है, मनि की जेब से उन कंगनों की रसीद निकली है। बहूरानी ने देख कर महाभारत ठान दिया है।...जाने अब तक क्या निपटारा हुआ होगा। यह सब क्या है ? तुमसे भी कहती हू बेटी, अमीरी-गरीबी भाग्य की बात है। अपनी नीयत बनाये रखना बड़ी चीज है। दूसरे की चीज का लोभ करने वाले को नरक मिलता है, बेटी। वो कंगन मुझे दे दो। चुपके से बहूरानी को लौटा दूंगी।'

अंधेरे में किसी का चेहरा भले ही न दिखाई दे, सोने का स्पर्श पहचानने में भूल नहीं होती। छोटी मामी कंगनों को खुशी-खुशी आंचल में बांधते-बांधते बोली, 'बहू भी तो सीधी नहीं है। बड़े घर की बेटी है तो क्या हुआ ? दिल बहुत छोटा है।'

देखा जाय तो अंजलि की यह यात्रा बड़ी ही बुरी रही। नहीं तो ऐसा होता ? सुना, कल से ही सुधीर की उल्टी पर उल्टी हो रही है, अंजलि को अभी जाना होगा। मनीश ने आफिस जाते ही उल्टे पांवों लौट कर सुनाया।

छोटी मामी हाय-हाय कर उठीं। कल रात को सधवा नारी के हाथ से कंगन खुलवा लिये थे। इस अपशकुन की स्मृति नाग बन कर उन्हें डंसने लगी। कातर कण्ठ से बोलीं, 'क्या कह रहा है मनीश ? खतरे की बात तो नहीं है ? किसने कहा तुझसे ?'

'आफिस का ही एक छोकरा उनके गांव से आता है—चलो, अब देर करने की जरूरत नहीं है। तैयार हो जा अंजू। अरे ! घबराने की कोई बात नहीं है। गांव के लोगों को तो आदत ही बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहने की होती है। हो सकता है, हालत इतनी खराब न भी हो। चल, अब देर मत कर।'

'तुम जा रहे हो छोड़ने ? आफिस का हर्जा नहीं होगा ?' गृहिणी ने तीक्ष्ण स्वर में प्रश्न किया।

'जहन्नुम में जाये आफिस ! जिसकी चीज ले आया हूं उसे लौटा आऊं, तो सन्तोष की सांस लूं।'

फिर वही रास्ता।

फिर वही दो नीरव प्राणी।

कलकत्ता के आस-पास के रास्तों तक गाड़ी तेजी से दौड़ती रही। फिर भी उसकी गति क्रमशः धीमी होने लगी। टेढ़ा-मेढ़ा संकरा-सा गंवई रास्ता है। सावधानी से चलना होगा।

आखिर नीरवता भंग की मनीश ने। गाड़ी को लगभग रोक दिया और धीमे से बोला, 'तुमसे मुझे माफी मांगनी चाहिए, अंजू।'

'छोड़ो मंझले भैया, कोई जरूरत नहीं है माफी मांगने की। मुझे पता है—'

'क्या पता है ?'

'कोई बीमार-वीमार नहीं हुआ है।'

'ऐं ! तुझे पता है ? कैसे पता चला ?'

'ऐसे ही चल गया', अंजलि मीठी-सी हंसी हंस दी।

'तो फिर देखता हूं, तुमसे छिपाने की कोई भी बात नहीं है।'

'सो तो है ही।'

एक बार फिर अंजलि हंस पड़ी—वही सहज हंसी।

कुछ देर फिर चुप्पी छाई रही।

मनीश फिर कुछ हिचकिचाते हुए बोला, 'सच मान अंजू, तेरा अपमान करने के लिए नहीं बुला ले गया था।'

'तुम क्या नाराज हो गये हो मंझले भैया ?'

'हो सकता है, मुझे सब पता न हो। हो सकता है, तुमने और भी ज्यादा लांछना

नहीं हो। पर सच कहता हूं दीदी, मैंने भी कम दुख नहीं पाया है।'

यह सम्बोधन नया था।

अंजलि व्याकुल होकर बोल उठी, 'मुझे यह भी पता है मंझले भैया।'

'तो फिर मेरा एक अनुरोध रखो बहन, मानोगी ?'

'मानूंगी क्यों नहीं भैया, तुम बोलो तो।'

पत्ले सफेद कागज में लिपटी कोई चीज मनीश ने जेब से निकाली।

उजले-चमकते हुए एक जोड़ा कंगन।

अंजलि हैरान, कुछ देर तक देखती रही। डिजाइन दूसरी है। पर कैसा बचपना कर रहा है मनीश ? अचानक मनीश को चौंकाती हुई अंजलि खिलखिला कर हंस पड़ी।

'तुम्हारे यहां क्या कंगन पेड़ पर फलते हैं मंझले भैया, जो हाथ बढ़ा कर तोड़ लेने से ही काम चल जाता है ? एक और जोड़ी क्या सोच कर खरीद डाली ? कुछ लाज-शरम भी है या नहीं ?'

'लाज ? कैसे कह दूं कि नहीं है, बता ? मेरी दी हुई चीज लोगों ने तुमसे छीन कर रख ली, यह लज्जा तो मेरी मर कर भी नहीं जायेगी।'

'तुम तो हो पागल, मंझले भैया। इस जमाने में बेबात इतने रुपयों की बरबादी कौन गृहिणी सहन करेगी ?'

'छोड़। मुझसे वकालत करने की जरूरत नहीं है। बस मेहरबानी करके इन्हें लौटा मत देना। घर के रुपयों से नहीं खरीदे हैं, अपनी अंगूठी के रुपयों से लिए हैं।'

सच ही तो। कल मनीश की उंगली में जो हीरे की कीमती अंगूठी झलमला रही थी, आज उसका स्थान सूना था।

'छि छि, यह क्या किया तुमने मंझले भैया ? नहीं, नहीं, यह पागलपन क्यों कर बैठे भाई ?'

'ठीक है, तब मत ले। समझ गया। तू मुझे क्षमा नहीं कर सकी।'

यह और मुसीबत आई। तर्क का तो उत्तर दिया जा सकता है। नीरव अभिमान का क्या उत्तर होगा ?

'नाराज हो गये मंझले भैया ?'

'नाराज ? नाराज होने का मेरा अधिकार ही क्या है ?'

'मुसीबत है। अच्छा बाबा लाओ, पहन लेती हूं—लो देखो, हुआ ?'

'हुआ। इतने दुखों में यह एक सान्त्वना रहेगी मुझे। प्रार्थना करता हूं बहन, तुम्हारे हाथ में यह अक्षय बना रहे।'

दरवाजे के सामने उसे उतार कर मनीश चटपट लौट गया। अगर पहियों से उड़ती

हुई धूल के बादल गाड़ी को ढंक न लेते, तो शायद गाड़ी दूर जाती हुई दिखाई भी देती।

अंजलि बेमतलब ही सड़क पर क्यों खड़ी है ?

उड़ी हुई धूल का एक-एक कण वापस भूमि पर अपने पुराने परिचित वातावरण में लौट आ रहा है।...

दरवाजे पर ताला डाल कर सुधीर आफिस चला गया है। आज अंजलि के लौटने की बात ही नहीं थी। शायद पड़ोस की सरयू के यहां तलाश करने पर चाभी मिलेगी। बल्कि कुछ घण्टे वहीं बैठ कर भी बिताये जा सकते हैं। पर अंजलि क्या ऐसे ही बेवकूफों की तरह सड़क पर खड़ी रहेगी ? कब तक खड़ी रहेगी ?

ना, अंजलि मूर्ख नहीं है। प्रकृतिस्थ होने में देर नहीं लगती है। सुधीर के आने के पहले ही घर के कामों में लग कर सहज हो जाना होगा, यह वह भूली नहीं है। निमन्त्रण का आयोजन ही जब निबट गया है, तो अंजलि लौटेगी नहीं ? क्या झूठ-मूठ दूसरों के यहां पड़ी रहे, जब बेचारे सुधीर को वहां उंगलियां जला-जला कर हाथों से खाना पकाना पड़ता है।

पर सरयू के घर की ओर जाती-जाती वह अचानक थमक कर रुक गई। कैसे ताज्जुब की बात है ? वह क्या भूल गई थी ?...कुछ पल वह नये अलंकारों की शोभा से मण्डित अपने हाथों को अभिभूत हो कर निहारती रही। कठोर धातु है... फिर भी भाई के स्नेह का बन्धन बन कर दोनों कोमल हाथों को जकड़े हुए है।

हां, प्रेम नहीं, करुणा भी नहीं, स्नेह।

पर दुनिया क्या ऐसी मूर्ख है कि स्नेह को ही समझ कर सन्तोष कर लेगी ?

गर्मियों की दोपहरी कैसी निर्जन है !

पोखर का पानी कितना शान्त है !

'टप्' का यह धीमा-सा स्वर किसी के भी कान में नहीं पड़ेगा। कितनी धीमी तो आवाज है ! कोई छोटी-सी कंकड़ी, किनारे के किसी वृक्ष का छोटा-सा फल, अक्सर ही तो पोखर में गिर कर तल में बैठ जाते हैं।

किसे पता चलता है !

पोखर की शान्त सतह का कम्पन ही भला कितनी देर बना रहता है !

सुबोध घोष

आर्किड

नये माडल की 'टूरर' है। इंजिन की आवाज बहुत ही धीमी है। तभी तो पता नहीं चलता कि गाड़ी कब फाटक के पास आ खड़ी हुई है।

पर टूरर का हार्न इतना धीमा नहीं है। स्वर क्या है, मानो चकित उल्लास का स्फुरण है। सुनते ही समझ जाती है करुणा, गुणाकर सचमुच आ पहुंचा है।

ग्रिल के फाटक खुल गये हैं, यह भी मालूम पड़ गया है। पर यह आवाज कैसी है? क्या फाटक खोलते-खोलते नौकर रामटहल के हाथ फिसल जाने के कारण गिर फाटक से टकरा गया है? इसीलिये क्या ग्रिल का लोहा झनझना उठा है? या फिर गुणाकर की नई टूरर ने बन्द फाटक को धक्का दे मारा है?

ठीक ही तो है। गुणाकर के इस समय यहां आने की बात का पता होने पर भी फाटक बन्द क्यों था? किस साहस से बन्द रखा गया था? यह साहस भी नहीं है—सरासर दुस्साहस है। रामटहल को पहले ही कह देना उचित था कि आज नौ बजे सेन साहब आयेंगे, वह फाटक खोल कर उसके पास खड़ा रहे। और साहब जब आ जायें तो उन्हें तीन बार सलाम करना न भूले।

ये सब बातें पहले ही सोच रखने पर भी कहना भूल गई करुणा। नौकर शायद उधर कहीं चुपचाप बैठा हुआ ऊंघ रहा होगा, अचानक गाड़ी का हार्न सुन कर फाटक खोलने को दौड़ आया होगा। गुणाकर की गाड़ी ने शायद उसके पहले ही

कहता है तो करुणा करे भी क्या ? अपने आप में ही एकाकी जीवन बिताना—यही उस लड़की की नियति है, जिसने एक दिन अपनी सहेलियों के सामने इतरा कर कहा था, 'गर्मियों में तो पहाड़ छोड़ कर कहीं भी नहीं रहूंगी।'
'जाड़ों में तो कलकत्ता आयेगी ?'
'सो कैसे कह दूं ?'
'क्यों ?'
'जाड़ा ही तो सैर-सपाटे का सीजन है। उनसे कहूंगी, जाड़ों में एक महीने की छुट्टी ले लें। और जहां भी जाऊंगी, रेल में हरगिज नहीं जाऊंगी। बाइ कार जाऊंगी। अपनी गाड़ी में गये बिना घूमने का कोई मतलब ही नहीं है।'
हां, अपनी गाड़ी ! आज वह बात याद आने के साथ-साथ चौंक गई करुणा। एक तो खिड़की से लिपटी सिरपेंच की लता से एक गिलहरी कूद कर भागी है, और फिर गुणाकर की नये माडल की टूरर दिखाई पड़ रही है। सुबह की धूप में कैसी चमक रही है टूरर ! गुणाकर की यह गाड़ी ही तो वायदे की याद दिला देती है। चाहे तो आज ही या और किसी भी दिन, करुणा जब भी चाहे, बाइ कार घूमने निकल सकती है। गुणाकर ने कहा था, 'संकोच मत कीजियेगा। जब जी में आये, कह दीजियेगा कहां जाना है, गाड़ी भेज दूंगा।'
गुणाकर के अनुरोध को करुणा ने चुपचाप सुन लिया था, कोई उत्तर नहीं दिया था। पर आज, लगता है, उत्तर देना ही होगा। आज गुणाकर से संकोच करने का, उसके आगे कुण्ठित नीरवता साधे रखने का कोई अर्थ नहीं निकलता। आज गुणाकर से ही तो उसके उपकार के दान-स्वरूप एक चेक या रुपयों की गड्डी हाथ फैला कर लेनी होगी।
बरामदे में टहलते गुणाकर के जूतों की मचमचाहट सुनाई दे रही है। बरामदे में तीन कुर्सियां पड़ी हैं। फिर भी गुणाकर कुर्सी पर नहीं बैठा है। आज गुणाकर शायद कल की तरह या पिछले साल के उन सौ दिनों की तरह सिर्फ बाहर के बरामदे की कुर्सी पर बैठ कर ही सन्तुष्ट होना नहीं चाहता है। और कोई दिन होता तो करुणा भी अब तक कमरे से निकल कर मुस्कराती हुई उसकी अभ्यर्थना करके उससे बैठने का आग्रह करती। पर आज कमरे के दर्पण में अपनी ही मधुर मुस्कराती छवि देख-देख कर करुणा के नयन जाने क्यों बेचैन हुए जा रहे हैं। उसे भय क्यों लग रहा है ? छिः, भय किस बात का ? गुणाकर जैसे व्यक्ति से भी डर जाना तो बड़ी ही कमजोर किस्म की भीरुता होगी। गुणाकर के साथ इस एक वर्ष का परिचय करुणा के लिये सौभाग्य ही सिद्ध हुआ है।
करुणा के लिये गुणाकर निपट अपरिचित नहीं है। इस घर में उसका आगमन

आकस्मिक रूप से हो हुआ था, पर उस आगमन ने किसी को चौंकाया नहीं। गुणाकर दूर के रिश्ते से प्रणव का कोई सम्बन्धी भी होता है। इसके अलावा, करुणा के पिता से भी उसका खासा परिचय था। यह वही गुणा कर तो है, जो सात साल पहले एक कंस्ट्रक्शन कम्पनी का मामूली-सा क्लर्क था। उस कम्पनी के लिये मशीन आदि खरीदने के लिए वह एक बार अमेरिका भी हो आया है। वहां प्रणव के साथ उसकी कई बार मुलाकात भी हुई थी। फिर गुणाकर कब स्वदेश लौटा और कब खुद ही एक विख्यात बिल्डर और कन्ट्रैक्टर बन बैठा, यह खबर एटर्नी प्रतुल दास को भी काफी दिनों तक नहीं लगी। जिस दिन उन्हें यह सब पता चला उस दिन वे बहुत ही गम्भीर हो गये थे। करुणा की मां ने पूछा था कि उन्हें आखिर हो क्या गया है ?

'कोई खास बात नहीं है।'

'फिर भी ?'

'गुणाकर ने काफी उन्नति कर ली है।'

'गुणाकर कौन ?'

'कल्ना वाले विधु भैया का लड़का—गुणाकर।'

'ओह हां, याद आया।'

'उसी के बारे में सोच रहा था।'

'क्या ?'

'इसी गुणाकर के साथ लड़की का ब्याह हो जाता तो आज...'

'भाग्य का लिखा कौन मिटा सकता है ?'

'भाग्य का लिखा ही है। नहीं तो विदेश से इतना पढ़-लिख कर लौटा आदमी भी पागल हो जाता है ?'

एक साल पहले की बात है। जिस दिन गुणाकर इस घर में पहली बार आया था, उस दिन करुणा के पिता एटर्नी प्रतुल दास भी यहीं थे। लड़की की विचित्र नियति को अपनी आंखों से देखने आये थे।

गुणाकर ने मयूरपुर के पास ही एक पुल तैयार करने का ठेका लिया था। वहीं बाजार में प्रतुल दास के साथ उसकी अचानक ही भेंट हो गई थी। प्रतुल दास ने बहुत आग्रह से अनुरोध किया था, सो गुणाकर दो बार इस मकान में आकर मिल गया था। इसी से प्रतुल दास के बेटी-दामाद से बात-चीत करने का भी सुअवसर मिल गया था उसे।

बेटी और दामाद, अर्थात् करुणा और प्रणव, दोनों से ही मिल कर

गुणाकर को कुछ आश्चर्य ही हुआ था।
प्रणव के साथ तो सिर्फ नाम को बातें हुई थीं। वह सिर्फ एक बार आकर खड़ा हो गया था और बोला था, 'चलिये।'
'कहां ?' गुणाकर ने पूछा था।
'मेरे ग्रीन हाउस में। अपनी एक डिस्कवरी दिखाऊंगा।'
'क्या कहा आपने ?'
'कैलन्थिस करुणाइना।'
'क्या मतलब ?'
'एक नई तरह का आर्किड है।'
गुणाकर हंस पड़ा, 'अजी साहब, मैं तो ईंट-पत्थर और लोहा-लक्कड़ का मजदूर हूं। मुझे आर्किड की ब्यूटी देखने की फुरसत कहां है ?'
प्रतुल बाबू ने गम्भीर स्वर में पूछा, 'शौक तो है ?'
गुणाकर ने कहा, 'वह भी नहीं है।'
करुणा चाय ले आई। पर करुणा के साथ पहले वार्तालाप की प्रीति चाय से भी कई गुना अधिक मधुर थी। प्रतुल दास ने अपने एटर्नी जीवन के अनेक किस्से सुनाये। गुणाकर सेन ने भी अपने बिल्डर एण्ड कन्ट्रक्टर जीवन के प्रयत्नों और कष्टों की कहानी मुक्तकण्ठ से कह सुनाई।
करुणा ने कहा, 'पर आप बड़े खराब हैं।'
'क्यों ?'
'मिसेज सेन को साथ क्यों नहीं लाये ?'
गुणाकर ठठाकर हस पड़ा, 'आप गलत समझ बैठी हैं। आपके अभियोग का कोई आधार ही नहीं है।'
प्रतुल दास ने कहा, 'गुणाकर ने शादी नहीं की है अभी तक।'
'तो फिर चलूं आज ?' गुणाकर उठने लगा।
करुणा ने पूछा, 'फिर आयेंगे न ?'
'आप लोग बोर न हों, तभी आने का साहस कर सकता हूं, नहीं तो नहीं।'
करुणा ने कहा, 'नहीं, नहीं, बोर क्यों होऊंगी ?'
उस दिन गुणाकर का विदा करते समय करुणा के जिस शान्त सुन्दर मुख पर अभ्यर्थनापूर्ण स्मित मुस्कान खेल रही थी, वह मुख आज साल भर बाद भी वैसा ही सुन्दर है। बल्कि आज तो उसे और भी अधिक सुन्दर और रंगीन हो उठना चाहिये। आज ही तो इस तथ्य को हृदय से हाथ फैला कर स्वीकार करना है, कि गुणाकर इस घर का परम बन्धु है।

करुणा भूली नहीं है। उस दिन गुणाकर के जाने के बाद कितनी देर तक पिताजी गम्भीर हो कर बैठे रहे थे। फिर अचानक बोल उठे थे, 'बेकार आदमी !' प्रणव के अरमानों में गढ़े हुए उस ग्रीन हाउस की तरफ वे बड़ी हिकारत से देख रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि करुणा उनकी कुर्सी के पीछे ही खड़ी है।
पर करुणा की परछाईं मानो चौंक उठी थी, तभी प्रतुल बाबू ने कुछ आश्चर्य-चकित हो कर पीछे की ओर देखा था। प्रतुल बाबू ने देखा, करुणा के शांत चेहरे पर मुस्कान की दीप्ति फैली हुई है। कैसी अद्भुत हंसी है। दोनों ओठ मानो आर्किड की ही नरम-नरम पतली-पतली पंखुड़ियों की तरह धीमे-धीमे काप रहे हैं।

अगले दिन शाम ढलने के पहले ही गुणाकर आ गया था। करुणा भी मीठी चाय और वैसी ही मधुर हंसी से उसकी अभ्यर्थना करना नहीं भूली।
गुणाकर ने कहा, 'ताज्जुब है। मि० बसु को तो मैंने पहले भी कई बार देखा है।'
करुणा ने कहा, 'हो सकता है।'
'शायद अमेरिका में ?'
'शायद।'
'पर लगता है वे मुझे पहचान नहीं पाये।'
प्रतुल बाबू ने कहा, 'वह कोई पहचानने वाला आदमी है ? उसके दिमाग में ठहरता ही क्या है ?'
'वह तो अच्छे बोटेनिस्ट हैं।'
'भगवान जाने ! पर आज तक एक पैसा तो कमाया नहीं।'
गुणाकर गंभीर हो आया, 'तो फिर...तो...मेरा मतलब है, इस तरह और कितने दिन...?'
प्रतुल बाबू बोले, 'कितने दिन क्या ? अब और जरा भी नहीं। दर-दर के भिखारी होने की नौबत आ गई है। इसीलिये तो कह रहा हू, जितनी जल्दी हो सके, किसी नौकरी से लग जाये।'
गुणाकर ने पूछा, 'कौन-सी नौकरी ?'
'वही तो प्रणव को समझाने आया हूं। सरकारी कृषि-विभाग में एक सुपरिण्टेण्डेन्ट की जरूरत है, अखबार में विज्ञापन निकला था। दिल्ली से नरेश ने लिखा है, वह प्रणव को यह नौकरी दिला सकता है।'
गुणाकर की दृष्टि में अचानक मानो वेदना की ज्वाला-सी धधक उठी, 'यह भी कोई नौकरी है ? छि: !'
करुणा चौंक उठी। उसके कोमल अधरों का हास भी चौंक उठा, जैसे आर्किड का

फूल हवा का स्पर्श पा कर कांपने लगता है।

करुणा की ओर देख कर कहने लगा गुणाकर, 'वह तो निरा माली का काम है, कुम्हड़ा, बैंगन और कद्दू उगाने का काम। कोई जरूरत नहीं है वह काम करने की।'

प्रतुल दास बड़बड़ाने लगे, 'ठीक है, जो भाग्य में लिखा है, वही हो।'

प्रतुल दास आज इस संसार में नहीं हैं। वे देख कर नहीं जा सके कि जो भाग्य में लिखा था आखिर वही हुआ। इस एक साल में बोटेनिस्ट पी० बसु के ग्रीन हाउस में आर्किड के ढेरों फूल खिले हैं। लिली पाण्ड नये-नये फूलों से छा गया है। दो जर्मन टूरिस्ट डाक्टर पी० बसु का हर्बेरियम देख कर चकित रह गये थे और ढेर सारी कलमें भी ले गये थे। उन्होंने कुछ रुपये भी देने चाहे थे, पर पी० बसु ने कहा था, 'नहीं, रुपयों को मुझे जरूरत नहीं है, नहीं होती।'

सुन कर करुणा के शांत चेहरे की मुस्कान मानो झुलस-झुलस कर जलने लगी थी। यह स्वप्नजीवी मनुष्य भी खूब है। इसके सपनों के संसार में फूलों के झुण्ड खिलखिलाते हैं, पराग से बोझिल हवा तरंगित होती रहती है, पंखुड़ियां कांपती हैं, और भोर ही ओस का मधुपान करने के लिये अंकुर मचलते हैं। पी० बसु भी खूब हैं। उन्हें ध्यान ही नहीं है कि करुणा के गले में दो दिन पहले जो सोने का हार झूल रहा था, वह आज दिखाई नहीं दे रहा है। करुणा की गहनों की पेटी तो खाली हो ही चुकी थी, अब शरीर के गहनों की बारी आई है। वह दिन भी दूर नहीं है, जब करुणा की शादी की अगूठी भी बेच डालनी होगी। उसके बाद ? अपने मन की उधेड़-बुन में ही व्यस्त वैज्ञानिक पी० बसु जब खाने की मेज पर आ खड़े होंगे, तो उनके सामने रहेगी खाली प्लेट—और कुछ भी नहीं।

पर कौन कहता है कि पी० बसु सुखी नहीं हैं ? पिछले वर्ष एक भी उद्वेग ने आकर उनके मन को नहीं झकझोरा है। धतूरे को विष-हीन करना है, सफेद पुनर्नवा को रंगीन बनाना है। जिनके दिमाग की चिन्ताएं, पलाश के फूलों में सुगन्ध और नीम के पत्तों में मिठास भरने को लेकर ही चलती हैं, उन्हें रुपये-पैसे या गृहस्थी के सुख-दुख का ध्यान आयेगा ही क्यों ?

एक बार कुल्टी से करुणा के दो चचेरे बड़े भाई आये थे। पी० बसु ने उनसे भी पलाश के रंग और नीम के स्वाद को लेकर विस्तृत चर्चा की थी। भाइयों ने शंकित हो कर करुणा से कहा था, 'साल में कम-से-कम तीन महीने हमारे यहां आ जाया कर। नहीं तो तू भी पागल हो जायेगी।'

धीरेन भैया हंस पड़े, 'वह उस नये आर्किड का क्या जाने कौन-सा तो नाम रखा है जनाब ने ?'
गगन भैया भी हंस पड़े, 'कैलेन्थिस करुणाइता !'
धीरेन भैया ने पूछा, 'क्या मतलब हुआ इसका ?'
गगन भैया समझाने लगे, 'समझे नहीं ? करुणा को लेकर इस नये आर्किड का नामकरण हुआ है। कहते हैं, यह मि० बसु की नई डिस्कवरी है, सिक्किम के किसी जंगल में मिली थी।'
'किसने कहा ?'
'बोटेनिस्ट महाशय खुद ही बड़े गर्व से कह रहे थे।'
धीरेन भैया ठहाके लगाते रहे, 'तब तो तू धन्य हो गई है करुणा !'
'शाहजहां दि सेकण्ड कहना पड़ेगा।'
'पत्नी-प्रेम का कैसा अनुपम उदाहरण है !'
करुणा के चेहरे की ओर देखते ही दोनों भाइयों की भृकुटियां एक साथ चढ़ गईं, 'अरे ! तू भी हंस रही है बेवकूफों की तरह ? लगता है, तुझे यह सब सहना अच्छा लगता है।'
ना, अब और नहीं सहा जायेगा। इस सत्य को अब करुणा खुद ही समझ गई है। वह हंसी मानो थकान से चूर, खून से लथपथ होकर झर जाना चाहती है। प्रणव के जीवन में ही नहीं, इस घर में भी करुणा का अस्तित्व सर्वथा निरर्थक है।

एक रोज न जाने कहां से एक कीड़े ने ग्रीन हाउस में घुस कर एक आर्किड की पंखुड़ियां कुतर डाली थीं। बोटेनिस्ट साहब कैसे कातर हो उठे थे। करुणा ने देखा था, प्रणव की आंखें छलछला आई थीं। यह सब तो ठीक है, पर महीने भर से करुणा जो हर रात खुक-खुक खांसती है, वह क्या प्रणव को सुनाई नहीं देता ? एक बार भी स्नेह से कुछ पूछा उसने ? एक बार भी व्यथित हुआ ? आंखें भर आना तो दूर की बात है, करुणा की खांसी की आवाज सुनकर भी मात्र इतना कह पाया प्रणव, 'मैं बगीचे में जा रहा हूं। जरा एक कप गरम चाय पहुंचा दो वहां तो अच्छा रहे।'
करुणा ने कोई आपत्ति नहीं की। खांसते-खांसते ही चाय बना कर बगीचे में जाकर प्रणव को दे आई थी।
यह घर मानो उसके पति का घर नहीं है—एक निर्बोध शिशु का घर है, जो निर्बोध ही नहीं, निष्ठुर भी है। उद्भ्रान्त भी है। करुणा के जीवन की सारी कल्पनाओं-कामनाओं को, सारी आशाओं को जिसने अपनी गहरी विरक्ति और अनादर की

पी० वसु हंसने लगे, 'मैं पी० वसु हूं—तुम्हारा पति।'
'क्या कह रहे हो ?'
'मैंने कल खाना-वाना खाया था क्या ?'
कमरे में अंधेरा फैला है। इसीलिये वोटेनिस्ट पी० वसु के निर्वोध चेहरे पर व्यथा है या विस्मय, कुछ पता नहीं चलता। पर तकिये में मुंह दवा कर रुलाई रोकने की चेष्टा करने लगी करुणा।
पी० वसु जल्दी से वोले, 'क्या कहना है, जल्दी कहो ना ? मुझे काम है।'
करुणा चीख उठी, 'हां, खाया है।'
'तो वही कहो ना।' आश्वस्त भाव से बाहर निकल गये पी० वसु।
इतने बड़े झूठ को कितनी जोर से चीख कर सुनाया है करुणा ने। कल दिन भर जिस आदमी के पेट में दाना भी नहीं गया, वह करुणा की चीख कर कही गई इस वात से ही आश्वस्त होकर कितनी खुशी-खुशी चला गया।

इसके वाद...एक वदली घिरी सन्ध्या। मेघ गरज नहीं रहे हैं, पर विजली चमक हरी है। गुणाकर आया है। आज मन में कोई कुण्ठा नहीं रखेगी करुणा। कहने में देर भी नहीं करेगी।
'मुझे कुछ रुपयों की जरूरत है।'
'कितने रुपयों की ?'
'आप ही सोच देखिये।'
'पांच हजार से काम चलेगा ?'
'चलेगा।'
'कव चाहिये ?'
'आज ही।'
'कल देने से नहीं चलेगा ?'
'चलेगा।'
'तो फिर चलूं, आज ?'
'कल कव आ रहे हैं ?'
'आप ही वताइये, कव आऊं ?'
'सुवह।'
'ठीक है।'
ठीक ही रहा। आने में देर नहीं की गुणाकर ने। चारों तरफ की धूप खिलखिला रही है। गुणाकर आज इस घर की सभी चिन्ताओं को मिटा देने के लिये ही

आया है।
गुणाकर के जूतों की मचमचाहट आज आखिर इतनी उतावली क्यों न हो ? आज तो करुणा के चेहरे पर स्वागत की मुस्कान और भी सुन्दर हो उठेगी।
बस कंघी से बालों को ऊपर-ही-ऊपर संवार कर, जूड़ा कुछ बना कर बांधने से ही काम चल जायेगा। फिर कमरे के दरवाजे पर खड़ी हो कर बरामदे में घूमते गुणाकर को पुकारना होगा, 'आइये।'
पर यह क्या हुआ ? करुणा के चेहरे की हंसी मानो एक धधकती हुई अग्निशिखा की हंसी हो उठी है। दर्पण के सामने खड़ी हो कर अपनी इस अद्भुत हंसी को पागलों-जैसे अनुराग से निहारने लगी करुणा। उसके कान लाल हो उठे। उसे मानो सुनाई देने लगा, एक वीभत्स दुस्साहसी बाहर बरामदे में जूते मचमचाता हुआ टहल रहा है।
ना, उस तरफ नहीं, भीतर के बरामदे की तरफ दौड़ गई करुणा। ना, यहां भी नहीं। भीतर के बरामदे के एक कोने में चुपचाप खड़े रहने पर भी बाहर के बरामदे की मचमच की आवाज सुनाई दे रही है। एक हिंसक भय की काली छाया करुणा की साड़ी का आंचल नोच डालने के लिये लोभी की तरह बार-बार उसके कमरे में ताक-झांक कर रही है। करुणा असहाय की तरह अपनी रक्षा के लिये कोई दृढ़ आश्रय खोज रही है। दौड़ती हुई वह पी० बसु के ग्रीन हाउस के द्वार पर जा खड़ी हुई।
पी० बसु चौंक उठे, 'तुम यहां ?'
करुणा हांफ रही थी, 'और कहां जाऊं ?'
पी० बसु बोले, 'देखा ?'
'क्या ?'
'कैलन्थिस करुणाइना।'
'तुम्हारा प्यारा आर्किड ?'
'हां।'
'बहुत सुन्दर है।'
चौंक कर पी० बसु बहुत देर तक करुणा के चेहरे की ओर देखते रहे। उनकी आंखों में जाने कैसा एक विस्मय छलक आया, 'ऐं ? इतने दिन क्यों नहीं कही यह बात ?'
'कह कर फायदा क्या था ?'
'मुझे तो था फायदा।'
'तुम्हें ?'

शीला अनिन्द्य को अकेला पाकर बोली, 'आहा, हमारे सामने तो ससुराल की कितनी तारीफ हो रही है ! पीठ पीछे तो निन्दा ही करते होगे। छोटी दीदी को ताना देते होगे। हम सब जानते हैं।'

अनिन्द्य को अधिक देर रोका नहीं जा सका। व्यस्त प्रोफेसर है। दो शिफ्टों में पढ़ाते हैं। फिर होस्टल के लड़के उन्हीं के जिम्मे हैं। ससुराल में अधिक देर रुकने का समय कहां। षोडशी साली का अनुरोध भी उन्हें अस्वीकार करना पड़ता है। काम का ऐसा ही दबाव है, उन पर।

जीजाजी में से शीला अनिन्द्य को ही सबसे ज्यादा मानती है। बहुत आमोद-प्रिय और शौकीन हैं अनिन्द्य। कहीं से एक सफेद हरिण लेकर सेवा में हाजिर हुए। दूसरी बार जाने कहां से एक जोड़ा विचित्र रंग-बिरंगी चीनी मुर्गी ले कर आये। किन्तु इस बार जो लाये वह है अतुलनीय। गोरे रंग का यह नीली आंखों वाला प्राणी इन सबका सिरमौर है। अच्छा, मैक्स माने क्या हो सकता है? कौन जाने, क्या होता है? शीला ने कई बार लक्ष्य किया है, बहुत से नामों का कोई अर्थ ही समझ में नहीं आता। चाहे जगह का नाम हो, या मनुष्य का। नाम का जो माने तुम लगा लो, वही है। मैक्स शब्द का अर्थ शीला नहीं जानती। किन्तु उसे देखने के बाद से ही फूल भैया के श्वेत-मयूर की कहानी उसे याद आ रही है। फूल भैया के बचपन में उनकी एक मित्र ने शायद मयूरभंज के महाराज से सफेद रंग का एक मोर उपहार में पाया था। क्या पंख थे और क्या पूछ थी! आकाश में काले बादल देखते ही वह अपनी पूछ पसार देता। उसको पाकर भैया की उस सखी की प्रसन्नता का पार न था। सफेद मोर शीला ने अपनी आंखों से नहीं देखा है। किन्तु दो बार सपने में देखा है। आश्चर्य, उन सुख-स्वप्नों के बाद मैक्स दिवा-स्वप्न की भांति आ उपस्थित हुआ है। मोर क्या सुख का वाहक है?

कम-से-कम फूल भैया को देख कर तो ऐसा ही लगता है। सवेरे तीन-चार घंटा रियाज करते हैं फूल भैया। मगर आज उनका रियाज कहां गया? बैठक से फूल भैया मैक्स को घर के भीतर ले आये हैं। उसे फूलों के गमले दिखा रहे हैं। जिन गमलों में शीला रोज पानी देती है, सूखे पत्ते छांट कर अलग करती है। बड़े-बड़े गेंदा के फूल देख कर मैक्स कितना उच्छ्वसित हो रहा है। गेंदा के फूल उसके देश में होते नहीं। घूम-घूम कर कमरे और छत दिखा रहा है, फूल उसे। दादा के जमाने का पुस्तकालय दिखा रहा है। थोड़ा-सा सितार का संगीत भी बीच में सुना रहा है। मैक्स देखता है, सुनता है, हंसता है, और शीला काम से जब इस-उस कमरे में जाती है, सीढ़ी से तेज कदमों चढ़ती-उतरती है, मैक्स उसे

[illegible] ने मुस्कराकर विरोध किया, 'किसने कहा, अगर मन नहीं है? अरे बिना मन [illegible] कोई काम हो पाता है?'

'मन तो है। आजकल [illegible] और [illegible] के [illegible] को [illegible] ही नहीं [illegible]। [illegible]······'

बात पूरी नहीं हो पाई थी कि अनिन्द्य [illegible] हुआ आ पहुंचा।

'[illegible] मैं [illegible]। मैं फिर आऊं, मां। हॉस्टल में बहुतेरा काम करने को है।'

'[illegible] भैया? बिना [illegible] के [illegible] क्या तुम्हें आने दूंगी? शीला, [illegible] बैठो।'

अनिन्द्य [illegible] पर बैठ गया। समय के साथ आदमी के नाम बदलते हैं, भाषा बदलती है और व्यवहार का आकार भी बदल जाता है। पिछले दो वर्षों में ससुराल के लिये वह घर के लड़के के समान हो गया है। दामाद की औपचारिकता नहीं रही तो, सम्बोधन क्यों नहीं बदलता?

सरोजिनी अपनी लड़की—इला—की बात पूछने लगी। इला ससुराल में बड़ी प्रिय हो गयी है। कृष्णनगर निकट ही है। यह पहला नाती है। एकाध दिन में ही इला को सरोजिनी बुलाने वाली है।

शीला किसी और प्रसंग के लिये उत्सुक हो रही थी। इन सब पुरानी घरेलू चर्चाओं में उसकी कोई रुचि न थी। मौका पाते ही उसने पूछा, 'अच्छा अनिन्द्य भैया, आपने उन्हें कहां पाया?'

'किन्हें?'

शीला थोड़ा हंस कर बोली, 'अपने इन्हीं मित्र को।'

अनिन्द्य भी हंसा, 'ओह! मैक्स की बात पूछ रही हो। मित्र ही हैं। दो दिनों में ही वह हमारा परम मित्र बन गया है। जर्मन कान्सुलेट में हमारा एक मित्र है। वही उसको हमारे होस्टल पहुंचा गये थे। इस देश के विद्यार्थियों से मिलना चाहता था, बात-चीत करना चाहता था। टूरिस्ट होकर भारत-भ्रमण के लिये आया था। इसी प्रसंग में बंगाल देखने आया। मैंने उससे कहा कि अगर वह बंगाल को देखना चाहता है तो बड़े-बड़े होटलों में बैठकर नहीं देख पायेगा। कालेजों और होस्टलों में भी नहीं। चलो, मैं तुम्हें कलकत्ता के एक आदर्श परिवार में ले चलता हूं। वहां दो-चार दिन तुम रहो। एक ही परिवार से तुम पूरे बंगाल का परिचय पा जाओगे। ऐसा-वैसा परिवार नहीं है। जैसा······।'

सरोजिनी पूड़ी छानने के लिये रसोई-घर में चली गयी।

शीला अनिन्द्य को अकेला पाकर बोली, 'आहा, हमारे सामने तो ससुराल की कितनी तारीफ हो रही है ! पीठ पीछे तो निन्दा ही करते होंगे। छोटी दीदी को ताना देते होंगे। हम सब जानते हैं।'

अनिन्द्य को अधिक देर रोका नहीं जा सका। व्यस्त प्रोफेसर हैं। दो शिफ्टों में पढ़ाते हैं। फिर होस्टल के लड़के उन्हीं के जिम्मे हैं। ससुराल में अधिक देर रुकने का समय कहां। षोडशी साली का अनुरोध भी उन्हें अस्वीकार करना पड़ता है। काम का ऐसा ही दबाव है, उन पर।

जीजाओं में से शीला अनिन्द्य को ही सबसे ज्यादा मानती है। बहुत आमोद-प्रिय और शौकीन हैं अनिन्द्य। वही तो एक सफेद हरिण लेकर सेवा में हाजिर हुए। दूसरी बार जाने कहां से एक जोड़ा विचित्र रंग-बिरंगी चीनी मुर्गी ले कर आये। किन्तु इस बार जो लाये वह है अतुलनीय। गोरे रंग का यह नीली आंखों वाला प्राणी इन सबका सिरमौर है। अच्छा, मैक्स माने क्या हो सकता है ? कौन जाने, क्या होता है ? शीला ने कई बार लक्ष्य किया है, बहुत से नामों का कोई अर्थ ही समझ में नहीं आता। चाहे जगह का नाम हो, या मनुष्य का। नाम का जो माने तुम लगा लो, वही है। मैक्स शब्द का अर्थ शीला नहीं जानती। किन्तु उसे देखने के बाद से ही फूल भैया के श्वेत-मयूर की कहानी उसे याद आ रही है। फूल भैया के बचपन में उनकी एक मित्र ने शायद मयूरभंज के महाराज से सफेद रंग का एक मोर उपहार में पाया था। क्या पंख थे और क्या पूंछ थी। आकाश में काले बादल देखते ही वह अपनी पूंछ पसार देता। उसको पाकर भैया की उस सखी की प्रसन्नता का पार न था। सफेद मोर शीला ने अपनी आंखों से नहीं देखा है। किन्तु दो बार सपने में देखा है। आश्चर्य, उन सुख-स्वप्नों के बाद मैक्स दिवा-स्वप्न की भांति आ उपस्थित हुआ है। मोर क्या सुख का वाहक है ?

कम-से-कम फूल भैया को देख कर तो ऐसा ही लगता है। सवेरे तीन-चार घंटा रियाज करते हैं फूल भैया। मगर आज उनका रियाज कहां गया ? बैठक से फूल भैया मैक्स को घर के भीतर ले आये हैं। उसे फूलों के गमले दिखा रहे हैं। जिन गमलों में शीला रोज पानी देती है, सूखे पत्ते छांट कर अलग करती है। बड़े-बड़े गेंदा के फूल देख कर मैक्स कितना उच्छवसित हो रहा है। गेंदा के फूल उसके देश में होते नहीं। घूम-घूम कर कमरे और छत दिखा रहा है, फूल उसे। दादा के जमाने का पुस्तकालय दिखा रहा है। थोड़ा-सा सितार का संगीत भी बीच में सुना रहा है। मैक्स देखता है, सुनता है, हंसता है, और शीला काम से जब इस-उस कमरे में जाती है, सीढ़ी से तेज कदमों चढ़ती-उतरती है, मैक्स उसे

के लिए मां ने बनाया था। साथ ही रोटी और गोश्त भी पका लिया था। कहीं वह सब साहेब न खा सके। खा पाये चाहे नहीं, साहेब के उत्साह में कोई कमी न थी। चम्मच से उठा-उठाकर हर चीज थोड़ी-थोड़ी चख रहा था। अच्छा न लगने पर मुंह विकृत कर रहा था।

बाबूजी इन लोगों के साथ खाने नहीं बैठे थे। आफिस से रिटायर होने से क्या हुआ, उनका दस से पांच का अभ्यास अभी ठीक वैसा ही बना हुआ है। ठीक पहले की तरह समय पर नहा-खा लेते हैं। अलबत्ता अब बस पकड़ने के लिये नहीं दौड़ना पड़ता। कोई किताब या अखबार लेकर ईजी-चेयर में पड़ जाते हैं। दो-चार पन्ने उलटते-न-उलटते ही उनकी नाक बजने लगती है। शीला को याद है, रात में कभी उसकी नींद टूट जाती थी तो बाबूजी की नाक बजने की आवाज से वह बुरी तरह डर जाती थी। मां से सटकर वह उसका गला पकड़ लेती थी।

खाते-खाते नीलाद्रि ने पूछा, 'अच्छा मां, धोती-कुर्ता मैक्स को कैसा लग रहा है ?'

सरोजिनी ने हंसकर कहा, 'बहुत अच्छा।'

नीलाद्रि गम्भीर भाव से बोला, 'अनिन्द्य दत्त का छोटा साढ़ू नहीं लग रहा है ?'

सरोजिनी हंसकर बोली, 'अभागा कहीं का ! तेरी ही तो बहिन है। अनिन्द्य का साढ़ू होने पर तेरा क्या लगेगा ?'

नीलाद्रि बोला, 'उससे तो अच्छा है तुम्हारा ही रिश्ता। एकदम जर्मन-जामाता। क्या अनुप्रास है !' और हो-हो करके हंस पड़ा नीलाद्रि।

मैक्स नीलाद्रि की ओर ताककर बोला, 'ह्वाट्स दी फन ?'

'नथिंग, नथिंग। इन आवर नेशनल ड्रेस यू लुक लाइक ए टिपिकल जीजाजी।'

जीजाजी का अर्थ न समझते हुए भी मैक्स हंस पड़ा। किन्तु हंसी के बदले शीला को बड़ा क्रोध आया। छिः छिः, यह क्या असभ्यता है ? वह क्या अभी छोटी-सी मुन्नी है ? कुछ समझ नहीं है फूल भैया को। उसके साथ वह जीवन भर बात नहीं करेगी।

शाम को मुहल्ले के लड़के-लड़कियां जर्मन साहब को देखने आये। उनमें से कुछ शीला की दोस्त थीं। रीना, दीप्ति, वरुणा। स्कूल में साथ पढ़ती थीं। रीना और दीप्ति सेकेन्ड ईयर में पढ़ती हैं। एक ने आर्ट्स लिया है, एक ने साइंस। वरुणा दाम्पत्य जीवन का अध्ययन कर रही है। आर्ट्स और साइंस का मिक्स्ड कोर्स।

दीप्ति बोली, 'उनके साथ हमारी बात-चीत नहीं करायेंगे, फूल भैया ?'

नीलाद्रि बोला, मैं कुछ नहीं जानता दीप्ति। मैक्स इस समय पूरा-पूरा शीला की संपत्ति है।'

शीला ने बर्दाश्त नहीं हो सका। उसने तीव्र स्वर में प्रतिवाद किया, 'इसका क्या मतलब है, फूल भैया? तुम एक मिनट को तो उनका साथ नहीं छोड़ते और कहते हो हमारी सम्पत्ति है।'

नीलाद्रि बोला, 'वाह, मैं तो तेरा मामूली-सा प्राइवेट सेक्रेटरी हूं या कि तेरे पर्म-नन्ट सर्कस का मैनेजर। जानती हो वरुणा, प्रोप्राइटेस शीला राय के पास दो प्रकार के टिकट हैं। देखने का बारह पैसा और बात करने का पचीस।'

टिकट की बात सुनकर तीनों सखियां खिल-खिल कर उठीं।

रीना ने पूछा, 'फूल भैया, हम लोगों को कुछ कमिशन नहीं मिलेगा?'

शीला ने इस बार दृढ़ निश्चय किया कि वह जीवन में फिर फूल भैया का मुंह नहीं देखेगी।

दीप्ति आदि ने आड़ में ही मैक्स का दर्शन करके विदा ली। किन्तु नये मित्र को नीलाद्रि ने आसानी से नहीं छोड़ा। बोला, 'अनिन्द्य के होस्टल से तुम्हारा बिस्तर-कपड़ा अभी मंगाये लेता हूं। तुम मेरे यहां और दो-चार दिन ठहर जाओ। चाहोगे तो हम दोनों तुम्हारे गाइड का काम कर देंगे। फीस नहीं लेंगी।'

मैक्स ने आपत्ति तो की ही नहीं, वरन् खुशी से उनका आतिथ्य स्वीकार किया। फूल भैया के बगल वाले कमरे में शीला ने उसका बिस्तर लगा दिया। उसका सामान सहेज कर रख दिया। धूपदानी में धूप जला दिया। खाली पड़ी धूप-दानी सुगन्धित धूप की राख से भर उठी।

अपना बिस्तर दो-तल्ले पर उठा ले गयी शीला। मां-बाप के बगल वाले कमरे में रहेगी वह। बड़े और छोटे भैया सपरिवार एक दिल्ली और एक चण्डीगढ़ रहते हैं। घर पर कमरों का अभाव नहीं है। फिर भी नीचे के कमरे कभी खाली नहीं रहते। फूल भैया के गायक-वादक मित्रों में से कोई-न-कोई जमा ही रहता है। फूल भैया भी आसानी से किसी को छोड़ने वाले नहीं हैं।

मैक्स यद्यपि गाना-बजाना नहीं जानता, फिर भी दूर देश का रहने वाला है, और कितनी दूर दूसरे देश को जानने-समझने आया है। इसीलिए शायद फूल भैया उसका इतना सम्मान करते हैं। गाने-बजाने में ही मस्त रहने वाले फूल भैया केवल गाने-बजाने को प्यार करते हैं, यह बात नहीं है। वह आदमी को प्यार करते हैं। घर-द्वार सजाना उन्हें अच्छा लगता है। मुहल्ले की भावजों और मित्रों की पत्नियों की साड़ी का रंग पसन्द करना भी उन्हें अच्छा लगता है। साथ ही मैक्स को प्यार करते देखकर शीला बहुत खुश होती है।

'[illegible] ?' सितार का आलाप सुनकर मैक्स किसी दूसरे राग के विषय में प्रश्न करता है।
'[illegible]!' मैक्स यह शब्द विचित्र ढंग से दुहराता है और कंधे उठाकर हंस पड़ता है।

शीला ने एक दिन पूछा, 'अच्छा फूल भैया, उनको जो तुम इस प्रकार राग-रागिनी का नाम रटा रहे हो, ये क्या सचमुच तुम्हारा बजाना जरा-सा भी समझते हैं?'
'क्यों नहीं? जरूर थोड़ा-बहुत समझता है। तुमसे तो अच्छा ही समझता है। जानती तो हो, मैक्स कितने बड़े देश का लड़का है? कितने बड़े-बड़े कम्पोजर उसके देश में हो गये हैं? बिठोवेन का नाम सुना है?'
नाम तो परिचित-सा लगता है। शीला गर्दन घुमाती है। धीरे-धीरे पूछती है, 'क्या वे अभी भी बजाते हैं?'

'गेटे के समसामयिक थे वे। अब नहीं हैं। किन्तु उनकी अमर संगीत कृतियां 'सिम्फोनी' आज भी वर्तमान हैं। अच्छा, उनका रेकार्ड सुनाऊंगा। मोझार्ट, वैग्नर, मूलैन आदि ने गीतों से सारे यूरोप को भर दिया था।'

उन लोगों का संगीत जैसे फूल भैया अभी भी सुन पाते हैं। उनकी बातों का सुरीला आवेग, चेहरे पर फैली हुई स्निग्धता और मुग्धता देखकर तो ऐसा ही लगता है। फिर उन संगीतकारों के विषय में फूल भैया मैक्स के साथ बातें करने लगे। शीला धीरे से वहां से खिसक गयी। उसके पास इतनी बुद्धि तो है नहीं कि यह सब बात समझेगी। अंग्रेजी मैक्स कोई बहुत अच्छा जानता है, यह बात नहीं। इस प्रकार इक्का-दुक्का टूटा-फूटा शब्द शीला भी बोल सकती है, किन्तु इतनी लज्जा लगती है कि मुंह से बात ही नहीं निकलती। क्या पता, वे हंसने लगें तो! फूल भैया उनके साथ इतनी बातें करते हैं, उन्हें बंगला क्यों नहीं सिखाते? वे यदि बंगला जानते तो कितना अच्छा होता। शीला उनके साथ बातें कर पाती, गपशप कर पाती।

इसी बीच एक दिन अनिन्द्य खोज-खबर लेने आया। शीला को बुलाकर पूछा, 'क्यों शीलावती, तुमने मैक्स साहब को क्या एकदम बन्दी बना लिया? एक जोड़ी नीली आंखों को क्या काली आंखों से ओझल नहीं होने देगी? नीलाद्रि फोन पर कह रहा था।'

शीला नाराज होकर बोली, 'क्या बेकार-बेकार की बातें कर रहे हैं, अनिन्द्य भैया! फूल भैया अपने ही रात-दिन उन्हें लेकर मशगूल रहते हैं। रोज घूमने निकलते हैं। आज अजायबघर में, तो कल जिन्दा अजायबघर में, तो परसों आर्ट-एग्जिबिशन में। क्या कभी हमको साथ ले जाते हैं?'

'च-च-च-च, बड़े अफसोस की बात है! सचमुच, यह तो महान अन्याय है! तुमको तो साथ ले जाना ही चाहिए। और यह जर्मन टूरिस्ट कैसा आदमी है! क्या उसके मन में जरा भी रस नहीं है? मैं होता तो तुम्हें लिए बिना घर से निकलता ही नहीं। रक्तवर्णी सेमर की कली को छोड़कर, कृष्णकली के हाथों में हाथ देकर, विश्वविजय के निमित्त निकल पड़ता।'

शीला बोली, 'रहने दीजिए। बस जबानी जमा-खर्च आता है। आपको कभी निकलने का समय मिलता है, या यूं ही?'

अनिन्द्य हंसकर फूल के कमरे की ओर बढ़ गया। फिर तो उन लोगों के बीच अंग्रेजी में भीषण बहस शुरू हुई। दर्शन, विज्ञान, साहित्य और संगीत के क्षेत्र में जर्मनी ने विश्व को बहुत-कुछ दिया है। कान्ट और हेगेल का देश: जर्मनी,

गेटे और शिलर का देश : जर्मनी; एंजिल्स का देश : जर्मनी; आइन्स्टीन का देश : जर्मनी। मैक्स जैसे अपने देश का प्रतिनिधि है। उसको सामने रखकर जैसे दोनों आदमियों की प्रीति और प्रशस्ति की सीमा ही नहीं। सारी बातें शीला नहीं समझ पा रही है। कोई-कोई नाम जैसे उसने पहले सुना है। किन्तु केवल नाम। और कुछ वह नहीं जानती। शीला ने दरवाजे के पास खड़ी होकर लक्ष्य किया, वह कुछ भी नहीं समझ पा रही है, जैसे कि मैक्स को सारी बातें समझने में असुविधा हो रही है। मैक्स के पाकेट में एक डिक्शनरी है। उसमें अंग्रेजी का जर्मन माने और जर्मन का अंग्रेजी माने दिया हुआ है। मैक्स बार-बार पाकेट से वह डिक्शनरी बाहर निकालता है। पन्ने उलट-पलट कर अचीन्हें शब्दों का अर्थ ढूंढ़ रहा है। फिर प्रशंसा के तौर पर कहता है, 'ओ, आई सी।' किसी-किसी शब्द में मजा मिल जाता है उसे, और वह हो-हो करके हंस पड़ता है। किन्तु वह हंसी विलम्बित हंसी है, तब तक अनिन्द्य और नीलाद्रि किसी और प्रसंग को लेकर जूझ रहे हैं।

मुंह में आंचल ठूंस कर शीला वहां से खिसक आती है। किन्तु उसे आज जोर की हंसी नहीं आती। बेचारे मैक्स पर उसको सहानुभूति ही होती है। वह सात-समुद्र, तेरह-नदी पार करके आया है, पर भाषा की दीवार उससे फांदी नहीं जाती। वह भी शीला की भांति ही असहाय है। खिड़की के पास खड़ी शीला सोच रही है। किन्तु अंग्रेजी भाषा न जानते हुए भी वह और बहुत-कुछ जानता है। कितने देश-देशान्तर घूमता रहा है वह। कितना कुछ सीखा है उसने। किन्तु शीला ? उसने कुछ भी नहीं जाना, कुछ भी नहीं सीखा। तीसरे दर्जे में दो-दो बार फेल होकर उसने सोचा था, प्राइवेट पढ़ेगी। किन्तु वह भी तो नहीं हो सका। उधर उसकी सहपाठिनियां कहां-से-कहां निकल गयीं। स्कूल पार करके कालेज में पहुंच गयीं। किन्तु शीला न आगे बढ़ पाई, न कहीं पहुंच सकी। बस पीछे ही छूटने लगी। दो-चार दिन गाना सीखने की चेष्टा की। और छोड़ दिया। फिर बाजा सीखने की चेष्टा का भी वही हाल हुआ। फूल ने कहा, 'तेरा मन ही नहीं लगता।'

'ठीक है। नहीं लगता, तो नहीं सही।'

चारों ओर से निराश होकर वह मां के पास चली आयी। चाय बनाती, पान लगाती, बिस्तर बिछाती और रसोई में हाथ बंटाती। अच्छा ही है। सारा अफसोस घर के कामों में छू-मन्तर हो गया। अचानक एक दिन उसने देखा, सारे काम दो-गुनी, तीन-गुनी तेजी से उसे घेर रहे हैं। शीला सोचने लगी—छिः छिः, यह क्या किया उसने ! अपने हाथों ही उसने अपने सारे पथ बन्द कर

दिये। न कुछ जाना, न कुछ सीखा, और न कोई योग्यता ही अर्जन की उसने।
उसे रोना आने लगा।
सरोजिनी तभी पीछे आ खड़ी हुई, 'अरे, यहां खड़ी-खड़ी क्या कर रही है ? बाल नहीं बांधेगी ?'
शीला ने बिना पीछे देखे कहा, 'बांधूगी। तुम अभी जाओ, मां।'
'वे लोग तुम्हें बुला रहे हैं। शायद, तुझे साथ लेकर प्रिन्सेप्स घाट जायेंगे। जा न। जहाज-वहाज देख आयेगी। जल्दी से तैयार हो ले।'
शीला ने सिर हिलाकर कहा, 'नही मा, मैं नही जाऊंगी।'
अनिन्द्य ने भी आकर थोडी देर सिफारिश की।
'फ्राउलिन राय, हेर वावर तुम्हे बुला रहे है। उन्हें निराश मत करो, चलो। फ्राउलिन माने जानते हो ? कुमारी। और फ्राउ उसके बाद की अवस्था को कहते है। हमारे लिए इतना ही जानना यथेष्ट है। अब चलो, चला जाय।'
किन्तु शीला किसी प्रकार राजी नही हुई।

उसी रात शीला ने स्वप्न देखा। सचमुच वह घूमने निकली है। प्रिन्सेप्स घाट से एक विशाल जर्मन जहाज समुद्र की ओर जा रहा है। उस जहाज में और कोई नही है। अकेली शीला है और उसके साथ एक विशाल मयूर। धप् सफेद उसका रंग है। ओह, कितना सुन्दर है, कितना मोहक ! किन्तु इतना बडा, आदमी की तरह का, मोर क्या नही होता है ? शीला और निकट जाकर देखती है। ओ मां, यह तो मोर नही है…यह तो… यह…तो ! नही…नहो, मैं घर जाऊंगी। छि छि, लोग क्या सोचेंगे ? किन्तु जहाज लौटा नही। चलते-चलते बीच समुद्र में पहुच गया। वहां से भी दूर……और दूर……ओह ! कितना नीला है समुद्र का पानी ! इस नीलेपन का आभास दो आंखें लेकर पहले ही आई थी। इसके बाद वह नीला समुद्र अचानक फेनिल हो उठा। आकाश में बादल घिर आये। 'उत्तर देखूं, पश्चिम देखूं, फेन ही फेन, और कुछ नही।' उनका जहाज समुद्र की उत्ताल तरंगो पर हिलने-डोलने लगा। शीला डर से कांप उठी। क्या अंत में डूब कर ही मरना होगा ? किन्तु वे दोनो नीली आंखें उसकी ओर देख कर हंस रही हैं। उन आंखो में भय का लेश भी नहीं है। कैसे होगा ? उसको तो प्रलय-वृष्टि में समुद्र की छाती को जहाज से चीरने का अभ्यास है। वह नजदीक आ गया। उसने शीला का हाथ पकड़ लिया। फिर साफ सुन्दर बंगला में बोला,

'इतना भय किस बात का है ? मैं तो हूं ही।'

छिः छिः, कितने शर्म की बात है ! यद्यपि देखने वाला कोई नहीं है, फिर भी वे दोनों तो एक दूसरे को देख रहे हैं।

मां के पुकारने से शीला की नींद टूट गयी।

'बापरे, शाम से ही क्या नींद पड़ी है तुझे !' सरोजिनी बोली।

'एक लम्बी सिनेमा की कहानी सपने में देख रही थी मां,' शीला बोली।

सिनेमा की कहानी ही तो है। फूल भैया के साथ कई महीने पहले जो अंग्रेजी चित्र देखने गयी थी शीला, उसमें भी ऐसा ही जहाज था, ऐसा ही समुद्र था और ऐसी ही वृष्टि थी। उसी वृष्टि के धार में नायिका-नायक...छिः...छिः...!

सवेरे मैक्स के मुख की ओर शीला नहीं देख सकी। और दिनों की तरह ही उसने उसे चाय दी, खाना दिया, किन्तु आंख-से-आंख नहीं मिला सकी। मैक्स पहले की तरह ही उसकी ओर देख रहा है। हंस रहा है और इधर-उधर की दो-एक बातें कर रहा है। कितना आराम है ! एक आदमी का स्वप्न दूसरा नहीं देख पाता, उसके बारे में सोच भी नहीं पाता। मगर शीला देर तक मैक्स को अनदेखा न कर सकी। फूल भैया ने सब मिट्टी कर दिया। शीला को बुलाकर कहा, 'आज मैक्स के साथ तुझे खेलना होगा।'

'नहीं फूल भैया, मुझसे नहीं होगा। और, तुम क्या करोगे ?'

'मेरा परसों रेडियो प्रोग्राम है। दो दिन मुझे जमकर रियाज करना है। क्यों, मैक्स के साथ बात करने में तुझे इतनी शरम क्यों आती है ? टूटी-फूटी अंग्रेजी तो बोल ही सकती हो। मैक्स के लिए भी अंग्रेजी भाषा अजनबी है, हमारे लिए भी। ग्रामर-व्रामर की चिन्ता करने की जरूरत नहीं।'

'नहीं, मुझसे नहीं होगा। तुम लोग गलती-सही बोल तो लेते हो। मेरे मुंह से तो कुछ निकलता ही नहीं।'

'ठीक है। फिर बंगला ही बोलना। तेरी बातें सुनना उसे बहुत अच्छा लगता है।'

'हट् !' शीला ने 'सिन्दूरी' होकर कहा।

सच कहता हूं। तू जब बात करती हो तो वह कान लगाकर सुनता है। अर्थ से क्या ? ध्वनि ही उसे रुचती है। एक दिन कह रहा था—तेरे गले का स्वर हमारे इन्स्ट्रूमेन्ट की तरह मीठा है। इसी को कहते हैं भाग्य। मैं बारह वर्ष तक उस्ताद के यहां धरना दिए रहा, दोनों समय रियाज करता रहा तो भी जो नहीं कर सका वह तुमने अशिक्षित वाक्पटुता से ही...'

शीला ने उसे टोककर कहा, 'क्या कहते हो ! केवल हमारी बात क्यों ? तुम्हारी, मां की, सभी की बात वे अवाक् होकर सुनते हैं। बंगला भाषा ही उनके कानों को मीठी लगती है।'
नीलाद्रि ने जैसे गाने के स्वर में कहा—'हमारी बंगला भाषा
हमारा गर्व, हमारी आशा।'
शीला हंसकर चली गयी। तुरन्त फिर लौटी। नीलाद्रि सितार कस रहा था। शीला की ओर बिना ताके बोला, 'क्या है रे ?'
शीला ने अपनी बासन्ती साड़ी का आंचल रंग से न सही, रूप से, चंपे की कली सदृश उंगलियों में लपेटते हुए कहा, 'फूल भैया, एक बात कहूंगी, मानोगे न ?'
'बोल न। घूमने जायेगी ? या सिनेमा जाना चाहती है ?'
'नहीं। वह सब कुछ नहीं। अ...हमें फिर सिखाओगे ?'
'क्या सीखेगी ?'
'सितार।'
नीलाद्रि ने चौंककर उसके मुंह की ओर देखा, 'अचानक यह सुबुद्धि ! अच्छा-अच्छा, सिखाऊंगा।'
शीला इस बार नीलाद्रि के सामने से उसकी पीठ की ओर आ गई। भाई की पीठ से अपना गला सटाकर बोली, 'और एक बात है। मैं फिर से पढ़ूंगी। हमें दो-एक किताबें खरीद दोगे ? तीन-चार हद-से-हद।'
नीलाद्रि ने उंगली में मिजराब पहनते हुए कहा, 'अच्छा, अच्छा। तू अगर फिर से पढ़ना चाहे, तो तीन-चार पुस्तकें ही क्या, पूरा कालेज स्ट्रीट में उठाकर ला दूंगा।'
शीला चली आई तो नीलाद्रि ने दरवाजे में कुंडी अटकाकर रियाज शुरू कर दिया।

दोपहर के खाने के बाद मैक्स ने खुद शीला को बुलाया।
'कम। नो हार्म। नो फीयर। प्ले एण्ड बी हैप्पी।' कैरम बोर्ड की ओर उंगली दिखाकर मुख पर प्रश्न-चिन्ह टांगे मैक्स उसके सामने खड़ा हो गया। सरोजिनी पहले थोड़ी देर बैठे-बैठे देखती रहीं। मैक्स ने उसे भी खेलने का इशारा किया। सरोजिनी ने हंस कर कहा, 'नहीं भैया, यह सब खेल मैं जानती ही नहीं। ताश-बाश होता तो थोड़ा-बहुत खेलती। तुम लोग खेलो, मैं थोड़ा आराम कर लूं।'
सरोजिनी चली गयीं।
मैक्स मुंह बाये बंगला सुनता रहा। फिर हंसा। फिर अंतिम शब्दों को अपने ढंग से दोहराया। फिर हंस कर शीला से बोला, 'वैल शीला, विल यू बी माइ इन्स्ट्रक्टर ?'

इन्टरप्रेटर शब्द का कोई और अर्थ लगाकर शीला ने कहा, 'नो, नो, नो !' मैक्स उसकी भंगिमा देखकर हस पड़ा, 'यू हैव लर्न्ट ओन्ली नो, नो, नो। एण्ड आइ हैव लर्न्ट यस, यस, यस। वेरी गुड। लेट अस बिगिन'।'

खेल चलने गला। बोर्ड पर गोटियों की ठकाठक्-ठक्-ठक् होने लगी। बगल के कमरे में सितार पर 'देश' राग का रियाज चल रहा है। और इस कमरे में शीला विदेशी के साथ कैरम खेल रही है—ठकाठक्-ठक्-ठक्। यह भी एक प्रकार का बाजा है। सितार से कम मधुर नहीं है।

खेल में मैक्स की ही जीत अधिक होती है। गोटियां एक के बाद एक पाकेट में पड़ रही हैं। शीला खेलेगी क्या, बीच-बीच में बस मुंह फाड़कर मैक्स की ओर ताकती है। इससे बड़ा विस्मय और रहस्य क्या हो सकता है! कहां किस देश का आदमी? शीला उस देश की भाषा, भूगोल, इतिहास कुछ भी तो नहीं जानती। उसी अजनबी देश के एक अपरूप मनुष्य के साथ वह अपने कमरे में कैरम खेल रही है। दो दिन बाद क्या इस बात पर कोई विश्वास करेगा? इस मनुष्य को भी वह क्या जानती है, कितना जानती है? फूल भैया ने बताया था कि वह पश्चिम जर्मनी के किसी शहर में रहता है। उस शहर का नाम फूल भैया ही नहीं उच्चारण कर पाते, शीला की तो बात ही नहीं। वहां मां है, बाप है, भाई है। नहीं, स्त्री नहीं है। वे लोग इतनी कम उम्र में विवाह नहीं करते हैं। पिता का कोई छोटा-मोटा व्यवसाय है। वह शायद किसी टेक्निकल स्कूल में पढ़ता था। किन्तु पढ़ने-लिखने में उसका जी नहीं लगता। इस विषय में शीला से उसकी तुलना हो सकती है। पूरी पृथ्वी को वह अपनी आंखों से देखना चाहता है। शीला के पास यदि सामर्थ्य होती तो वह भी यही चाहती। वह भी इसी प्रकार घूमती-फिरती। मैक्स के सम्बन्ध में इससे अधिक वह नहीं जानती। किन्तु इतना जानना ही जैसे काफी है। अगर उसके बारे में इतना भी न जानती, तो भी जाने कैसे वह अपना ही लगता। बन्धुत्व में कोई बाधा नहीं होती। 'बन्धु' शब्द का मन-ही-मन उच्चारण करने में भी जाने कैसी एक लज्जा लगती है। वह क्या मैक्स की बन्धु होने लायक है? वह, जो तीसरे दर्जे से ऊपर नहीं उठ सकी है। कोई भी योग्यता तो वह प्राप्त नहीं कर पायी है। किन्तु मैक्स का उसे देखने का तरीका, शीला के साथ घनिष्ट हो पाने की उसकी इच्छा देखकर तो यह नहीं लगता कि योग्यता के लिए उसके मन में कोई आकर्षण है। शीला को देखकर और उसकी बोली सुनकर ही प्रसन्न है वह। केवल देखने के योग्य होना और सुनने के योग्य होना। जो यह कहता-सा लगता है कि 'तुम्हें इससे अधिक और कुछ होने की आवश्यकता नहीं' उससे बढ़कर अपना कौन है?

मगर नहीं। किसी के न चाहने से ही क्या होता है? उसको क्या और कुछ जानने, सुनने और सीखने की इच्छा नहीं है? जैसे अच्छी साड़ी, अच्छे गहने पहनकर, चोटी बांधकर, सजने की इच्छा होती है, वैसे ही और योग्य होने की भी इच्छा होती है। योग्यता का अर्थ है पढ़ना-लिखना, और गुण का अर्थ है गाना-बजाना जानना। सभी तो यही कहते हैं। यदि ऐसा कोई पति पाया जा सके कि वह दुनिया की सारी पुस्तकें एक रात में ही याद करा सके, एक रात में ही सारी राग-रागनियां उसके कंठ में रख सके, और फूल भैया की तरह उसकी भी उंगलियों के एक-एक स्पर्श पर सितार के तार झंकृत हो जायं, यदि ऐसा हो सकता...ऐसा...

शीला को खेल में हराकर मैक्स 'हो-हो' करके हंस पड़ा।

'यू नो नथिंग, यू नो नथिंग।'

अचानक मैक्स को जैसे कुछ याद आ गया। जाने क्या कहते-कहते एक शब्द के लिए किसी भाव-समुद्र में ऊभ-चूभ होने लगा वह। और लाइफ बेल्ट के समान निकल पड़ी वही डिक्शनरी। उसमें न जाने क्या पाकर जैसे उछल पड़ा मैक्स : 'यस, जोक, जस्ट दी वर्ड। जोक, ओन्ली जोकिंग, डोन्ट बी सारी। आर······ आर यू?'

दु खित क्या होगी शीला? मैक्स की शब्द को ढूंढने की गड़बड़ी और भावभंगी देखकर उसके हास्य-समुद्र में उथल-पुथल मच गयी। हंसते-हंसते लोट-पोट हो गयी वह। खिल-खिल-खिल, कुल-कुल-कुल। जैसे किसी जलप्रपात की धारा प्रवाहित हो रही हो।

मैक्स भी मुस्कराने लगा, 'आइ सी, नथिंग फार सारी। दी वर्ल्ड इज फुल आफ हैपिनेस।'

वहां से आकर शीला मन-ही-मन गुनगुनाने लगी, जर्मनी, जर्मनी, जर्मनी। मैक्स भारत के विषय में बहुत-कुछ जानता है। किन्तु शीला कुछ भी नहीं जानती। जानती तो उन विषयों पर मैक्स से बहस कर सकती थी। मगर ऐसे तो उसको भी डर नहीं। उसी प्रकार 'यस, नो, वेरी गुड' करके वह काम चला सकती है।

किसी देश को आंख से देखकर भी जाना जाता है और पुस्तक पढ़कर भी। इस समय मैक्स के देश को देखा तो नहीं जा सकता, इसलिये शीला ने पुस्तक की शरण गही।

कोने के कमरे में दादा के जमाने की बहुत-सी पुस्तकों का ढेर लगा हुआ है।

शीला चुपके-चुपके उन्हें छानने लगी। बहुत-सी पुस्तकों का कुछ-न-कुछ हिस्सा चूहों के उदरस्थ हो चुका है। और बहुत-सी धूल से अंट गयी हैं। कानून की पुस्तकें, रोम का इतिहास, योगवाशिष्ठ रामायण, दामोदर ग्रन्थावली—सब पुस्तकें जाति-वर्ण का भेद खोकर एक साथ पड़ी हुई हैं। किन्तु शीला जो चाहती है वह कहां है ?

मां ने डांटा, 'इस समय तू यह सब क्यों छान रही है ? क्या चाहिए ?'

'कुछ नहीं, मां।' शीला ने मुंह फिराकर कहा।

'तो छोड़ दे, चल। कुछ काट लेगा। अभी उस दिन एक बिच्छू देखा था।'

निराश लौटकर शीला ने वही पुरानी पाठ्य-पुस्तक 'आदर्श सुपरिचय' ढूंढ-ढांढ कर निकाली। पुस्तक धूल से सनी, मकड़ी के अनेक जालों में फंसी, सालों से निरादृत पड़ी हुई थी। शीला के हाथों का कोमल स्पर्श पाकर वह नीरस पुस्तक नवीन गौरव, नवीन मूल्य तथा नवीन रस से सिंचित हो उठी। ड्रेसिंग टेबुल के सामने बैठकर, उलट-पुलट कर, यूरोप का मानचित्र खोज निकाला शीला ने। सतृष्ण आंखों से एक विशेष देश की ओर देखा। उसके उत्तर वाले समुद्र में ही क्या उसके सपनों वाला जहाज तैर रहा था ?

सरोजिनी ने फिर आकर पुकारा, 'मुंह-हाथ नहीं धोना है ? क्या पढ़ रही है बैठी-बैठी ?'

'कुछ नहीं, मां।'

शीला ने भूगोल को अपने आंचल में छिपा लिया, जैसे कोई अश्लील पुस्तक हो। सारे जर्मनी देश को अगर वह अपनी छाती में ऐसे छुपा ले सकती तो······ ओह······!

दो दिन बाद अनिन्द्य ने आकर पूछा, 'तुम लोगों का वह जर्मन अतिथि है, कि भाग गया ?'

नीलाद्रि बोला, 'भागेगा कैसे ? भागने पर तुम्हें, जामिनदार को, हम नहीं पकड़ लेते ?' अनिन्द्य हंसने लगा। फिर बोला, 'तुमने कलकत्ता शहर का कोना-कोना उसे दिखा दिया, किन्तु शहर ही तो सारा देश नहीं है। कोई एक गांव भी उसे दिखा लाओ। आज भी हमारा देश ग्रामों में ही बसता है।'

चाय-टोस्ट देकर शीला उनकी बातचीत सुन रही थी। अनिन्द्य ने चाय की चुस्की लेते हुए कहा, 'तुमने तो 'शेडूल्ड-टूर' का भार लिया नहीं है, कि चुन-चुनकर अच्छी चीजें ही दिखाओगे। उसे सब कुछ देखने दो। तभी इस देश के विषय में मोटा-मोटी एक सही इम्प्रेशन लेकर जायेगा वह।'

गांव देखने का प्रस्ताव सुनकर मैक्स उछल पड़ा। वह जरूर जायेगा। इन्डिया आकर उसने गांव नहीं देखा तो क्या देखा? यहां की सभ्यता तो ग्राम-सभ्यता है। तीन पुश्तों से नीलाद्रि के घरवालों का गांव से कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु बाबूजी की एक चचाजाद बहिन है, बर्धमान के मदनपुर नामक गांव में। उन बुआजी के साथ अभी भी सम्बन्ध कायम है।

ठीक है, वहीं चला जाय।

नीलाद्रि ने अनिन्द्य को पकड़ा, 'तुमने जब यह प्रस्ताव उठाया है, तो तुम भी चलो।'

किन्तु अनिन्द्य के पास समय नहीं है। बहुत-से काम हैं। वह नहीं जा पायेगा। जिसके पास काम नहीं है, और जो जा पायेगी, उससे कोई पूछता ही नहीं। अंत में शीला ने स्वयं आकर नीलाद्रि के कंधे से मुंह सटाकर, जैसे कोई कृष्णासार हरिणी देवदार को दुलार रही हो, कहा, 'मुझे भी ले चलो न, भैया।'

'तू चलेगी? मगर बड़ी तकलीफ होगी। सह पायेगी?'

'तुम लोग सह पाओगे, तो मैं भी सह पाऊंगी।'

उपेन बाबू दो-तल्ला से उतरकर बोले, 'नहीं, नहीं। कहां जायेगी? बेकार का सब झमेला है।'

उपेन बाबू घर छोड़कर स्वयं भी नहीं निकलते, और बाल-बच्चों में से कोई निकलना चाहे, तो रास्ता भी रोकेंगे। इस मुहल्ले को छोड़कर पृथ्वी पर जितने भी स्थान हैं, सब उनके लिये अगम्य और निवास के अयोग्य हैं—सांप, बाघ, विपत्ति और आफत से भरपूर।

किन्तु सरोजिनी शीला के बचाव के लिये आ गईं। पति से बोलीं, 'ऐसा क्यों करते हो? एक दिन के लिये जाना चाहती है, जाने दो। वहां पर बाल-बच्चों *सहित विनय बाबू हैं, बुआजी हैं, डर क्या है?'*

अनुमति पाकर शीला खिल उठी। जैसे बर्धमान के एक गांव नहीं, बल्कि विश्व-पर्यटक के साथ वह पृथ्वी की परिक्रमा करने निकली है।

छोटा-सा स्टेशन। भीड़-भाड़ कुछ नहीं। प्लेटफार्म के बाहर आकर नीलाद्रि ने देखा, मदनपुर के लिये बस और रिक्शा दोनों हैं। स्टेशन से बुआजी का मकान कोई तीन मील होगा। उन्हें लेने के लिये उनकी बुआ के लड़के बीरेश्वर भी आये हैं।

किन्तु सामने के मोटे बरगद की घनी छाया में एक बैलगाड़ी खड़ी थी। थोड़ी देर पहले सन की गांठें गिराकर गाड़ीवान बीड़ी पी रहा है।

मैक्स ने ऊपर उंगली दिखाकर पूछा, 'व्हाट इज दैट ?'

नीलाद्रि ने समझाया, 'यह हमारे देश की प्राचीनतम गाड़ी है।'

मैक्स जाकर बैलगाड़ी में बैठ गया। जाना है, तो वह बैलगाड़ी में ही जायेगा। बस का उसका अपना व्यवसाय है। बस के लिए उसके मन में कोई कौतूहल नहीं। किन्तु बैलगाड़ी उसने जीवन में प्रथम बार देखी है। उस पर चढ़े बिना वह नहीं मानेगा। देर होने की आशंका और कष्ट का भय दिखाकर भी नीलाद्रि उसे उतार नहीं सका। मैक्स कहने लगा, 'और कोई अगर न भी जाय तो वह अकेला ही जायेगा।'

गाड़ीवान ने नम्रता से कहा, 'कोई तकलीफ नहीं होगी, बाबू। ऊपर छप्पर है नीचे मैं मुलायम बिछौना बिछा देता हूं। आप लोगों को कोई कष्ट नहीं होगा। मैक्स को तो अकेला छोड़ा नहीं जा सकता। बाध्य होकर नीलाद्रि और शीला भी उसके बगल में जा बैठे।

कौतूहली किसानों ने चारों ओर से भीड़ कर ली। उन्होंने युद्ध के समय एकाध साहेब देखा था। परन्तु बैलगाड़ी पर साहेब को देखने का यह प्रथम अवसर है। साहेब की दोनों नीली आंखें भी उल्लास और उत्सुकता से भरकर उन्हें ही निरख रही थीं।

धूल भरी कच्ची सड़क पर बैलगाड़ी चरर-मरर करती हुई बढ़ चली। सड़क के दोनों तरफ क्षितिज तक फैले खेत और खेतों में पसरी हुई धूप। नीले आकाश के बीच कहीं-कहीं पर रक्तवर्ण गुलमोहर के फूल। नीलाद्रि ने एक बार घड़ी की ओर आंख फेरी। फिर हंसकर बोला, 'बापरे, क्या स्पीड है हमारी! हमारे देश की प्रगति का यही प्रतीक है जैसे!'

किन्तु शीला यह बात नहीं सोच रही थी। उसे सपने का जहाज याद आ रहा था। वही जहाज जैसे इस बैलगाड़ी के रूप में परिवर्तित हो गया है। वही उत्ताल समुद्र जैसे दूर-दूर तक विस्तृत शून्य मैदान में परिणत हो गया। आश्चर्य की बात है, फिर भी सपना तो पूरा हो रहा है। इस तरह सम्पूर्ण रूप से शायद कोई सपना आज-कल नहीं फलता।

बहुत दिन पहले पढ़ी गई पाठ्य-पुस्तक की एक कविता का थोड़ा अंश वह मृदु कंठ से गुनगुनाने लगी :

'नीलिमा की गोद में वह श्यामल प्रवालों से घिरा
चोटी पर नीड़ गढ़ा सागर के विहंगों ने।
नारियल की डालों में तेज हवा
बस पुकारती रहती है।'

मैक्स कान लगाकर सुन रहा है। हंसकर बोला, 'वेरी स्वीट। डोन्ट स्टाप, गो आन।'
नीलाद्रि ने हंसकर पूछा, 'दोपहर में धूप से तप्त मैदान में चलते-चलते तुम्हें समुद्र का शोर याद आ रहा है?'
शीला ने मुंह नीचा करके कहा, 'यों ही।'
नीलाद्रि ने मैक्स की ओर देखकर कहा, 'दिस इज काम आफ्टर टैगोर।' फिर उन पंक्तियों का अनुवाद करके सुनाया।
लौटते समय वे लोग बैलगाड़ी में नहीं आये। बस में ही स्टेशन आये। किन्तु जिस जगह केवल एक दिन ठहरने की बात थी, वहां तीन दिन ठहर कर लौट रहे थे वे। अपना घर और विश्व-भ्रमण जैसे मैक्स भूल ही गया था। तीन दिन उसने गांव के लड़कों के साथ मस्ती में बिताये थे। उनके साथ पोखर में तैरा था। अमरूद की डाल पर चढ़ गया था और उसके टूट जाने पर गिरते-गिरते किसी तरह बचा था। पुराना शिव मन्दिर देखा था और पचीस साल पुरानी मस्जिद देखने के लिए सायकिल से भागा था।
बीच में एक दिन होली भी पड़ी थी। बुआजी के लड़के-लड़कियां पहले तो डर से आगे नहीं बढ़ रहे थे। किन्तु बाद में थोड़ा इशारा पाकर सब ने उसे रंग लगाया था। अबीर के प्रलेप से धवल गिरि ने प्रवाल गिरि का रूप ले लिया था। अपनी बुआ के लड़के और लड़कियों के इस दल का नेतृत्व शीला के ही हाथों में था। घूंघट थोड़ा-सा उठाकर ग्रामवधुओं ने साहेब का फाग खेलना देखा था। लड़कों ने विदेशी अतिथि के स्वागत में सारी ग्राम-सम्पदा को एकत्रित कर लिया था। एक दिन उन्होंने संथाल गीत, दूसरे दिन कीर्तन और तीसरे दिन यात्रा की थी। नाटक का नाम था 'सुभद्रा-हरण'। आते समय मैक्स ने कहा, 'ऐसा गाव और ऐसे विचित्र लोग उसने कभी नहीं देखे हैं।' ग्रामवासियों ने कहा, 'साहेब का स्वभाव भी इतना मधुर हो सकता है, ऐसा वे नहीं जानते थे।' भाषा का मेल नहीं, चाल-चलन का कोई मेल नहीं, फिर भी मैक्स के मिक्स-अप होने में कोई बाधा न थी। उसकी तुलना में फूल को ही जैसे गाववाले दूर का आदमी समझ रहे थे। कलकत्ते के फूल बाबू के साथ वैसा नहीं मिल पा रहे थे वे।
लौटती बार सारे रास्ते ट्रेन-बस में वे लोग इधर-उधर की बातें करते आ रहे थे। बीच में फूल भैया थे। एक ओर शीला। दूसरी ओर मैक्स।
'मैक्स किसी चीज की भी बुराई नहीं कर रहा है। कहता है, इस देश का सब-कुछ अच्छा है।' फूल ने कहा।
शीला बोली, 'यह बात उनके मन की बात नहीं हो सकती। सभी देशों में

अच्छी-बुरी चीजें हैं। पूछो न फूल भैया, उन्हें इस देश की कौन-सी वस्तु खराब लगी हैं।'

नीलाद्रि ने हंसकर कहा, 'तू पूछ। अच्छा, मैं तेरे दुभाषिए का काम कर देता हूं। किन्तु रुपया लूंगा, मुफ्त नहीं।'

'ठीक है, दूंगी।'

नीलाद्रि ने मैक्स के साथ थोड़ी देर बात करके उसका बंगला अनुवाद शीला को सुनाया :

'मैंने पूछा—हे विदेशो, शीला देवी तुमसे पूछती हैं, इस देश की कौन-सी दोष-त्रुटि तुम्हारी दृष्टि में आई है। इस देश की लड़कियों का काला रंग, काली आंखें, काले बाल नये हो सकते हैं तुम्हारे लिए, किन्तु यहां का काला बाजार, काले कुसंस्कार, दारिद्रय, अशिक्षा, जीवन के हर स्तर पर अव्यवस्था, यह सब तो तुमने ठीक से देखा नहीं होगा। फिर भी शहरों के गंदे रास्ते और गंदी बस्तियां तो देखी ही होंगी। गांव के दीन-दरिद्रों का कीचड़ भरे पोखर के साथ बीतता हुआ जीवन भी तुमने देखा ही है। हम चाहते हैं, कि तुम खुले मन से चन्द्रमा की पीठ को समालोचना कर डालो।'

'उन्होंने क्या जवाब दिया ?' शीला ने पूछा।

नीलाद्रि ने हंसकर कहा, 'ज्यादा कहेगा क्या ? अंग्रेजी भाषा ने उसे अच्छा फंसा दिया है। मैक्स हिटलर के समान ही एक देश के बाद दूसरे देश पर विजय प्राप्त कर सकता है, किन्तु विदेशिनी भाषा का पाणिग्रहण उसके लिए आसान नहीं। फिर भी उसने मोटे तौर पर जवाब दिया है। वह कहना चाहता है, कि दो दिन के लिए आकर उसने हमारे देश को क्रिटिक की आंखों से नहीं देखा है। वह रिफामंर भी नहीं है, और पालिटीशियन भी नहीं। उसने हमारे देश को पक्षी की आंखों से देखा है। और कुछ आर्टिस्ट की दृष्टि से। जानती है शीला, मुझे कभी-कभी लगता है, अपना मैक्स भी एक आर्टिस्ट है। सारी पृथ्वी उसका सितार है और उसकी दो मुग्ध आंखें, बजाने वाली उंगलियां।'

मैक्स और भी बातें करता जा रहा है। विभिन्न देशों के भ्रमण की, जानकारी की कहानियां। पूर्व-जर्मनो छोड़कर आस-पास के सभी देशों में उसने सायकिल से भ्रमण किया था। बंगाल के साथ उसके अभागे देश की तुलना की जा सकती है। दोनों देश पूर्व-पश्चिम नाम से दो भागों में बांट दिये गये हैं। मैक्स धनी लड़का नहीं है। आर्थिक स्थिति मध्यम श्रेणी की है। इसीलिए वह प्लेन में चढ़कर भारत नहीं आ सका। स्टीमर और ट्रेन से सभी देशों की जल-माटी छूता हुआ आया है। रास्ते में खतरे भी आये। किन्तु उन चीजों से डरने से

क्या घर के बाहर पैर रखा जा सकता है ? एक बार फार-ईस्ट में एक होटल वाले की लड़की ने उसे बड़ी आफत में फंसा दिया था।

मैक्स के मुह से किसी और देश की लड़की का नाम सुनकर शीला के मन में ईर्ष्या की नोक चुभ उठी।

'कैसी आफत में फंसाया था, फूल भैया ?'

नीलाद्रि ने मैक्स से घटना का विवरण सुनकर बताया, 'रुपये चुरा लिए थे।'

शीला आश्वस्त होकर बोली, 'छि छि', औरतें भी चोर होती हैं !'

नीलाद्रि ने हंसकर कहा, 'मैक्स कहता है, होती है।'

फूल भैया बड़े असभ्य हैं। शीला ने खिड़की में से दीख पड़ते हरे-भरे पेड़ों की कतारों में अपनी दृष्टि उलझा दी।

घर में कदम रखते ही उपेन बाबू ने एक तगड़ी धमकी दी। यह क्या बचपना है ! एक दिन की बात कहकर तीन दिन तक बाहर काट देना ? उनके लिए क्या कोई चिन्ता करने वाला नहीं है ? कई दिनों मारे दुश्चिन्ता के उन लोगों को नींद तक नहीं आई।

नीलाद्रि ने फुसफुसाकर मां से पूछा, 'दिन में, कि रात में ?'

इतना ही नहीं, और भी खबर थी। सरोजिनी ने एक एयर-मेल चिट्ठी मैक्स के हाथ में रख दी। कान्सुलेट आफिस से आई थी। दो दिन से पड़ी हुई थी।

चिट्ठी पढ़कर मैक्स का मुह गंभीर हो गया। नीलाद्रि ने पूछा, 'क्या बात है, मैक्स ? क्या समाचार हैं ?'

खबर अच्छी नहीं है। व्यवसाय में तगड़ा घाटा लगा है। उसके पिता और रुपया नहीं भेज पायेंगे। उसे तुरन्त जर्मनी लौट जाना होगा। मैक्स केवल पिता के भेजे रुपयों के सहारे यात्रा पर नहीं आया है। फिर भी, पिता की विरक्ति उसकी भी है।

मैक्स कल ही यहां से चला जायगा। सवेरे नहीं, तो कल शाम को बाम्बे मेल उसे पकड़ना ही है।

शीला स्तब्ध हो गई। यह क्या ? इस तरह अचानक ? इतनी जल्दी ? उस समय वह भूल ही गई थी कि मैक्स आया भी था ऐसे ही आकस्मिक रूप से। इस असभावित घटनाचक्र के प्रति उसके हृदय में भयंकर क्षोभ उमड़ने लगा। अकारण मान के साथ वह सोचने लगी, 'अगर जानती कि ऐसा होगा तो घूमने कभी न जाती।'

मैक्स ने अपनी चीजें संभालते हुए सबसे कहा कि उसने सोचा था, तीन दिन

में कलकत्ता की यात्रा समाप्त करके वह विदा लेगा। किन्तु तीन दिन के स्थान पर तीन सप्ताह बीत गये, फिर भी वह नहीं जा सका। कैसे इतना समय कट गया, उसे पता भी नहीं चला। यदि समय होता तो और तीन महीने वह यहां रह जाता। किन्तु और तीन साल रहने पर भी उसकी साध न मिटती।

समय हो गया। मैक्स का स्वर और करुण सुन पड़ने लगा। टूटी-फूटी अंग्रेजी में वह सरोजिनी और नीलाद्रि से कहने लगा, 'अपने यात्री-जीवन में उसने यहां जो पाया है, वह और कहीं नहीं। यहां आकर वह अपना घर भूल गया था। बल्कि यहां तो उसे अपना घर ही मिल गया था। इतना आदर, इतना यत्न, इतनी सेवा, इतना स्नेह, उसने और कहीं नहीं पाया।'

मैक्स की बातें नीलाद्रि अनुवाद करके मां को सुनाने लगा।

सरोजिनी की दोनों आंखें डबडबा उठीं।

नीलाद्रि ने कहा, 'मां, तुम भी कुछ कहो न।'

सरोजिनी ने कहा, 'मैं क्या कहूं बेटा ? उससे कहो, मैं उसके लिए कुछ भी तो नहीं कर सकी। हमारी सामर्थ्य ही कितनी है ? वह अपनी मां के पास लौटकर जा रहा है, यही हमारे लिए प्रसन्नता की बात है। उससे कहो, मैं यहां की मां होकर आंखों में आंसू पोंछ रही हूं, और वहां की मां होकर उसकी प्रतीक्षा के दिन गिन रही हूं।'

इन बातों के उत्तर में मैक्स ने झुककर सरोजिनी के पांव छू लिए। श्रद्धा प्रगट करने का यह भारतीय ढंग उसने इस बीच सीख लिया था।

नीलाद्रि के साथ पता-विनिमय के समय उसे ख्याल आया, शीला वहां नहीं है। जाने कब उठकर अपने कमरे में चली गयी है। मैक्स उससे भी विदा लेने गया। खिड़की की ओर मुंह करके शीला जाने क्या देख रही है, यद्यपि बगल के मकान की एक विराट् दीवार के अतिरिक्त देखने लायक वहां और कुछ नहीं है। मैक्स उसके दरवाजे के सामने जा खड़ा हुआ। दुभाषिया नीलाद्रि आज उसके साथ नहीं गया। पल भर चुपचाप खड़ा रहने के बाद थोड़ा हंसकर मैक्स ने कहा, 'नाउ, मिस, नो-नो-नो।'

शीला ने चौंककर पीछे देखा। उसके चेहरे पर हंसी नहीं है। किन्तु मैक्स के चेहरे की हंसी देखकर उसके मन में आया, ओह, कितने निष्ठुर, ये लोग कितने निष्ठुर हैं ! जर्मन तो अभी उस दिन फासिस्ट थे। चिरकाल से युद्ध करना इनका पेशा रहा है। ये निष्ठुर होंगे ही।

मैक्स वैसे ही हंसते-हंसते कहने लगा, 'मिस, नो-नो-नो, व्हाट विल यू से टुडे ? प्लीज से समथिंग। आइ होप, टुडे यू विल से—यस। इफ नाट थ्राइस, वन्स ऐट

लौस्ट।'

शीला ने गुस्सा होकर मुह फेर लिया। आज भी हंसी! भले वह अंग्रेजी नहीं बोल पाती, पर मजाक समझने की शक्ति तो उनमें है ही। ओह, क्या निष्ठुरता है, कितनी निर्दयता!

मैक्स चुपचाप थोड़ी देर बाहर खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे भीतर घुसा।

'शीला!'

शीला ने मुह घुमाया। विदेशी के कंठ से अपने नाम का विचित्र उच्चारण उसने पहली बार सुना। किन्तु उसने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। केवल दो सजल काली आंखें दो नीली छलछलाई आंखों में झांकती रही।

थोड़ी देर बाद मैक्स बोला, 'शीला, आइ...आइ कान्ट एक्सप्रेस मी इन फारेन लैंग्वेज। इट हैज बिकम माइ फो। प्लीज एलाउ मी माई मदर-टंग।'

फिर मैक्स अपनी जर्मन भाषा में एक स्वर से बोलने लगा। वह गद्य है या कविता, शीला कुछ भी नही समझ सकी। यह उसकी अपनी बातें हैं या किसी महाकवि के काव्य की आवृत्ति कर रहा है? वह साधारण सौजन्य-प्रकाशन है, अथवा तीव्रतम अन्तर्भेदी अग्निशिखा एवं विद्युत्-प्रवाह के समान प्रणय-निवेदन? शीला कुछ भी समझ न सकी।

शीला ने सोचा, अगर कभी वह बहुत दिनों बाद अथक परिश्रम और प्रयत्न से जर्मन भाषा सीख पाये, तो क्या केवल एक बार सुनी ये बातें वह फिर खोजकर स्मृति के बाहर ला सकेगी? नहीं–नहीं, ऐसा नहीं कर सकेगी। दुर्बोध भाषा के अन्तराल में आज जिस प्रणय-भाषण ने जन्म पाया है, वह चिरकाल के लिए विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जायेगा।

थोड़ी देर बाद मैक्स कमरे में से निकल आया। हाथ मिलाने की चेष्टा नही की। उसने उसे शब्दों से छुआ था, ध्वनियो से छुआ था, काव्य से स्पर्श किया था, अपने अन्तर मे उसको परसा था। हाथ से छूने की उसे आवश्यकता नही।

दरवाजे के सामने टैक्सी ने हार्न दिया। शीला को बुलाने आई सरोजिनी चौंककर खड़ी हो गई। उसकी लड़की औंधे मुंह बिस्तर पर पड़ी है और उसी प्रथम दिन के समान उसका सारा शरीर आंधी में पड़े पत्ते के समान कांप रहा है, कांप रहा है। यह क्रंदन किस बात का है? उसे जांचने की जरूरत नही महसूस हुई।

मैक्स के बाद नीलाद्रि अपने कमरे में सितार लेकर

सरोजिनी उसके पास आ खड़ी हुई। थोड़ी देर बाद बोली, 'लड़की तो उठती ही नहीं। खाना भी नहीं खाया। जैसी-की-तैसी पड़ी हुई है।'

नीलाद्रि ने कुछ उत्तर नहीं दिया, केवल मुस्कराकर सितार के तारों पर एक हल्की उंगली फेरी।

सरोजिनी ने उद्विग्न होकर कहा, 'तुम हंस रहे हो! तुम्हीं हो आग लगानेवाले। तुम्हीं ने शुरू से मजाक कर-कर के यह झमेला पैदा किया। अब बताओ, उस लड़की का क्या करूं?'

नीलाद्रि ने अपनी शान्त आंखें मां के मुख पर रख दीं। मृदु, स्निग्ध और आश्वासन के स्वर में बोला, 'चिन्ता न करो, मां। दो दिन में ही ठीक हो जायेगा। जीवन में इससे भी बड़ी-बड़ी कितनी बातें हम भूल जाते हैं।' फिर निःश्वास लेकर मन-ही-मन बोला, 'जीवन की कितनी बड़ी-बड़ी व्यथायें, हमें भूले रहना पड़ता है।'

सरोजिनी बिना और कुछ कहे कमरे से निकल गईं। अपने पीछे कमरे के दरवाजे चुपचाप भिड़ाती गयीं।

थोड़ी देर बाद फिर ध्वनि की तरंगें उठीं। उस कमरे के एक हृदय-तंत्र के ताल-ताल पर, एक तार-यंत्र की ध्वनियों में, सारे मकान के आकाश में, हवा में, दीवारों पर, गौड़ मल्हार, सूरट-मल्हार की रागिनी को अनन्त, कूलहीन विषादसागर की लहरें सारी रात अपना सिर पटकती रहीं, पछाड़ खाती रहीं।

नवेन्दु घोष

तृष्णा

पानी कितनी मूल्यवान चीज है, यह मैंने मलाड में जाकर ही अनुभव किया। मलाड में बड़े भैया रहते हैं। एक साल पहले वे कलकत्ते से बदली होने पर बम्बई चले गये थे। उनकी बम्बई की गृहस्थी देखने की लालसा बहुत दिनों से मेरे मन में थी, किन्तु अवसर नहीं मिल रहा था। इसीलिए जब मुझे आफिस द्वारा छः महीनें के लिए डेपुटेशन में बम्बई जाने का प्रस्ताव मिला, तो मैं एक बार कहते ही तैयार हो गया।

बम्बई शहर का एक उपनगर है—मलाड। अतः शहर की सभी सुविधाएं यहां नहीं हैं। सबसे पहले तो पानी का अभाव ही सामने आता है। नल तो हैं ही नहीं, कुए से पानी खींचकर पीना पड़ता है। किन्तु मार्च महीने से सभी कुए भी सूखने शुरू हो जाते हैं। मई महीने में तो अधिकांश कुए सूख जाते हैं एवं चारों ओर पानी के लिए हाहाकार मच जाता है। कुए के चारों तरफ उन दिनों सर्व-वर्ग एवं सर्व-श्रेणी के लोगों की भीड़ जमती है। स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी जाते हैं, और कुंए के चारों तरफ टीन, बाल्टी, कलसी और देगची आदि की क्यू लग जाती है। उनका कोई समय-असमय नहीं होता। सुबह से रात तक अनवरत पानी खींचने का पर्व चालू रहता है।

मैं आया था मार्च महीने में। उस समय बम्बई में शरीर को झुलसा देने वाली

इस समय दोनों में से एक ही है वहां, सिर्फ गंगा।
मैंने प्रश्न किया, 'यमुना कहां गई?'
भाभी ने कहा, 'यमुना पहले ही कलशी भरकर ले गई है। अब से यही तो होगा। यमुना आयेगी तो गंगा चली जायेगी, और यमुना के जाते-न-जाते गंगा लौट आयेगी।'
मैंने कुछ झुंझलाकर कहा, 'उस वासुदेव में उसने क्या देखा?'
भाभी ने हंसकर कहा, 'वह मैं कैसे कह सकती हूं? और फिर क्या वे इतने बड़े लोग हैं, जो वासुदेव को छोड़कर तुममें कुछ देखने जैसी स्पर्धा कर सकें?'
'छिः भाभी, कैसी बात करती हो?'
'सच बात कहती हूं भई। और फिर हमारे ड्राइवर में भी क्या कम गुण हैं? अस्सी रुपये महीना, देखने-सुनने में अच्छा, और बंगला भी अच्छी जानता है।'
मैं हंस पड़ा, 'तुम्हें तो भाभी हर समय हंसी सूझती है।'
'लेकिन मैं तो कुछ और ही सोच रही हूं, भैयाजी ······कि इतने दिनों तक मैं कैसे नहीं समझ पाई?' भाभी ने हंसते हुए कहा।
मैंने हंसकर उत्तर दिया, 'यह क्या समझने की चीज है भाभी? विद्वानों ने कहा है कि जिस तरह बीज अंकुरित होता है निश्शब्द, अदृश्य, उसी तरह यह चीज भी, और जिस तरह अंकुर दर्शकों की नजर में अचानक एक दिन दिखाई पड़ता है, उसी तरह स्वयं नायक-नायिका भी अचानक ही एक दिन इसे समझ पाते हैं।'
यही बात है। पहले-पहल प्रेम को अनुभव नहीं किया जाता, निश्शब्द ही वह अनुभूति की नस-नस में तिल-तिल कर बहता हुआ अदृश्य अक्षरों में प्रणय-कथा को लिखता रहता है। उसके बाद अचानक एक दिन वह लिखावट पढ़ी जाती है, समझी जाती है। और अन्त में तो वह बाहर फूट पड़ता है। चाहे जितना ही संयम क्यों न रखा जाय, उसे छिपाया नहीं जा सकता। त्रस्त नजरों की किसी को ढूंढती हुई-सी चितवन, चाल, गर्दन मोड़कर फिर-फिरकर देखना, अकारण हंसना, बेसिर-पैर की बातें करना, जब-तब गुनगुनाना, बात करते समय आंचल के सिरे को बार-बार अंगुली पर लपेटना और खोलना, हाथ में कोई फूल या पत्ती हो तो उसके टुकड़े-टुकड़े करके फेंकना, एवं बीच-बीच में बुद्धू की तरह कोई काम करना। इन सभी घटनाओं से बार-बार एक ही ध्वनि निकलती है···मैं प्यार करता हूं।
बासुदेव में भी परिवर्तन हुआ। अब गाड़ी में बैठने के समय भैया को उसे पुकारना पड़ता है। वह पुकार सुनकर, दूसरे नौकर फिर उसे पुकारते हैं। तब

बासुदेव दौड़ा आता है, और सिर खुजलाते हुए अपराध को छिपाने के लिये कहता है, 'धोती पेहेन छिलाम हुजूर।'
भाभी मुह फेरकर हंसती हैं।
बासुदेव की वेशभूषा में भी विशेष परिवर्तन दिखाई देता है। आजकल बड़े परिश्रम से वह मांग निकालता है। रोज इस्तरी की हुई धोती पहनता है। भाभी से इस्तरी मांगकर ले जाता है और अपनी धोती-कमीज आदि सभी कपडो में रोज इस्तरी करता है। कभी-कभी शाम के बाद बासुदेव के शरीर से सस्ते सेन्ट की गन्ध का भी भान होता है।
भाभी ने हंसकर कहा, 'देख रहे हो अभागे का तमाशा ?'
लेकिन वह अभागा तो और भी अनेक तमाशे करने लगा। दोपहर को बासुदेव घर में नही रहता, भैया को लेकर शहर जाता है, तो कहीं शाम तक वापस लौटता है। बीच की यह कई घन्टे की अनुपस्थिति, वह सुबह-शाम पूरी कर लेना चाहता है। हर समय कुए के पास वह प्रहरी की तरह बैठा रहता है। जब भीड़ कुछ कम हो जाती है, तब गंगा आती है। कलसी रखकर कुए का सहारा लेकर खड़ी हो जाती है और सलज्ज भाव से मृदु स्वर में बासुदेव से बात करती है। बीच-बीच में शकित नजरो से इधर-उधर देखती भी जाती है।

क्या बात करते हैं, यह तो वे ही जानें। एक भी बात हम लोग नहीं सुन पाते, अनुमान भी नही कर पाते। हम सिर्फ यही समझ पाते थे, कि उनकी बातें बिल्कुल अनावश्यक, अप्रयोजनीय होती हैं, एवं कही भी उनका अन्त नहीं। तुच्छ एवं साधारण बात भी उनके लिये उपयोग्य और असाधारण हो जाती।
किन्तु बासुदेव की हरकतों ने धीरे-धीरे हम सभी को आजिज करना शुरू किया। उस दिन शाम को बाजार से लौटते समय बस्ती के पास से होकर गुजरा। देखा, गंगा के घर के सामने भैया की गाडी खड़ी है और बासुदेव दोनों बहनों से बात करने में उलझा हुआ है।
घर आकर मैंने भाभी को सारी बात बताई। बासुदेव के लौटते ही भाभी ने कैफियत मांगी।
बासुदेव ने सिर खुजलाते हुए कहा, 'ओपार दिये आश्चिलाम तो बिठ्ठलदासजी बुलालो।'
'बुलालो!' भाभी ने धमकाते हुए कहा, 'देखो बासुदेव, हम लोग अंधे नहीं हैं।'
बासुदेव सिर झुकाए खड़ा रहा।
'सीमा के बाहर जाना अच्छा नहीं, समझे? बिठ्ठलदास हो या उसकी लड़की, जिसके साथ भी तुम्हारा मन हो बातें करो, लेकिन हमारी गाड़ी लेकर उधर कभी

मत जाना ।'
उसके बाद बासुदेव गाड़ी लेकर उधर कभी नहीं गया। परन्तु भाभी की धमकी से उसका नशा जरा भी कम नहीं हुआ, बल्कि और बढ़ गया ।

दिन बीतते गये, पानी के लिये हाहाकार बढ़ता गया। बातचीत करते समय लोग हिसाब लगाते, कि पन्द्रह जून में कितनी देर है। अरब सागर से आनेवाली मौसमी हवा कब मेघ के पुंज आकाश में फैलाएगी ? सभी हिसाब लगाते जाते और कुएं के पास भीड़ बढ़ती जाती ।
आजकल गंगा और यमुना एक साथ नहीं आती हैं। पानी भरने के लिये गंगा आती और बासुदेव के पास खड़ी अकेली बात करती। उसके बाद आये लोग पानी लेकर कभी के चले जाते और फिर नये लोग आ जाते, किन्तु वह वहां से हिलने का नाम नहीं लेती। अन्त में बासुदेव ही उसे याद दिलाता ।
उस दिन भी उसी तरह बात-चीत चल रही थी। अचानक यमुना आ खड़ी हुई। आकर उसने गंगा को डांटना शुरू किया। बासुदेव ने न जाने क्या कहना चाहा, किन्तु यमुना ने तेज नजरों से उसकी तरफ देखा। गंगा जल्दी-जल्दी चली गई वहां से ।
थोड़ी देर बाद भाभी ने आकर कहा, 'इर्ष्या, जेलसी ।'
'समझा नहीं', मैंने प्रश्न किया, 'किसकी बात कह रही हो भाभी ?'
भाभी ने मुंह विकृत करते हुए कहा, 'इन्हीं छोकरियों की बात कह रही हूं। यह लड़की यमुना सब समझ गई है। हमेशा बाधा देती है वह। गंगा को तो डांटती ही है, बासुदेव के ऊपर भी बहुत गुस्सा है उसे ।'
'इसका मतलब···क्या यमुना भी···?'
'यह बात नहीं है। लेकिन किसी को एक बहन चाहती है, यह भी तो दूसरी के लिये असह्य हो सकता है ।'
हंसकर कहा मैंने, 'यह तो एक तरह से उपन्यास ही है, भाभी ।'
'रहने भी दो भैया, अभागे ने मेरी तो जान खा ली। मैं तो डरी-डरी-सी रहती हूं। तुम्हारे भैया को कहीं पता चल गया तो !'
दूसरे दिन उस पर मैंने नजर रखी। भाभी का कहना ही सच निकला। यमुना बहन को आगे-आगे लिये चली आ रही थी। बासुदेव के निकट आते ही उसकी आंखें क्रोध से लाल हो गईं। चेहरा मानो विषाक्त हो उठा। बगल में कलसी दबाए जाती हुई गंगा ने विचित्र दृष्टि से बासुदेव की तरफ देखा ।
यमुना ने उसे फटकारा, 'पीछे फिर-फिरकर क्या देख रही हो ? घर सामने है,

पीछे नहीं।'
मैं हमेशा बाहर के कमरे में ही सोता हू।। उसी कमरे में मेज के ऊपर वासुदेव सोया करता है। लेकिन उस रात मैंने देखा कि वासुदेव कमरे में नहीं है।
यह बात मैंने उसके बाद भी कई दिनों तक लक्ष्य की।
अन्त में जब कौतूहल चरम सीमा पर पहुच गया, तो रसोई बनानेवाले ब्राह्मण पाण्डेजी से पूछा। पाण्डेजी से वासुदेव की खूब पटती थी
पाण्डेजी ने कहा, 'यहां सोने की जगह नहीं है, इसलिए वासुदेव विट्ठलदास के घर जाकर सोता है।'
यह बात मैंने भाभी को बताई। वासुदेव से जवाब तलब किया गया।
वासुदेव ने कहा, 'दादाबाबू घरे सोन, आमार एखाने सुते लाज करे।
भाभी उबल पड़ी, 'लाज? अच्छा! वहां तो जैसे तुम्हें कमरे में सुलाते हैं वे लोग?'
'जी ना, बारान्दा में सुति।'
'तब फिर इस घर के बरामदे ने क्या अपराध किया है? पाण्डेजी रसोई-घर के बरामदे में सोते हैं, वहां भी तो सो सकते हो। खबरदार, अब और ज्यादा दुस्साहस मैं सहन नहीं करूंगी, वासुदेव। बाबू को कह दूंगी। आगे से वहां जाकर सोने के लिए मैं तुम्हें मना करती हू, समझे?'
'जी।'
उस दिन वासुदेव मेरे कमरे के बरामदे में सोया। भाभी का हुक्म टालने की हिम्मत हो भी कैसे सकती है उसकी?
किन्तु पाण्डेजी ने मौका देखकर पीछे मुझे बताया, 'आज मांजी मना न भी करती, तो भी वह घर में ही सोता, भैया।'
'क्यों?'
'वह यमुना है न, उसने शायद कल रात गंगा को वासुदेव के साथ बात करते देख लिया था। उसने वासुदेव को धमकाया था कि आगे से अगर सोने आयेगा, तो वह विट्ठलदास से शिकायत कर देगी।'
सारा मामला समझ में आ गया। भाभी की बात ठीक निकली। ईर्ष्या। मानव हृदय के कई निर्दिष्ट पथ हैं, कई प्रकार के कानून-कायदे है एवं क्रिया और प्रतिक्रिया के कई निर्दिष्ट लक्षण है, जिन्हें जाति, धर्म, वर्ण और श्रेणी की दुहाई देकर भी नहीं बदला जा सकता। मनुष्यमात्र सब एक हैं—यह उसी समय मैंने अनुभव किया। और एक समझकर ही सारी बातें समझ भी सका मैं।

उस दिन अचानक रात को नींद खुली। काफी गर्मी थी। उठकर लाईट जला, मैंने पंखा चला दिया। वहुत जोर से प्यास लगी थी। एक गिलास पानी ढालकर पीया और गिलास धोकर पानी को खिड़की से फेंकने जा ही रहा था, कि चौंक उठा। वरामदे में वासुदेव का विस्तर खाली पड़ा है। वासुदेव वहां नहीं है।

प्राय: रात के अन्तिम प्रहर वह लौट आया। न समझने लायक वात नहीं थी। किन्तु फिर भी रंगे-हाथों पकड़ने की इच्छा हुई।

दूसरे दिन जागता रहा।

हमारे घर की सभी आवाजें रात बारह तक शान्त हो चुकी थीं। कमरे के भीतर अंधेरे में चौकन्ना होकर वैठा रहा मैं।

कितनी देर लगी, पता नहीं। वीस, पच्चीस या चालीस मिनट भी हो सकते हैं। वातावरण में झींगुर की और कभी-कभी कुते के भौंकने की आवाज आ रही है। कुत्ते के भौंकने की आवाज के वाद चौकीदार की लाठी की खटखट सुनाई पड़ी। और अन्त में पैरों का शब्द सुनाई दिया। पैर दबाकर खिड़की के पास जाकर देखा, कि वासुदेव बरामदे से नीचे उतर रहा था।

दरवाजा खोलकर मैं भी वाहर निकला। जो प्रेम मनुष्य को पागल बनाकर, दिग्भ्रमित और ज्ञानशून्य कर देता है, उसे प्रत्यक्ष देखने की इच्छा हुई।

वगीचे को पारकर पीछे का दरवाजा खोला और फिर बस्ती का मार्ग पकड़ा वासुदेव ने। उसके वाद सहसा दाहिने मुड़कर अदृश्य हो गया।

मैं भी आगे बढ़ा।

बिट्ठलदास का घर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था। टिन एवं काठ की दीवारें, उस पर खपरैल का छप्पर। पीछे की तरफ केले के पेड़ों की कतार। वहीं पर वासुदेव को दूर से देखा। वह अकेला खड़ा है। अचानक एक कंकड़ उसने खिड़की के फाटक पर फेंका। खिड़की खुली और वहां एक अस्पष्ट-सा चेहरा दिखाई दिया।

एक मिनट बाद ही गंगा निकल आई। वासुदेव ने उसे खींचकर हृदय से लगा लिया।

अस्पष्ट स्वर में न जाने उन्होंने क्या वात शुरू की, समझ में नहीं आया। फिर भी वहां से हट नहीं सका। थोड़ी देर वाद दरवाजे के पीछे अचानक एक और नारी मूर्ति दृष्टिगोचर हुई। वासुदेव और गंगा अलग हो गये। यमुना!

यमुना के गले से मानो विष की वर्षा होनी शुरू हुई, 'छि:, छि:! तुम्हारा ऐसा पतन हो गया दीदी?' फिर वासुदेव की ओर देखकर वोली, 'चिल्लाकर मुहल्ले

भर के लोगो को इकट्ठा करके तुम्हारा खून भी करवा सकती हू, फिर भी आज ऐसा नहीं करूंगी। लेकिन आज के बाद फिर कभी देख लूंगी, तो मैं तुम्हारा...'

'वहां कौन है रे?' घर के भीतर से आवाज आई। बासुदेव चौंक उठा।

गंगा ने कहा, 'जाओ, भागो बासुदेव।'

बासुदेव के पहले मैं ही भाग आया। लगा कि विट्ठलदास नही, उसका लडका दामोदर जगा था।

कमरे में घुमने के बाद देखा कि बासुदेव भी अपने बिस्तर पर लौट आया है। मैं सो गया। लेकिन जैसे नीद आना ही नही चाहती हो। मन ने कहा कि बासुदेव की तकदीर में दुख लिखा है।

बाहर माचिस जलती है। फिर बीडी की गध तैरकर कमरे में आती है। लगता है, बासुदेव को भी नींद नही आ रही है।

भाभी को यह बात बताता तो शायद वह खुश ही होती, फिर भी नही बताया। मन को दबा लिया।

किन्तु मेरे चुप रहने से विट्ठलदास तो चुप नही रह सकता था। बाहर के कमरे में हम लोग चाय पीते हुए बातो में मग्न थे कि उसी समय दरवाजे पर विट्ठलदास और उसका लड़का दामोदर आ हाजिर हुए।

'हुजूर।'

भैया ने उनकी तरफ देखा। मैं शंकित हो उठा। विट्ठलदास ने सारी बातें कहीं। दामोदर मानो गुस्से से कांप रहा है, उसे देखकर लगा।

भैया की आंखें और चेहरा जैसे कठोर हो उठे। भाभी भी जाने कैसी हो गई।

सब कुछ सुनकर भैया ने कहा, 'मैं तुम्हें वचन देता हू विट्ठलदास, कि इसके बाद भी यदि बासुदेव और आगे बढा, तो मैं उसे नौकरी से निकाल दूगा। फिर तुम लोगों की जैसी इच्छा हो वैसा करना!'

विट्ठलदास और उसका लडका दोनो चले गये। भैया की पुकार सुन कर बासुदेव सिर नीचा किये दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया।

भैया ने क्रोधित नजरो से उसकी तरफ देखा। और उसके बाद उन्होने जो कुछ कहा उसका सारांश इस तरह है कि बासुदेव को भविष्य में वे फिर कभी क्षमा नहीं करेंगे। और फिर कोई अभियोग उनके कान मे पड़ा, तो वे उसे जूते मारकर घर से निकाल देंगे।

हुक्म देकर भैया भीतर चले गये! उनके आफिस जाने का समय हो गया था। भाभी ने गम्भीर मुख से बासुदेव की ओर देखकर कहा, 'मामला बहुत आगे बढ़ गया है

वासुदेव, अब भी सावधान रहो। और बलिहारी है भई उस लड़की को भी, एकदम से बदमाश है, वह तो।'

अचानक वासुदेव आकर भाभी के कदमों में बैठ गया, और रोने लगा 'ओई बात टो बोलेन ना मां, गगार मत भालो लेड़की खूब कम मिले।' उसने रोते हुए कहा।

भाभी गुस्सा करना चाहकर भी नहीं कर सकी, और मेरी ओर देखकर हंस पड़ीं। बाद में फिर गम्भीर होकर बोलीं, 'ठीक है, मैं मान लेती हूं कि वह अच्छी लड़की है, तो क्या करोगे ? क्या उससे शादी करोगे ?'

बासुदेव ने सहमति में सिर हिलाया और बोला, 'आपनि बोले ठिक करे देन ना, मां।'

'हूं, मुझे बहुत गरज पड़ी है न ! यह सब पागलपन छोड़ो बासुदेव। जाओ, तैयार होओ।'

फिर भी वासुदेव उठा नहीं, बोला, 'लेकिन हामि तो किछू अन्याय करि नाई मां, हामि उके पीयार करि।'

'वासुदेव, बस बहुत हो चुका, मुझे और गुस्सा मत दिलाओ, बाबा।'

बासुदेव की बात सुनकर भाभी हंसी नहीं रोक पा रही थीं, इसलिए वहां से खिसक गईं।

मैंने कहा, 'तुम कैसे मर्द हो बासुदेव, रो क्यों रहे हो ?'

बासुदेव आंसू पोंछता हुआ उठ खड़ा हुआ और भरे गले से बोला, 'कान्दते कि हामि चाई दादाबाबू, लेकिन फिर भी...।'

बात को अधूरी छोड़कर ही वह कमरे से बाहर चला गया। उसकी बात सुनकर मैं हंसू या रोऊं, कुछ सोच नहीं सका।

शाम को भाभी चाय लेकर कमरे में आईं।

मैंने कहा, 'तुम तो बहुत हंसती थी भाभी, अब अपने ड्राइवर की करतूत देख रही हो ?'

भाभी एक चेयर खींचकर बैठ गईं और बोलीं, 'सचमुच, उस समय मैंने ऐसा नहीं समझा था। अब तो सोचने में भी खराब लगता है। कुछ भी कहो, किन्तु गंगा लड़की है बहुत सभ्य और फिर...।'

'आश्चर्यजनक बात है यह तो, क्या वह सभ्य लड़की भी उसके पीछे पागल है ?' मैंने आश्चर्य से पूछा।

'मुझे तो विश्वास नहीं होता।'

'सुनो तब।' और मैंने उस रात की सारी बातें भाभी को बताईं।
भाभी ने आश्चर्य-चकित होकर कहा, 'सच?'
सिर हिलाकर मैंने कहा, 'तुम क्या जानो भाभी, विद्वानों का कहना ठीक है कि सुन्दरियां पगुओं को ही प्यार करती हैं।'
भाभी कड़ा-सा उत्तर देनेवाली ही थी, कि पाण्डेजी दौड़ते हुए भीतर आये।
'मांजी, उन्होंने वासुदेव का सिर फोड़ दिया है!'
'किसने?'
भाभी के पीछे-पीछे मैं भी दौड़कर बाहर आया। बरामदे में पड़ा वासुदेव कराह रहा था। अगल-बगल दो-चार अपरिचित व्यक्ति एवं घर के दाई-नौकर खड़े थे। वासुदेव का सिर फट गया था। खून गिर रहा था। हाथ-पैर ढीले पड़ गये थे। उसकी कही एक-एक बात को जोड़कर धीरे-धीरे समझ में आया, कि वासुदेव जब बस्ती के रास्ते से पैदल आ रहा था, तब दामोदर ने दो-तीन साथियों के साथ मिलकर उसे घेर लिया।
फुसफुसाते हुए पाण्डेजी ने बताया, 'वासुदेव को जब वो लोग पीट रहे थे, उस समय विट्ठलदास के घर के भीतर से रोने की आवाज सुनाई पड़ रही थी। लगता है, गंगा ही रो रही थी।'
भाभी को वासुदेव पर बहुत गुस्सा आया। वे बोली, 'क्यों गया था उस बस्ती के रास्ते? क्या और कोई रास्ता नहीं है, घूमने के लिए?'
भैया आये तो बिट्ठलदास पर बहुत गरम हुए कि वे लोग कानून को अपने हाथ में ले रहे हैं। साथ ही एक बार और वासुदेव को भी डांटना नहीं भूले।
भाभी बड़बड़ाती हुई, रुई, टिंचर, आइडिन और बैण्डेज लेकर आईं और बोली, 'करो भाई, इस अभागे रोमियो की जरा बैण्डेज तो करो। इस अभागे से तो एकदम परेशान हो गये, अब इसे भगाना पड़ेगा।'
और अभागा बड़े ही विनीत ढंग से मृदु-स्वर में कराह रहा था। भाभी की बात से वह जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसकी आंखें तो उस समय कुछ और ही दृश्य देख रही थीं, और लगता है, उसके कानों में एक लड़की के रोने का स्वर सुनाई पड़ रहा था। ऐसी लड़की जो उसको प्यार करती है और उसके लिए रोती है।
रात को मैं सोच रहा था कि वासुदेव में गंगा ने क्या देखा? क्या इसी का नाम प्रेम है?
नींद किसी तरह भी नहीं आई। इसका कारण वासुदेव नहीं था। उस चिन्ता से अपनी चिन्ता में कब विचरने लगा, पता नहीं। नींद न आने पर भी, रात के

अन्धकार में विस्तर पर पड़े रहने से, एक विचित्र तरह की नींद का नशा-सा चढ़ा हुआ था। इसीलिए रात कितनी गहरी होती गई, पता नहीं चला। अचानक एक शब्द सुनकर उठ बैठा।

खिड़की के किनारे जाकर देखा कि बासुदेव के विछावन के पास गंगा आकर बैठी है, और बासुदेव की छाती पर सिर रखकर दबे स्वर में रो रही है।

वासुदेव उसके सिर को हाथ से सहलाते हुए फुसफुसाकर कह रहा है, 'रोओ नहीं, उस कमरे में छोटे बाबू सो रहे हैं।'

रोने से गंगा का गला रुंध गया है, फिर भी उसकी कही बात समझ में आ गई, 'मैं, मेरे लिए ही तुम्हें इतनी तकलीफ हुई।'

'तुम्हारे लिए तकलीफ हुई, तभी तो तुम्हारा मूल्य समझ सका। तुम बहुत कीमती हो, गंगा। तुम्हारे लिए प्राण तक दिया जा सकता है।' बासुदेव ने कहा।

जरा देर चुप रहकर उसने फिर कहा, 'मैं किस लायक हूं, मैं एक अशिक्षित ड्राइवर, दुनिया में अपना कहने के लिए कोई भी तो नहीं है मेरा।'

'मैं भी क्या हूं बासुदेव ? गरीब मराठी लड़कियों की अवस्था तो तुम जानते ही हो। बूढ़ी हो जाने पर भी शादी नहीं होती। वह आग कैसी होती है...।'

'गंगा !'

'क्या ?'

'मैंने अच्छी तरह सोच लिया है।'

'क्या सोच लिया है ?'

'तुम मुझे भूल जाओ।'

'प्यार करना मेरे लिए खेल नहीं है, बासुदेव। मैं सब दुःख-कष्ट झेलने के लिए तैयार हूं।'

'किन्तु मैं तो तैयार नहीं हूं। नहीं, तुम जाओ, मुझे और लालच मत दिखाओ।'

'लालच ?' विद्युतवेग से गंगा उठ खड़ी हुई, और धीरे-धीरे बोली, 'अच्छा, तो मैं चली।'

बासुदेव ने कोई जवाब नहीं दिया। गंगा ने पैर बढ़ाया, किन्तु बासुदेव हिला-डुला नहीं। गंगा ने आगे बढ़ना शुरू किया और पहली सीढ़ी पर पैर रखा।

हठात् अस्फुट पुकार निकली बासुदेव के गले से। ऐसा लगा मानो उसकी आर्त आत्मा पुकार उठी हो।

'गंगा !'

वहीं ठिठक गई गंगा।

'गंगा।'

दोनो ही एक-दूसरे की ओर इस प्रकार दौड़ पड़े, जैसे दो उन्मत्त लहरें।

वासुदेव ने कहा, 'मुझे माफ करो गंगा, माफ करो। तुम नही जानती कि तुम्हारे लिए मैं कितना तरस रहा हू, कितनी लालच लगती है तुम्हारे लिए। हे भगवान, तुम्हें चले जाने को कह दिया, लेकिन तुम्हे छोड़कर मैं जीवित नही रह सकता, गंगा।'

उसके बाद उनका उन्मत्त आवेग देखकर शर्म के मारे मैं अपने बिस्तर पर चला आया। समय कट गया।

रात के अन्तिम प्रहर में चाद बहुत ऊपर चढ आया। चम्पा फूल की सुगन्ध पछुवा हवा के साथ बहकर कमरे में आ रही थी। मुझे नीद आ गई।

सुबह तेज धूप की गर्मी एवं भाभी की पुकार से जब नीद खुली तो देखा कि टेबल पर गर्म चाय से भाप निकल रही है। प्यास के मारे गला सूखकर काठ हो रहा था। मैंने जल्दी से चाय लेकर घूट भरी। उधर कुए के किनारे उस समय भी भीड़ थी। पानी के लिए तृषित लोगो का कलरव और पानी खीचने का शब्द। तृष्णा पर विजय पाने के निमित्त, झिलमिल शीतल पानी के लिए यह कैसा प्राणांत प्रयत्न! ओह!

आजकल पानी लेने के लिए सिर्फ यमुना ही आती है, गंगा नही आती।

किन्तु उस रात के बाद भी गंगा दो बार और आई वासुदेव के पास। और तीसरी रात से उसका आना बन्द हो गया।

कई दिन बाद एक शाम पाण्डेजी ने आकर कहा, 'यह वासुदेव तो एकदम पागल ही हो गया है, हुजूर!'

'कैसे?' मैंने पूछा।

'उन्होंने उस लडकी को दूसरी जगह, अपने किसी रिश्तेदार के यहां भेज दिया है। यह खबर पाने के बाद से ही वासुदेव रो रहा है।

'अब मैं क्या करू'? रोने दो। उसकी तकदीर में दुख ही लिखा होगा, तो कौन मिटा सकता है?'

थोडी देर बाद ही वासुदेव कुए के किनारे दिखाई पड़ा। आम के पेड़ के नीचे अन्धकार में बैठा है, और रो रहा है।

रात को भी उसका रोना सुना मैंने।

बात भाभी को भी बताई। भाभी ने कहा, 'चलो भई, अच्छा हुआ। बला टली। रोने दो, दो-चार दिन रोयेगा, फिर सब भूल जाएगा।'

लेकिन वासुदेव भूल जाएगा, ऐसा नहीं लगा। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वासुदेव

गम्भीर होता गया। सिर के बाल और दाढ़ी बढ़ जाने से तांत्रिक संन्यासी की तरह चेहरा हो गया। किसी से भी वह बात नहीं करता। सभी काम मशीन की तरह करता और खाली समय में कुंए के किनारे बैठा रहता।

यमुना अब भी पानी भरने आती, किन्तु अकेली नहीं, अपनी मां के साथ आती। वासुदेव की तरफ देखते ही उसकी आंखें अंगारे बन जाती थीं और वासुदेव को लक्ष्य करके मराठी भाषा में न जाने क्या-क्या शाप देती। किन्तु उसकी बातें वासुदेव के कानों तक शायद नहीं पहुंचतीं। न ही वह उसकी तरफ नजर उठाकर देखता।

भैया कभी-कभी उसे बहुत डांटते, भाभी बहुत समझातीं। लेकिन वासुदेव पर कुछ भी असर नहीं होता। ऐसा लगता, मानो उसने कठिन तपस्या ही शुरू कर दी है।

उसकी उस तपस्या का मंत्र भी मैं कई बार सुनता। रात गहरी हो जाने पर रो-रोकर बुदबुदाता-सा कहता वह, 'गंगा..., गंगा..., गंगा।'

समय का चक्र मनुष्य के सुख-दुख की परवाह नहीं करता। देखते-देखते तीन महीने बीत गये। सभी की प्रतीक्षा का अंत हुआ।

अरब सागर से आये पानी-भरे बादलों से आकाश काला हो उठा। फिर वर्षा हुई और सूखी मिट्टी पर अल्पना का नक्शा बन गया। प्यासी धरती को उस रस-धार ने तृप्त कर दिया।

किन्तु कुंए पर की भीड़ क्या कम हुई? अन्य दिनों से उन्नीस-बीस भले ही हो गई हो, विशेष कुछ नहीं।

इसी बीच पाण्डेजी ने खबर दी, 'गंगा लौटकर आ गई है, छोटे बाबू। उस रिश्तेदार के यहां उसने शायद आत्महत्या की कोशिश की थी। अतः उसने तंग आकर वापस भेज दिया है।'

अचानक एक दिन वासुदेव को देखा। लगा, उसकी तपस्या पूरी हो गई। उसने अपनी दाढ़ी-मूंछ मुंड़वा ली थीं। इतने दिन दाढ़ी-मूंछ के कारण पता नहीं चलता था कि वह कितना दुबला हो गया है। गंगा अपने घर में है, फिर भी जैसे वह प्रसन्न नहीं मालूम होती। हर समय कोई भारी चिन्ता, किसी भारी शिला की तरह, उसकी छाती पर पड़ी रहती है।

यमुना अब भी पानी भरने आती है। वह युवती, कुंआरी लड़की है, किन्तु बड़ी-बूढ़ियों की तरह बीच-बीच में जैसे हवा से बतियाती है, 'हैजे से मरोगे। कोढ़ निकलेगी। सियार-कुत्ते नोच-नोच कर खाएंगे।' आदि-आदि।

इस तरह की जहरीली बातें वह किसके सम्बन्ध में कहती है, यह स्पष्ट है। किन्तु कौन क्या कहेगा? और कहकर होगा भी क्या?

एक दिन भाभी ने कहा, 'वासुदेव के लिए मुझे आजकल चिन्ता लगी रहती है। वह विट्ठलदास अभी भी क्रोध से लाल हुआ रहता है। सुना है, फिर उसने मार-पीट की तैयारी की है।

सुनकर मैं आश्चर्य-चकित हो गया। मैंने पूछा, 'फिर क्यों? वह मामला तो ठण्डा पड़ गया है, और अब तो गंगा आती भी नहीं है।'

'आएगी कैसे? उसको तो ताले में बन्द कर रखा है।'

'बिचारी!'

शाम को, काम न रहने पर, वासुदेव कभी-कभी बाहर चला जाता। कहां जाता, यह किसी को पता नहीं। कभी-कभी रात में देर से खाना खाता। भाभी उसे कितना डांटती, पर कुछ भी असर नहीं होता। बीच-बीच में पाण्डेजी और घर की दाई के साथ न जाने वह क्या परामर्श करता रहता, कुछ समझ में नहीं आता। समझने का प्रयत्न भी नहीं किया मैंने। घर के ड्राइवर के प्रेम-प्रसंग में इससे अधिक रुचि लेना अशोभन लगता है।

उस दिन रविवार था। भैया घर पर ही थे। पड़ोस के दो-तीन बंगाली सज्जन आये हुए थे। वे लोग कुछ देर गप्पबाजी करके गये ही थे, कि उसी समय विट्ठलदास और उसका लड़का दामोदर आ हाजिर हुए।

आते ही विट्ठलदास फूट-फूटकर रोने लगा, और बोला, 'हमारी गंगा कल रात से लापता है, बाबूजी।'

भैया ने सब कुछ सुना, और बोले, 'मैं क्या करूं, पुलिस को खबर कर दो।'

'आप पता लगाइये हुजूर। आपका ड्राइवर जरूर जानता है।'

वासुदेव ने आकर इन्कारी में सिर हिला दिया। पाण्डेजी आदि सभी ने गवाही दी कि वासुदेव रात को कहीं नहीं गया था।

भैया ने विट्ठलदास से कहा, 'पुलिस में खबर करो, विट्ठलदास। और भई, दोष तो तुम्हारा ही है, अपनी लड़की को भी नहीं सम्हाल सकते।'

उत्तेजित विट्ठलदास लौट गया। पुलिस में खबर देंगे वे। बहुत खराब बात है। और एक बार करारी डांट पड़ी वासुदेव को। यदि पुलिस आकर घर में जिरह करे, तब?

भाभी ने वासुदेव को ओट में बुलाकर पूछा, 'सच-सच कह रहे हो न वासुदेव, कि तुम कुछ भी नहीं जानते?'

सिर नीचा किये ही वासुदेव ने सिर हिलाया, 'नहीं, मांजी।'

दिन बीता, रात हुई; और उसके दूसरे दिन वासुदेव की तबियत ठीक नहीं थी। भैया स्वयं ही कार ड्राइव करके आफिस गये। मुझे कुछ काम नहीं था, इसलिए मैं घर से नहीं निकला। कानन डायल की एक किताब लेकर बैठ गया।
पढ़ते समय, बीच-बीच में वासुदेव, पाण्डेजी और दाई इत्यादि की ओर देख-देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हो रहा था। वे लोग जैसे उत्तेजित, चिन्तित एवं चंचल-से लग रहे थे। बात क्या है? कभी-कभी सभी मिलकर जाने क्या खुसर-फुसर करते हैं। किन्तु दूसरे क्षण ही कानन डायल ने उस घटना को भुला दिया। शरलक होम्स के कारनामों को पढ़ते-पढ़ते एकदम शाम हो गई। बच्चे शोर-गुल मचाते हुए स्कूल से लौट आये। भाभी चाय ले आईं। बाहर सूर्य का प्रकाश धीरे-धीरे रंगीन होता जा रहा है। कार का परिचित हार्न सुनाई पड़ा। भैया लौट आये हैं। शाम के झुटपुटे में चम्पा की सुगंध हवा के झोंकों से और भी तीव्र लग रही है। और आकाश में चांद नहीं है, इसलिए तारों ने अपनी महफिल जमा ली है।
लेकिन अरब सागर से काले बादल का एक बड़ा-सा टुकड़ा धीरे-धीरे समूचे आकाश को छा लेने के लिए धूमकेतु की तरह आ रहा है, यह मुझे पता नहीं चला। पता चला बहुत देर बाद। उस समय रात के साढ़े ग्यारह बजे होंगे। अचानक खिड़की में से होकर आकाश की ओर नजर गई, तो पाया कि तारों की महफिल न जाने कब उजड़ गई है। काजल की तरह गहरे काले रंग से आकाश पुत गया है।
थोड़ी देर बाद ही इतनी जोर से बादल गरजे, कि सारा आकाश ही मानों हिल उठा। बिजली चमकने लगी। और फिर सूं-सूं करती पूर्वी हवा के साथ मोटी-मोटी बूंदों में वर्षा शुरू हो गई। हवा के साथ कमरे में भी बौछार आने लगी। मैंने खिड़की बन्द कर दी। फिर भी ठंड लग रही थी। ओढ़ने के लिए कमरे में चादर भी नहीं थी।
भाभी सोई नहीं थीं। बैठी-बैठी चिट्ठी लिख रही थीं। भैया उस समय दूसरे कमरे में आफिस की फाइलों को निबटा रहे थे।
बाहर कारीडोर की ओर देखा—पाण्डेजी, वासुदेव, और दाई बैठे बातचीत कर रहे थे। अभी तक उनकी फुसफुसाहट चल रही है।
'भाभी, बड़े जोरों से ठंड लग रही है, कुछ इन्तजाम करो, भई।'
भाभी ने सिर उठाया। 'ओह, शायद तुम्हें चादर नहीं दी है। चलो, दे दूं।

यहां बहुत जल्दी सर्दी लग जाती है। जरा सम्हलकर रहना ही अच्छा है।'
भाभी अपने कमरे से बाहर आईं। कारीडोर पारकर स्टोर रूम में गईं। मैं कारीडोर में ही खड़ा रहा। मुझे देखकर वासुदेव वगैरह जरा सरककर अलग बैठ गये। उनकी बातचीत बन्द हो गई। बार-बार वे लोग मेरी ओर देखते हैं, यह देख मैं कुछ परेशान-सा हो गया।
'ऐसी क्या बातें हो रही हैं तुम लोगों की, क्या आज सोओगे नहीं ?'
वासुदेव ने सूखे गले से जवाब दिया, 'एखनो भी नीन्द आसवे न, छोटेबाबू।'
अचानक स्टोर-रूम से एक अस्फुट आर्तनाद सुनाई पड़ा।
'भैयाजी, भैयाजी।'
'क्या हुआ, भाभी ?'
दौड़कर उस कमरे में गया। भाभी भागकर कमरे से बाहर आ रही थी। डर के मारे उनका चेहरा सफेद हो गया था और वे थर-थर कांप रही थी।
'भाभी।'
कमरे के भीतर कोने की ओर इशारा कर उन्होंने बताया, 'देखो, वहां कौन छिपा हुआ है ?'
'कहां ?'
दरवाजे के पास ही छाता भूल रहा था। उसी को हाथ में लेकर मैं कोने की तरफ बढ़ा। एक छोटी-सी टेबल पर बिछावन की थाक सजाई हुई थी, उसी के पीछे जाकर मैंने देखा कि एक चादर कोने में इस तरह भूल रही है, जैसे उसके नीचे कुछ ढंका हुआ हो। अच्छी तरह निरीक्षण करने पर पता चला कि कोई छिपा हुआ है। चोर! एक झटके में ही चादर खींच दी मैंने। अस्फुट स्वर में भाभी ने कहा, 'गंगा!'
भयभीत नजरों से गंगा ने मेरी ओर देखा। फिर दोनों हाथों से अपना चेहरा ढंक लिया।
ठीक उसी समय वासुदेव दौड़ता हुआ आया और भाभी के पैर जकड़कर रो पड़ा।
'ओके किछु बोलवेन ना मां, ओर कोई भी दोष नाईं।'
भैया के पदचाप निकट आये।
'क्या हुआ ?' प्रश्न करते हुए वे कमरे में घुसे और ठिठककर खड़े हो गये।
'यह क्या ?'
भाभी ने कुछ भी जवाब नहीं दिया।
वासुदेव हाथ जोड़कर भैया के सामने खड़ा हो गया, 'आपनि हामार अन्नदाता बाप

हुजूर, ओके किछु कहियेन ना, सारा दोप हामार।'
'चुप रहो, सुअर,' भैया गरज उठे। 'रास्कल, तुम्हारे कारण क्या हम अपने ऊपर कलंक लेंगे ? अभागे, वदमाश, इतना समझाकर भी तुम्हें रास्ते पर नहीं ला सका ?'
वासुदेव की दोनों आंखों से अश्रु-धारा प्रवाहित हो रही है। दरवाजे के उस तरफ पाण्डेजी और दाई शंकित नजरों से देख रहे हैं।
'कव से वह यहां है ?' भैया ने प्रश्न किया।
वासुदेव ने कहा, 'कल रात से।'
'तव तुमने झूठ कहा था ? तुम सभी ने ?'
पाण्डेजी और दाई अपराधी की तरह सिर झुकाये वहां से खिसक गये।
भैया ने मेरी ओर ताका, 'जाओ, जरा पुलिस को बुलाकर ले आओ तो। यह सव प्रश्रय देने से काम नहीं चलेगा।'
यह सुनने के साथ ही, कमरे के कोने से अवनतमुखी गंगा दौड़कर भैया के पैरों में लोट गई। 'दुहाई है वावूजी, हम लोगों को पुलिस में न दीजिये।'
भैया ने कहा, 'अवश्य दूंगा।'
'नहीं', भाभी ने कहा।
भैया तुरंत पलटे, 'क्या कह रही हो ?'
भाभी ने गंगा को खड़ा किया, और वोली, 'इसकी तरफ जरा ध्यान से देखो तो।'
हम सभी ने उधर देखा, और यह समझते जरा भी देर नहीं लगी कि वह मां वनने वाली है।
भाभी ने कहा, 'मैं भी स्त्री हूं। मैं भी एक मां हूं। अगर तुम सभी इसका अपमान करोगे, तो मैं सहन नहीं करूंगी। इनको छोड़ना ही पड़ेगा।'
दांतों से होंठ काटते हुये भैया ने कहा, 'लेकिन पुलिस ?'
'पुलिस के आगे जवावदेही मैं करूंगी। बासुदेव, तुम तैयार हो जाओ। छिः-छिः, यह बात अगर मुझे पहले वता देता तो क्या था, अभागे ! कमरे के कोने में चौबीस घण्टे से लड़की वैठी है। भैयाजी, तुम्हीं ड्राइव करके इन्हें स्टेशन छोड़ आओ। नहीं तो, हो सकता है कि ये लोग जीवित मलाड न छोड़ सकें।'
वात जरा भी अतिरंजित नहीं लगी। भाभी की वह महिमामयी, करुणामयी मूर्ति जीवन में कभी नहीं भूल सकूंगा। साथ ही वासुदेव का वह असहाय चेहरा और उसकी मराठी प्रेयसी का पीला और त्रस्त चेहरा भी चिरकाल तक मेरे दिमाग में अंकित रहेगा।
भाभी ने अपने कुछ साड़ी-व्लाउज की पोटली वांधी और गंगा को वड़े यत्न से

खिलाया। उसके बाद वासुदेव का महीना चुकाकर, ऊपर से और पच्चीस रुपये उसके हाथ में देकर, उनको विदा किया।

इतने दिन वासुदेव ही गाड़ी चलाता था, किन्तु आज मैं उसे और गंगा को गाड़ी में बैठाकर स्टेशन ले गया। उस समय मूसलाधार वर्षा हो रही थी। पूरा मलाड खिड़की-दरवाजे बन्द किये सो रहा था। ट्रेन में सवार होकर, आंखों में आंसू भरे हुए वासुदेव बोला, 'गरीब को याद रखियेगा, छोटे बाबू।'

बड़े ही मोहक ढंग से गंगा ने निःशब्द प्रणाम किया। ट्रेन चल पड़ी।

दूसरे दिन, आकाश बड़ा ही स्वच्छ था। धूप निकली थी। खिड़की के बाहर देखा, कुंए पर उसी तरह भीड़ है। इतनी बरसात में भी मनुष्य की तृष्णा नहीं मिटती। उसी भीड़ को देखते-देखते अचानक वासुदेव और गंगा की याद आई। इस समय वे न जाने कहां होंगे? किसे पता, किस शहर में जाकर वे घर बसायेंगे? इस उदासीन संसार से उन्हें कितनी सहानुभूति मिलेगी? न मालूम, उनकी तकदीर में कितना दुःख लिखा है?

कुंए से एक लड़की पानी खींच रही है। उसकी चूड़ी की खनखनाहट सुनाई दे रही है। बाल्टी भर तृष्णा का पानी। पानी की तृष्णा। लेकिन यही तृष्णा क्या मनुष्य की अन्तिम तृष्णा है? क्या इससे भी अधिक मर्मघाती कोई अन्य तृष्णा नहीं है? और इन अन्तहीन तृष्णाओं का नाम ही क्या जीवन नहीं है?

नारायण गंगोपाध्याय

एक और शरीर

गर्मी की छुट्टियों के बाद जब हेडमिस्ट्रेस सुधा सेनगुप्त स्कूल लौटी, उसकी मांग में सिंदूर की महीन-सी रेखा चमक रही थी। कलाई में सोने की चूड़ियों के साथ सफेद शंख की चूड़ी, और रिस्टवाच भी नई। आने के पश्चात हस्ताक्षर किया— 'सुधा मित्र'।

स्कूल में हलचल मची।

'यह क्या बात है, सुधा दीदी? हम लोग जान भी नहीं पाये?'

सुधा मित्र के गोरे गाल सुर्ख हो गये। 'रजिस्टर्ड मैरेज थी। अचानक हो गई। किसी को भी खबर नहीं कर सकी।'

स्कूल के सेक्रेटरी ने हंसकर कहा, 'बधाई! किन्तु हम लोग ऐसे नहीं छोड़ेंगे। मुंह मीठा कराना ही पड़ेगा।'

'अच्छी बात है। कहिए, कब खायेंगे?'

'अभी नहीं। मिस्टर मित्र को आने दीजिये। जोड़ी मिलेगी, उसके बाद।'

और एक ने जोड़ दिया कि दोनों से दो दिन वे दावत लेंगे।

सुधा मित्र ने सिर हिलाकर कहा, 'ठीक है, ऐसा ही होगा।'

सिर्फ श्यामली घोष का चेहरा तमतमा आया। वह यों ही गंभीर रहती थी, और भी गंभीर होकर बीजगणित के पेज उलटने लगी।

सुधा सेनगुप्त और श्यामली घोष एक ही कालेज की सहपाठिनी थीं। सुधा हर समय 'ही-ही' करना पसन्द करती। कालेज के फंक्शन में मणीपुरी डांस का प्रोग्राम देती एवं कालेज स्पोर्ट्स में भी कभी-कभी भाग लेती। होस्टल की लड़कियों की छिपाई हुई खाने की चीजें खोजकर चुपचाप उड़ाने में उसका जोड़ नहीं था। किन्तु श्यामली का स्वभाव ठीक इसके विपरीत था। हर समय अत्यधिक गंभीरता उसे घेरे रहती थी। होस्टल एवं कालेज के बीच कृष्णनगर नाम के एक शहर का भी अस्तित्व है, ऐसा उसने कभी महसूस नहीं किया। 'भूलन' या 'वारदोल' का मेला—कुछ भी उसका ध्यान आकर्षित नहीं कर सकता था।

किन्तु फिर भी दोनों में आश्चर्यजनक मित्रता थी। वैज्ञानिक नियम के अनुसार जैसे धनात्मक ऋणात्मक को आकर्षित करता है, उसी तरह। बी० ए० पास करने के पश्चात् दोनों बिछुड़ गईं। दो वर्ष तक तो कई-कई पृष्ठों के लम्बे-लम्बे पत्र सुधा ने श्यामली को लिखे, किन्तु जवाब लिखते समय एक घण्टे तक कलम के साथ कसरत करने के बाद भी आठ पंक्तियों से अधिक के समाचार नहीं सूझते थे श्यामली को। अन्त में वही हुआ, जो प्राय: होता है दोनों के जीवन दो दिशाओं में बंट गये।

चार वर्ष पश्चात् एम० ए०, एम० एड०, हेडमिस्ट्रेस सुधा सेनगुप्त को 'एप्लीकेशन' की फाइल उलटते समय श्यामली घोष बी० ए०, बी० टी० की दरख्वास्त दिखाई दी। कालेज का नाम, बी० ए० पास करने का साल, आदि से और भी निश्चय हो गया।

प्लेटफार्म पर उतरते ही श्यामली ने देखा, सुधा वहां खड़ी है।

'तुम यहां ?'

'हां, तुम्हारे लिये ही।'

'सच !' खुशी से श्यामली की आंखें चमकने लगीं। 'लगता है, तुम इसी स्कूल में—'

स्कूल के चपरासी ने आगे बढ़कर बीच में ही कहा, 'बड़ी दीदी, सब सामान तब फिर—'

'हां, हां, रिक्शे में रखवा दो, मेरे क्वार्टर में ही जायेगा।'

'बड़ी दीदी !' स्वभावत: ही श्यामली दो कदम पीछे सरक गई। 'तो तुम—'

'हां भई, हेडमिस्ट्रेस हूं। क्या करूं, तकदीर का दोष ! इसके लिये शुरू में ही मुझे दूर कर दोगी क्या ?'

'नहीं, नहीं। मेरा मतलब......' और इससे अधिक श्यामली कुछ भी नहीं बोल

सकी।

'अच्छा, यह सब बाद में होता रहेगा। अभी तो घर चलो। चार वर्षों से कितनी बातें इकट्ठी कर रखी हैं तुम्हारे लिये, सारी रात वक-वक करते रहने पर भी शेष नहीं होंगी। आओ, आओ।'

प्रायः खींचते हुए श्यामली को रिक्शे की ओर ले चली।

एक बार जो श्यामली को वह ले गई, उसके बाद उसे अपने पास ही रखा। 'टीचर्स-मेस' में जाने की बात चलाई भी श्यामली ने दो-एक बार, किन्तु सुधा ने हमेशा नाराजगी ही दिखाई।

'क्यों, यहां तुम्हें क्या असुविधा है? जरा मैं भी तो सुनूं?'

'मुझे कुछ भी असुविधा नहीं। खामखाह तुम्हें तकलीफ होगी।'

'तकलीफ कैसी? तीन कमरे हैं, मेरे क्या काम आयेंगे? और सब खर्च तो दे ही रही हो। बेकार ही क्यों झमेला करती हो?' मान से सुधा की आंखें छलछला उठीं। 'घर में अकेली रहती हूं, रात के समय यदि चोर-डकैत आकर खून भी कर जांय, तो कोई देखनेवाला नहीं। अच्छा ठीक है, अगर अच्छा नहीं लगता तो चली जाओ।'

श्यामली हंसी। 'तुम्हारे क्वार्टर से लगकर ही प्रेसीडेन्ट का घर है और सामने सौ गज की दूरी पर ही थाना है।'

'डकैत अगर आकर गला पकड़ लें, तो कोई भी कुछ नहीं कर सकेगा।'

श्यामली भी कुछ सहायता कर सकेगी, ऐसी उम्मीद नहीं थी। और इस घर में डकैत कभी नहीं आयेंगे, इस बात को श्यामली से अधिक सुधा जानती थी। फिर भी इस तरह जाया नहीं जाता। सभी बात में सुधा का वही ब्रह्मास्त्र—'तकदीर का दोष था, जो हेडमिस्ट्रेस हो गई, किन्तु तुम भी मुझे इतना गैर समझोगी, ऐसा मैंने कभी नहीं सोचा था।'

श्यामली की असली चुभन यहीं थी। साधारण असिस्टैन्ट टीचर होकर हेडमिस्ट्रेस से दोस्ती की भूमिका, उसे मानो लज्जाजनक मालूम होती थी। कालेज के समय की बात दूसरी थी, किन्तु अब? और श्यामली की इस दुर्बलता को सुधा जानती थी, इसीलिए वह कोई भी बात इस तरह शुरू करती, कि श्यामली को चुभन के अस्तित्व को प्राणप्रन से छिपा लेना पड़ता था।

फिर भी, सात-आठ महीने में बहुत-कुछ सहज हो आया था। सुधा सेनगुप्त की यहां असाधारण 'पापुलैरिटी' थी। छात्राओं को उस पर बहुत श्रद्धा थी। टीचर सभी उसे काफी मानतीं, एवं सम्पूर्ण 'गवर्निङ्ग बोडी' को उस पर विश्वास था। इसीलिए जिस बात का सबसे अधिक डर था, उसी ईर्ष्या का लेशमात्र भी

सुराग अन्य टीचरो में नहीं मिला श्यामली को।

पर इतने दिनों वाद, फिर से घटाओ की छाया पड़ने लगी। सुधा सेनगुप्त नहीं, सुधा मित्र। सिन्दूर की सूक्ष्म रेखा चमक रही है। सिर्फ हेडमिस्ट्रेस ही नही, दोनों के बीच में किसी तीसरे का दीवार बनकर खडा हो जाना ही उसको खटक गया। अन्य टीचरो एवं सेक्रेटरी की तरह श्यामली भी खुश होना चाहती थी। उसने कहना चाहा था, 'हार्टी कान्ग्रेच्यूलेशन्स।' किन्तु किसी तरह भी नही कह पाई वह। उसका मन आश्चर्यजनक रूप से कुंठित एवं संकीर्ण हो उठा।

सुधा को लौटने में देर होगी, स्कूल कमेटी की जरूरी मीटिंग है आज। श्यामली अकेली ही लौटी। कपडे बदलकर नहाते समय अन्यमनस्कता से सारे बाल भिगा बैठी। और फिर गीले बालो सहित ही अपने कमरे की खिडकी के बगल में चौकी पर बैठ गई। इस खिडकी में बैठने से कुछ दूर पर एक नदी दिखाई पडती है—शिलाई। वास्तविक नाम था शीलावती। बालू के कण दिखाई पड़ते और खेयाघाट के फूसवाले छप्पर का एक कोना। नदी के उस पार शाम का लाल रंग दिखाई पड रहा था एवं उस लाल रंग के नीचे काली छाया पडनी शुरू हो गई थी। मनुष्यो के धुंधले आकार, भैंसो का एक झुड तथा उनके पैरो से उड़ती धूल यहां से भी दिखाई पडती है।

श्यामली एकटक उसी ओर देखती रही। उसके मन में भी शाम उतर रही थी। सुधा ने शादी कर ली, और उसे खबर तक नही दी। एक पत्र तक भी नही लिखा।

और उससे भी वडी वात 'रजिस्टर्ड-मैरेज'। इसका मतलब, बहुत दिनो से 'यह' चल रहा था। घटना अचानक नहीं घटी। किन्तु इन आठ महीनो के भीतर सुधा ने एक बार भी उसके सामने बात नही चलाई। एक बार भी नही कहा। और एक दीवार खडी हो गई दोनों के बीच।

हो सकता है, बताने की इच्छा होकर भी न बता पाई हो, और श्यामली स्वयं इसका कारण हो।

पांच महीने पहले की बात है। स्कूल की और एक टीचर शादी करने के पश्चात् 'रिजाइन' करके चली गई थी।

सुधा ने कहा था, 'लीला के पति को देखा था। भाई, लड़का अच्छा है। लीला सुखी होगी।'

कुछ देर श्यामली चुप रही थी। उसके बाद जवाब दिया, 'नही, सुखी नहीं होगी, मरेगी।'

सुधा चौंक उठी थी। 'अचानक ऐसी सीनीसिज्म क्यों री? किसी ने तुझे 'चिट्' किया है?'

'नहीं, ऐसा दुर्भाग्य मेरा कभी नहीं हुआ।'

'तव फिर ऐसी बात क्यों कहती हो?'

'पुरुष जात को जानती हूं, इसलिए। वे सभी ऐसे ही होते हैं, लोभी एवं स्वार्थी। लड़कियों को 'एक्सप्लोयट' करना छोड़कर दूसरा उद्देश्य नहीं रहता उनका।'

'अच्छा, अच्छा, तुम्हारे भी दिन आयेंगे। उस समय कुछ और ही सुनने को मिलेगा।'

'नहीं, वह दिन कभी नहीं आयेगा।'

यह विद्वेष आज का नहीं है। चेतना के अन्तस्तल में बचपन से ही जमकर बैठ गया है। उसी कृष्णनगर शहर में, उनके बगलवाले मकान में एक ओवरसियर महाशय रहते थे। वह प्रायः ही आधी रात को शराब के नशे में चूर होकर लौटते थे और उसके बाद अपनी पत्नी को पीटते थे। उसकी वे दर्दनाक चीखें एवं रोना रात को और भी वीभत्स बना देते थे। उसकी पत्नी का चेहरा अभी भी उसे याद है। बिल्कुल शंख की तरह सफेद, रक्तहीन चेहरा। कंकाल मात्र हाथों में दो गुच्छे कांच की चूड़ियां...उकडूं बैठकर कुंए के पास एक ढेर बर्तनों को मांजती रहती थी वह।

उसके बाद कलकत्ते में बी० ए० पढ़ने के समय वह शादी-शुदा लड़की पढ़ने आई थी उसके साथ।

'नौकरी करके गृहस्थी चलाती हूं, लेकिन फिर भी पांच बच्चे तो हैं। उनसे कहती हूं, अब दुहाई है भई, दया करके मुझे माफ करो। अब बस बहुत हो चुका। अब मेरी सामर्थ्य नहीं है। अब मुझे छुटकारा दो। आजकल तो कितनी तरह के आपरेशन वगैरह चल रहे हैं। लेकिन वे कहते हैं, हम लोग नैहाटी, भाटपाड़ा के पंडित वंश के हैं। यह सब पाप की बातें जबान पर भी मत लाओ।'

बचपन की घृणा और भी तीव्र हो गई मन में कुंडली मारकर बैठ गई थी। सुधा उस इतिहास को नहीं जानती थी, किन्तु [illegible] के मन को वह अच्छी तरह समझ चुकी थी। हो सकता है, इसीलिए सब बातें उसे [illegible] ने [illegible] पड़ी हो। इस तरह सुधा पर गुस्सा नहीं किया जा सकता।

[illegible] पर संध्या उतर आई। [illegible]

एक लाईट जल उठी, चकाचौंधपूर्ण। सेयाघाट की लाईट।
श्यामली प्रकाश की ओर ही एकटक देखती रही। नदी पार कर सभी लोग कहां जा रहे हैं? बालू के मैदान आदि के पार इनका गांव कहा है, कितनी दूर है? वालो को अच्छी तरह नही पोछा था। पहना हुआ ब्लाउज बहुत कुछ भीग गया था। अचानक श्यामली के शरीर में एक ठण्डी सिहरन उत्पन्न हुई। ऐसा लगा, उसके शरीर से एक और शरीर उत्पन्न होकर उस पार चला गया है। शिलाई नदी की काली रात एवं उसका काला पानी, उसके बाद गहरा अंधेरा एवं बालू-समूह के उस पार, सू-सू करके चलती तेज हवा में, वन के भीतर से होकर अकेला पागल-सा वह कहां चला जा रहा है? सुदूर क्षितिज के सीमान्त तक कहीं भी रोशनी का नामोनिशान नही, एवं न ही किसी गांव के होने का आभास होता है। श्यामली चौंक उठी। आश्चर्य है, यह सब निरर्थक भावना क्यों उठी मन में? ऐसी अद्भुत चिन्ता क्योंकर उसके मन में आई?
कमरे में जूते की आवाज एवं तीव्र प्रकाश का ज्वार। सुधा ने स्विच दबा दिया था।
'क्यों, इस तरह अंधेरे में क्यो बैठी हो?'
'यों ही।' श्यामली ने अप्रस्तुत भाव को चेहरे से हटाने की कोशिश की। 'इतनी जल्दी मीटिंग समाप्त हो गई आज?'
'कुछ फार्मल बातें थी।' अचानक श्यामली के पास बैठ गई सुधा। दोनो हाथ उसके गले में डाल दिये। 'बहुत नाराज हो ना मुझसे?'
'नाराज क्यो होऊंगी?'
'शादी की बात तुमसे मैंने पहले नही कही।' दुविधा हुई एक बार सुधा के मन में, सच बात बोलने में क्या है? 'बहुत बार बताने की चेष्टा की है, किन्तु प्रत्येक बार मैंने जबान तक आई बात रोक ली, क्योंकि तुम्हें तो जानती हू न, बोल उठोगी—दाउ टू ब्रूटस?'
श्यामली सप्रयास जोर से हसी। 'मुझे इतनी कठोर क्यो मान लिया तुमने? मेरे अपने विचार जैसे भी हो, उन्हें तुम्हारे ऊपर जबरदस्ती क्यो थोपना चाहूंगी?'
'यही नियम है भाई, सभी अपनी ही नजरो से दूसरों को देखते हैं। तब फिर, तुम गुस्सा तो नहीं हो न?'
'क्या पागलपन करती हो, सुधा? शादी किस तरह हुई, यह तो बता?'
सुधा की शादी के बारे में श्यामली को बिन्दुमात्र भी कौतूहल नही था, किन्तु उसे ऐसा लगा मानो उसके मुह से यही बात सुनने के लिये सुधा उत्सुक है। और उसका अनुमान ठीक ही निकला। सुधा पलग छोडकर उठी नहीं। स्कूल के

कपड़े भी नहीं बदले। श्यामली को 'होम-टास्क' की कितनी कापियां देखनी थीं। किन्तु उसे नहीं देखने दिया। दाई से प्रायः तीन बार चाय मंगवाई एवं गले के स्वर में छलके पड़ते सुख और लाज के साथ पूरी कहानी सुनाने लगी।
परिचय हुआ था युनिवर्सिटी में। किन्तु पास हो जाने के बाद भी सम्पर्क मिटा नहीं। बल्कि दिन-पर-दिन और गहरा होता गया। किन्तु बिना किसी रोजगार के सहारे के लड़के का साहस नहीं हुआ। इकानामिक्स में एम० ए०, अब बैंक में एक अच्छी नौकरी लगी है।
अब बाधा किस बात की? सुधा के पिता ठहरे भयंकर 'कंजरवेटिव'। किसी तरह भी जाति के बाहर नहीं जायेंगे। देखो तो, आज के युग में भी क्या 'मेन्टेलिटी' रखते हैं? मां ने आपत्ति नहीं की। किन्तु पिता की राय के बिना छुट्टियों में ही 'सिविल मैरेज' कर लेनी पड़ी है।
'उस व्यक्ति को देखकर तुम्हें दया आयेगी, श्यामली।' सुधा के स्वर में सचमुच की सुधा झरने लगी। 'क्या होपलेस व्यक्ति है! मेसवाला नौकर नये जूते पहनकर देश चला गया, किन्तु आंखों से देखकर भी एक शब्द नहीं कहा। तीन महीने के भीतर दो बार ट्राम में पाकेट कट गई है। दोस्त वगैरह रुपये उधार मांग ले जाते हैं, किन्तु कभी वापस नहीं देते। और वह है कि कभी जबान खोल कर नहीं मांगता। बोल तो, ऐसे भोलानाथ को लेकर मैं क्या करूं?'
श्यामली के सिर में न जाने कैसी पीड़ा हो रही है! दूर नदी की तरफ, जहां काला अन्धकार छा गया है, वहां से खेयाघाट की रोशनी मानो उसकी आंखों में तीर की तरह चुभ रही है। इतनी देर तो हो गई, फिर भी सुधा चुप क्यों नहीं हो रही है?
शिष्टाचार की खातिर ही बोलना पड़ा, 'फिर भी तुम उस भोलानाथ को [illegible] आई हो?'

फिर उसे महसूस हुआ, नदी के उस पार, उसी अंधेरे मैदान के भीतर मे, उसी रात की हवा में सनसनाते बावले वन की छाया में, उसका एक और निस्संग शरीर, कहां, कितनी दूर चला गया है, उस पथ का कहीं अन्त नहीं । अन्धकार की भी कहीं कोई सीमा है ?

फिर भी, एक महीने में ही सब-कुछ सहज लगने लगा श्यामली को। मोटे-मोटे लिफाफो के आते ही चोर की तरह सुधा का कमरे के भीतर चले जाना, एवं कमरे से बाहर आने के बाद उसकी आंखो में चंचलता की चमक, दोनो गोरे गालों पर भरपूर लाली। श्यामली को बार-बार कुछ कहना चाहकर भी बहुत कष्ट से स्वयं को सम्हाल लेना आदि।

मन में एक तीव्र विरक्ति की भावना उठती है श्यामली के। छब्बीस-सत्ताईस वर्ष की होने को आई सुधा। एक स्कूल की हेडमिस्ट्रेस है। चेहरे एवं आंखो मे किशोरी की तरह ऐसी आभा, एक ऐसा तेज निकलता है, कि श्यामली के शरीर में जलन होने लगती है। आठ-दस पेज की चिट्ठी में क्या तो समाचार लिखते हैं एवं पढने के बाद इस तरह से विह्वल होने का ही क्या मतलब होता है ?

इस समय टीचर्स-होस्टल में चले जाने में कोई हानि नहीं। अब श्यामली के न रहने से जरा भी असुविधा नही होगी सुधा को। यही बात कहने के लिए श्यामली मन को तैयार कर रही थी कि हठात् बुखार मे पड गई।

बुखार ऐसा कोई खतरनाक नही था, मामूली इन्फ्लुएन्जा था।

लेकिन श्यामली बहुत कमजोर हो गई। सुधा ने कहा, 'व्यर्थ ही स्कूल जाने के लिए क्यो व्यग्र हो रही हो ? चुपचाप चार-पांच दिन पडी रहो।'

तीसरे दिन अकेले पडे रहना असह्य हो गया। बाहर जलती हुई दोपहरी में शीलावती की तरफ धूल का एक बवण्डर उठता दिखाई पड रहा है। बुखार सामान्य था, सिरदर्द भी था, किन्तु इतना होने पर भी बिस्तर पर पडे रहने से मारे शरीर में जलन-सी होने लगी। सुधा स्कूल से कई अंग्रेजी किताबें लाई थी, उन्हों को उलट-पलटकर देखा जाय।

सेल्फ मे एक किताब निकालते ही हल्के नीले रंग का एक लिफाफा गिर पडा। छि-छि, ऐसी भी क्या असावधानी ! यह पत्र इस तरह से बाहर रखना चाहिये ? हमेशा ही तो अन्य टीचर्स सुधा के साथ इस कमरे में आती हैं। किताबें भी प्रायः ले जाती है, किसी के हाथ में यदि...

चिट्ठी सहित किताब वापस रखते-रखते श्यामली रुकी। इन्फ्लुएन्जा के असर से शरीर अस्वस्थ, सिर में भयंकर पीड़ा, बाहर तेज धूप की गर्मी, मानो शरीर में ज्वाला फूंक रही थी। श्यामली ने बार-बार चेष्टा की, होठों को दांत से जोरों

से दवा लिया, फिर भी बिना पढ़े वह लिफाफा नहीं रख सकी। किसी तरफ भी नहीं। जब उसने लिफाफा खोला, उसके दोनों हाथ थर-थर कांप रहे थे। स्नायुओं में ऐसी ज्वाला न रहने पर कुछ दूसरा ही असर पड़ता। किन्तु उन्माद में वह उस आठ-दस पेज के पत्र को पूरा पढ़ गई। पढ़ते समय बार-बार उसके मन में एक ही द्वन्द्व मचलता रहा, 'नहीं पढ़ूंगी', 'नहीं पढ़ूंगी', फिर भी तीन बार उस पत्र को पढ़ गई। उसके बाद अचानक उसका उन्माद उतर गया। तब वह अपने कमरे की ओर दौड़ पड़ी और बिस्तर पर औंधी लेटकर आंसुओं से तकिये को तर करती रही। 'यह मैंने क्या किया, मेरा यह कैसा पागलपन है?'

शाम को जब सुधा लौटी तब उससे नजर नहीं मिला सकी वह। अपने इस अपराध के कारण जैसे उसे कहीं छिपने को भी जगह नहीं मिल रही थी।

'क्यों री, इस तरह मुंह ढंककर क्यों सोई हुई है?' सुधा ने डरते हुए कहा, 'कहीं बुखार तो तेज नहीं हो गया? अपने डाक्टर को खबर कर दूं? डाक्टर साहब अपने घर के-से व्यक्ति हैं। स्कूल में हाईजिन पढ़ाते हैं।'

'नहीं, बुखार तेज नहीं हुआ। यों ही लेटी हूं।'

'फिर इस तरह चादर क्यों तान रखी है?'

'मुझे थोड़ी देर सोने दे, सुधा।'

'अच्छा ठीक है, सो।'

एक तरह की कुत्सित आत्मग्लानि में ही शाम बीत गयी। रात को बार-बार नींद खुल जाती एवं काफी पीड़ा महसूस होती। आज सुबह से ही टीचर्स होस्टल में जाने के लिए श्यामली स्वयं को तैयार कर रही थी। किन्तु साढ़े दस बजे सुधा स्कूल चली गई, दाई काम निपटाकर घर चली गई और धीरे-धीरे हेडमिस्ट्रेस के क्वार्टर पर जैसे निर्जन दोपहरी उतर आई। दिलाई का पानी और बालू का मैदान धूप से जलने लगे। हवा में मादक उत्ताप-सा था। बुखार नहीं था, फिर भी बुखार की पीड़ा शरीर के प्रत्येक रक्त-कण को बेधने लगी। श्यामली के दिमाग में सब-कुछ गड्ड-मड्ड होने लगा।

जिस तरह आग पतंगों को खींचती है, उसी तरह सुधा का कमरा उसे आकर्षित किये रहा। बार-बार बिस्तर छोड़कर श्यामली उसी ओर फिर पड़ जाती। फिर बिजली की-सी तेजी से एक बात उसके दिमाग में आई। इतना संकोच किस लिए, और दुविधा कैसी?

हिन्दुस्तान में आपस में सहेलियां एक-दूसरे के पत्र पढ़ती-पढ़ाती रहती हैं। उनमें किसी प्रकार की शर्म का आवरण नहीं रहता। एक [illegible] का ही भाव है। अभी [illegible] की दो विवाहिता सहेलियों की बात [illegible]

नहीं भूली है।
बिजली ही नहीं, तलवार-सी चमक उठी उसके मन में और सारी दुविधा टुकड़े-टुकड़े हो गई। उसने पत्र पढ़ा है, जानकर सुधा गुस्सा नहीं होगी। वह अगर कहती तो इसके पहले सुधा स्वयं ही उसे पत्र पढ़ा देती।
श्यामली उठकर खड़ी हो गई। इस बार न तो उसके पांव कांपे, और न मन ही डिगा।
'नहीं, किताब में और पत्र नहीं है।'
तीव्र उत्तेजना एवं गहरी निराशा से श्यामली के मन में आग-सी धधकने लगी। बहुत प्यासे के सामने से पानी हटा लेने जैसा अनुभव हुआ उसे। अन्तर्ज्वाला से उसने दांत-पर-दांत दबा लिये। तो क्या सुधा ने पत्र बक्से में छिपाकर रखे है? उसके पास चाबी का रिंग है, उसी से प्रयत्न करके देखा जाय।
किन्तु उसके पहले एक आश्चर्यजनक यथार्थ का अनुभव हुआ उसे। तकिये के नीचे और चार पत्र मिल गये।
सभी एक दिन में ही पढ़ लेगी? भविष्य के लिए क्या एक भी नहीं रखेगी? किन्तु फिर पता नहीं कब समय मिले? सहज ही फिर समय मिलेगा या नहीं, कौन जाने। कल उसको स्कूल 'ज्वाइन' करना पड़ेगा। आज ही। छोड़ देने से नहीं चलेगा। इसके अलावा, और भी तो चिट्ठियां आएंगी सुधा को। शनि-वार को प्रायः ही रात को सात बजे तक कमिटी की मीटिंग रहती है।
श्यामली एक के बाद दूसरा लिफाफा खोलने लगी।
दिन ढल चला। आकाश को वर्षा के काले बादलों ने ढक दिया।

छेंधाघाट के छप्पर को न जाने किस तरफ सरका दिया गया है। स्कूल में बीच-बीच में 'रेनी-डे' होने लगा है। चाय के साथ गरम पकौड़ी का आर्डर देकर, चञ्चल नजरों से बार-बार श्यामली को न जाने क्या कहना चाहकर भी अन्त तक सुधा न कह पाने की स्थिति में आ जाती है।
'आज दिन अच्छा नहीं है री', सुधा ने कहा।
'हूं, छुट्टी मिल गई।'
'धत्, छुट्टी के लिए नहीं कह रही हूं। हृदय को मसोस-मसोसकर बिल्कुल 'प्रोज़ेक' हो गई है तू।' सुधा ने गुनगुनाना शुरू कर दिया:
'शावन आया सखि, कहां रे नगरिया।
द्रिमिक द्रिमिक द्रिमि बोलत गगन रे।'
श्यामली अनचाही नजरों से देखती रही। वह ठीक समझ नहीं पा रही है कि

आजकल कभी-कभी सुधा क्यों उसे बुरी लगती है ? ऐसा लगता है, सुधा बहुत अधिक तरल, बहुत ही कम गम्भीर, इतनी चञ्चल एवं ऐसा छटपट करता मन लेकर क्या किसी को अच्छी लग सकती है ? कलकत्ते से वह निर्बोध व्यक्ति मृदु सुगन्ध भरे फीके नीले रंग के पत्र में मोतियों की तरह हाथ से लिखे आठ-दस पृष्ठों में प्रेम का उच्छ्वास भरकर उसके पास भेजता है, उन पत्रों को पूरी तरह से समझने का मन क्या सुधा ने पाया है ?

'मत्त मोर रोए, रोए रे दादुरिया ।'

न जाने क्या सोचकर सुधा ने गाना वन्द कर दिया, और श्यामली की ओर देखने लगी ।

'यह तुझे क्या हुआ है बोल तो, दिन-पर-दिन और भी अधिक मास्टरनी हुई जा रही है ?'

'मास्टरी करते-करते मास्टरनी होने की ही तो जरूरत है ।'

'बिल्कुल नहीं, अगर ऐसा होता तो कोर्ट से लौटने के बाद वकील को पत्नी के साथ केस लड़ना जरूरी होता । अलग जीवन तो होता ही नहीं उसका ।'

'सभी का नहीं रहता, लेकिन मैंने दोनों को एक साथ मिला लिया है ।'

कहकर ही श्यामली चुप हो गई । सुधा के सामने उसने झूठ कहा है । जिस दिन से चिट्ठी चोरी करके पढ़ना शुरू किया है, उसी दिन से और एक जीवन शुरू हो गया है उसका । श्यामली का मुंह लाल हो आया । झूठी लाज के कारण एक मुहूर्त के लिये स्वयं के सामने सिमट-सी गई ।

न जाने सुधा क्या कहने जा रही थी कि उसके पहले ही उसे एक छाता दिखाई दिया । उसके बाद गेट खुला । लान की घास के भरपूर पानी में रबड़ के जूते छप-छप करता हुआ पीली ड्रेस पहने, पीला बैग लिए, डाकिया दिखाई पड़ा ।

सुधा कूदकर खड़ी हो गई । श्यामली का हृदय कांप उठा । उसके कान में सांय-सांय आवाज होने लगी । यह प्रथम दिन नहीं है । तीन सप्ताह से लगातार प्यून के आने का समय होते ही उसका खून तेज दौड़ने लगता है । उसी तरह उसके हृदय में आंधी-सी चलने लगती है । सुधा की तरह वह भी अच्छी तरह जानती है कि वह मोटा लिफाफा कब आयेगा । मृदु सुरभित नीले पृष्ठों पर मुक्ता के-से हरफों में एक व्याकुल व्यक्ति के मन के उच्छ्वास अङ्कित होंगे ।

इक्नोमिक्स में एम० ए०, बैंक में नौकरी करता है, फिर किस तरह और कहां से वह ऐसी लुभावनी बातें लिखता है ? इतनी सब बातें कैसे आती हैं उसके दिमाग में ?

जलती नजरों से श्यामली देखती रही। सुधा को पत्र मिल गया है। उसने चाय बहुत थोड़ी-सी ही पी थी, किन्तु उसे यों ही छोड़, पत्र लेकर, वह अपने कमरे में चली गई।

और श्यामली अकेली बैठी रही। पत्र सुधा को लिखा गया है, सुधा ही पहले पढ़े, यही उचित है। किन्तु मन की ज्वाला को वह किसी तरह भी शान्त नहीं कर पा रही है। सुधा चञ्चल है, वह कभी भी गम्भीर नहीं हो सकती। शरारत एवं चञ्चलता के कारण उसकी दोनों आंखें हर समय चमकती रहती हैं। क्या इस पत्र को समझने लायक उसका मन एवं हृदय है? दूर कलकत्ते के एकाकी व्यक्ति का प्रलाप क्या इसके मन को छू सकता है? इस तरह के पत्र पढ़ने के बाद कभी भी तो उसने सुधा को ऐसी हालत में नहीं देखा है कि वह खिड़की में बैठकर तारे गिनते रात काटती, या आधी रात के समय चांदनी रात में बाहर लान पर चहलकदमी करती दिखाई देती। कभी भी तो ऐसा नहीं हुआ। रात ग्यारह से सुबह पांच बजे तक वह सुख की नींद सोती रहती। सुबह जब उसकी नींद खुलती तो उसके गाने की गुनगुनाहट सुनाई देती, और फिर आती उसकी उल्लसित पुकार · 'ए, आ-आ, चाय ठंडी हो गई।' सुधा को पत्र पाने का सिर्फ अभ्यास मात्र था, जैसे उसकी स्कूल जाने की आदत या गवर्निंग बाडी की मीटिंग।

शुरू-शुरू में श्यामली स्वयं से ही प्रश्न करती कि सुधा की जैसी मरजी वैसे करे, उसकी व्यक्तिगत बातों से तुम्हें क्या मतलब? तुम्हारे मन में ऐसी दुर्भावना क्यों? किन्तु मन की भावना को किसी तरह भी मिटा पाने में असमर्थ होकर अन्त में उसने इसका प्रयत्न करना ही छोड़ दिया। अब बीच-बीच में उसे सुधा बहुत बुरी लगती, बहुत ही बुरी लगती। उस दूर बैठे व्यक्ति को किसी दिन सामने पाकर वह सोचा उसी से प्रश्न करेगी, 'तुम इस तरह की बातें उसे क्यों लिखते हो, क्या वह तुम्हारी बातें समझ भी सकती है?'

सुधा दौड़ी आई कमरे से।

'श्यामली, श्यामली।'

श्यामली ने नजरें उठाई।

'भयानक खबर है भाई, वह आ रहा है।' हृदय में श्यामली के फिर आंधी-सी उठी, उसके मुंह से कोई आवाज नहीं निकल सकी।

'वह शाम की ट्रेन से आ जायेगा!' खुशी के मारे सुधा का चेहरा चमक रहा था। 'दो दिन की छुट्टी ली है। मुझे भी छुट्टी लेनी पड़ेगी। शनिवार एवं रविवार की मीटिंग भी...'

अन्त की बात कुछ भी श्यामली के कानों में नहीं पहुंची। वह उठ खड़ी

हुई थी।

'तो फिर मैं टीचर्स-मेस में...'

'टीचर्स-मेस में क्यों ?'

'तुम्हारे पति आ रहे हैं। मैं यहां अब...'

'फालतू मत बको। तीन कमरे हैं। तुम्हारे रहने से असुविधा कैसी ? बल्कि···' अपनी आदत के अनुसार सुधा ने श्यामली के गले में अपनी बांहें डालकर कहा, 'तुम्हारे रहने से मेरे पति-देवता को दो-एक तरह का बढ़िया खाना बनाकर खिलाया जायेगा। मुझे तो तुम जानती ही हो, दाल और आलू उबालने को छोड़कर और कुछ भी पकाना नहीं आता।'

पति-देवता शब्द विचित्र तरह से अस्वाभाविक लगा श्यामली के कानों में। और गले से लिपटा सुधा का हाथ सांप के फन की तरह महसूस हो रहा था। हाथ को झटक देना चाहकर भी श्यामली ऐसा कर नहीं सकी।

सुधा स्टेशन गई है। छुट्टी मांगने की जरूरत ही नहीं हुई। भले आदमी ने यानी सेक्रेटरी ने अनुरोध-सहित अपनी गाड़ी भेज दी थी। उन्होंने कहा था कि मिस्टर मित्र स्टेशन से रिक्शे में आयेंगे, उससे क्या हमारी इज्जत रहेगी ?

श्यामली बरामदे में खड़ी थी। सुधा की बात वह नहीं जानती है, किन्तु उसने ये दो दिन जिस तरह बिताये हैं, वही जानती है। आश्चर्य है। अवश्य ही आश्चर्य है। इस तरह के पत्र लिखता है जो व्यक्ति, देखने में वह कैसा होगा ? सुधा के मुंह से उसके बारे में उसने किसी प्रकार का भी विवरण नहीं सुना है, उसी ने सुधा को प्रश्रय नहीं दिया। किन्तु श्यामली के मन की आंखों के सामने एक चेहरा कुछ-कुछ स्पष्ट-सा हो उठा। छरहरा लम्बा चेहरा, माथे पर घुंघराले बाल, रंग बहुत गोरा नहीं, कुछ-कुछ स्निग्ध श्यामल, चरित्र में एक तरह की शांत भीरुता। वह चाहे जितनी ही आठ-दस पेज की चिट्ठी क्यों न लिखे, किन्तु स्वभाव से ही अल्पभाषी है। लजीली मुस्कराहट में ही आधी बातों का जवाब दे देता है।

सुधा के संग उसका साम्य नहीं। बिल्कुल ही नहीं।

दिन बीत चला, लान की घास पर अवसन्न शाम काली होने लगी। श्यामली ने कलाई पर बंधी घड़ी देखी। आश्चर्य है। गाड़ी आये आधा घंटा हो चुका था। फिर भी इतनी देर क्यों कर रही है सुधा ?

उसी समय कार की आवाज सुनाई पड़ी।

एक अर्थहीन भय एवं लज्जा से श्यामली का मन हुआ कि वह दौड़कर कमरे में चली जाय। किन्तु नहीं गई। सांस रोके वहीं खड़ी रही।

गाड़ी आकर गेट के सामने रुकी। सुधा अकेली ही उतरी। उसका चेहरा उदास है।

श्यामली के पास आकर क्लान्ति-भरे गले से बोली, 'वह नहीं आया री। ट्रेन के जाने के बाद लौटी हूं। लौटते समय रास्ते में पीयून ने एक टेलीग्राम दिया है कि, 'कुछ जरूरी कार्यवश लास्ट मोमेन्ट बैंक ने रोक लिया है। हो सकेगा तो नैक्स्ट वीक आऊंगा।'

श्यामली रेलिंग को कसकर पकड़े खड़ी रही। एक अज्ञात पीड़ा से मानो उसकी दोनों आंखें बन्द हुई जा रही हैं। किस मुश्किल से उसने ये दो दिन व्यतीत किये थे? सब झूठ, सब निरर्थक हो गया है। शाम की छाया पर न जाने कहां से एक अन्धकार-पिण्ड झपट पड़ा है। आकारहीन यंत्र की तरह वह श्यामली की तरफ ही बढ़ा चला आ रहा है।

एक निःश्वास छोड़कर सुधा ने कहा, 'क्या होपलेस व्यक्ति है! गुस्से में चिट्ठी का जवाब नहीं दूंगी तो स्वयं यहां दौड़ा चला आएगा। इधर तुमने भी कितनी मेहनत की थी! उसके लिए ही इतनी-इतनी तरह का खाना तैयार किया। मरने दो। उसकी तकदीर में बोर्डिंग का रूखा-सूखा ही लिखा है तो वही चबाये, यह सब हम लोग ही खत्म करेंगे।'

कहते-कहते ही सुधा की नजर श्यामली पर पड़ी। तत्काल वह अपना दुःख भूल गई और उसका स्वाभाविक कौतूहल जाग उठा।

'अरे, अरे, तुमने तो आज गजब का शृङ्गार किया है! इसके पहले तो ऐसा कभी नहीं देखा। तुम भी किसी दिन सेन्ट लगा सकती हो, यह तो मुझे स्वप्न में भी पता नहीं था।' सुधा खिलखिलाकर हंस पड़ी। 'ऐसा लगता है, मानो मेरा नहीं, तुम्हारा ही पति आ रहा हो।'

यह कहते ही सुधा स्तब्ध रह गई। श्यामली का चेहरा सफेद हो गया है। उसकी तरफ देखा भी नहीं जाता है।

'गुस्सा मत होना भाई, मैं तो मजाक कर रही थी। जानती हूं, ऐसे मजाक तुम्हें बिल्कुल भी अच्छे नहीं लगते, किन्तु अचानक मुंह से...मुझे माफ करो, श्यामली बहन।'

किन्तु इतने में फटाक् से श्यामली के कमरे का दरवाजा बन्द हो गया। बन्द दरवाजे से पीठ टिकाये कठोर होकर श्यामली खड़ी है। किसी थके यंत्र की तरह निःश्वास छोड़ रही है मानो प्राणों की समूची शक्ति द्वारा वह बाहर की जमीन से स्वयं को बचाना चाहती हो। एक क्षण में ही वह जैसे नग्न हो गई है। सुधा के सामने, दुनिया के सामने एवं स्वयं के भी सामने। सुधा को मात्र एक बात से

मानो उसका सम्पूर्ण आवरण हट गया है। अपने भीतर के सर्वनाशी खालीपन की तरफ वह अपलक आग-बबूला नजरों से देखती रही।

सुधा को लौटने में रात हो गई। निराश-उदास मन को कुछ सहज करने के लिए वह टीचर्स-मेस में ही कुछ देर के लिए चली गई थी।

घर लौटते ही दाई ने एक पत्र दिया।

श्यामली का पत्र। आवश्यक कार्य से उसे शाम की ट्रेन से ही कलकत्ते जाना पड़ रहा है। उसी के साथ एक महीने की छुट्टी की दरख्वास्त। 'विदाउट पे' होने से भी कुछ हर्ज नहीं।

सारी बात का स्वयं के अनुसार अनुमान लगाने के बाद जब सुधा पश्चाताप में डूबी निश्चल बैठी है, तब मैदान के काले अन्धकार के भीतर से ट्रेन दौड़ती चली जा रही है। उसी अन्धकार के भीतर से एक आकारहीन अंधेरे पिण्ड की तरह न जाने क्या है जो धीरे-धीरे श्यामली की ओर बढ़ता चला आ रहा है। कोयले के चूरे से आच्छन्न अपलक दृष्टि से उसकी ओर ताकते हुए श्यामली को जैसे अब कुछ-कुछ समझ में आ रहा है, कि क्यों उसका एक और शरीर उस दिन शीलावती पार कर रात को उस पथ से होकर आगे बढ़ चला था, जिस पथ का कहीं अन्त नहीं, जो पथ कभी उसे कहीं भी नहीं पहुंचाएगा।

वाणी राय
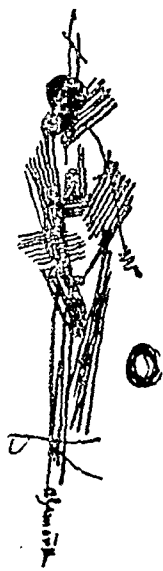
मीडिया

अस्पष्ट विस्मृति के तट से आज भी मीडिया की अशान्त आत्मा वर्तमान को छूना चाहती है। आज भी नारी, प्रेम के लिए, सर्वस्व त्याग करना जानती है। आज भी वह प्रतिशोध लेना भूली नहीं है। सहस्रों युग बीत जाने पर भी, विश्व-नारी में मीडिया चिर-जाग्रत है।

मेरा मन मटमैले पानी की एक तलैया है। उसमें लहर नहीं है, स्रोत नहीं है, जलशोभा का भी अभाव है। बाहर से ढेला फेंकने पर वह केवल एक बार आन्दोलित हो उठता है, फिर वह तरंगहीन और निर्विकार हो जाता है। लेकिन आजकल मैंने भी स्वप्न देखना सीखा है और वह भी उस दिन से जब विश्वविद्यालय की एक छात्रा ने विवाह के घर में नव-वधू के मुह पर नाइट्रिक एसिड डाल दिया था।

मैं भी स्वप्न देखती हू—जाने कितने स्वप्न! अंधेरे पर्दे पर ग्रीक वीर जेसन पचास डांडो की नौका तेजी से चला रहा है। कहां कलकिम् और कहां मंत्रपूत सुवर्ण मेषचर्म? एथेन्स की देवी एथेना जंगल से पथ-निर्देश कर रही है। उसका पता लग जाय तो साम्राज्यविहीन राजपुत्र को फिर राज्य मिल जायेगा। पचास पतवारों की नाव चल रही है। वन की पर्वतीय भूमि तट की रचना करते हुए कहीं दूर सन्देश भेज रही है।

हरक्यूलिस की हंसी से समुद्र की लहरें कांप रही हैं। पास ही बैठे हैं जुड़वां अश्विनीकुमार—कैस्टर और पोलक्स।
नौका बह रही है—दूर, बहुत दूर, जहां मीडिया की जवान पलकों में प्रेम का स्वप्न है। और भी दूर उद्यान में, सन्ध्या की शोभा द्विगुणित करता हुआ पुराण-वर्णित, मंत्रपूत स्वर्ण मेषचर्म रखा है और उसके नीचे सो रहा है उसका रक्षक ड्रेगन। जादू ने उसे निद्रित कर दिया है। यह स्वर्ण मेषचर्म ईटिस के राज्य से अपहृत किया गया था। अपहरणकर्ता जेसन के साथ समुद्र पार कर, ईटिस की पुत्री मीडिया, सभ्य ग्रीस देश में चली आई। हाय रे, प्रेम की सम्मोहन शक्ति!
दृश्य परिवर्तन। फिर स्वप्न देख रही हूं। जाने कहां कुहासे से घिरी हरीतिमा में मीडिया घूम रही है। वह श्वेत हंसग्रीवा मोड़कर अश्रुवर्षण कर रही है और उसके उन आंसुओं में जेसन की राज्य-सम्पदा धीरे-धीरे जलकर राख होती जा रही है। अग्निमय आवरण जेसन की नव-परिणीता को जला रहा है और जला रहा है उसके पिता राजा क्रीयन को। भयपूर्वक देखा, वह ज्वलन्त अग्निशिखा राजपुत्र को घेरकर अतृप्त क्षुधा से जल रही है। सुनहरे बालों पर जल रहा है मुकुट—मीडिया की सौत का उपहार। आतंकित हो मैं देखती रही, उसका मृत्यु-दहन। विवश कानों में आर्तनाद गूंज उठा—'आह मी! आह मी!' क्रीयन का नाश देखा और देखा रक्त-रंजित हाथोंवाली मीडिया को ड्रेगन-चालित रथ में। मृत पुत्र-कन्या के पास ही भूमि-लुंठित जेसन को विलाप करते सुना। मीडिया को त्यागकर राजकुमारी से विवाह करने का प्रतिशोध मीडिया ने उससे लिया है, अपने ही हाथों अपने बेटे-बेटी की हत्या कर। आंधी की गति से उद्दाम रथ जा रहा है और सन्तान-हत्यारी मीडिया अट्टहास कर रही है—वह उन्मत्त हास्य! लगता है, जैसे आज भी आकाश में हवा में रह-रहकर उसकी अनुगूंज स्पष्ट हो उठती है। विस्मृति के गर्भ से कभी-कभी वह हंसी वर्तमान में चली आती है और कुछ क्षणों के लिये नारी को पागल बना देती है। तब वह भूल जाती है सभ्य जगत का वातावरण, लज्जा-जड़ित कायरता और वेदना। प्रेम की वेदना के ऊपर प्रतिशोध की वासना जागती रहती है। नस-नस में अग्निशिखा नाचने लगती है। उस पल के आक्रोश में वर्तमान और भविष्य का लोप हो जाता है। पाप और पुण्य सब रसातल में चले जाते हैं और सारे विश्व में केवल आदिम प्रतिशोध प्रवृत्ति ही दीखती है। जो प्रेम घर छुड़वा देता है, उसी प्रेम की प्रतिक्रिया आज भी प्रबल-तर है। मीडिया आज भी जीवित है।

विश्वविद्यालय की छात्राओं द्वारा परिचालित एक छोटे छात्रावास में, शाम को ६

बजे बत्ती जलाकर, पढ़ने बैठी हो थी। भगवान ने जब बुद्धि कम दी है, तो आवश्यकतानुसार मैं रात-रात नोटबुक, कापी और किताबो में काट देती हूं। अंग्रेजी मे एम० ए० पढ रही थी। चाहे उसे विदेशी साहित्य की अनुरागिनी होने के कारण या कह लीजिये उपार्जन मे सुविधा होगी इसीलिये। मेरे पिता के वश में भात पुरखो से क्लर्की चली आ रही थी। मेरे पिता अभी भी आसाम मे यही कर रहे थे, इसलिये शिक्षिका से ऊंची कल्पना नही थी। एकान्त कोने में बैठ अध्ययन-तपस्या के सिवाय मेरे बाईस वर्ष के जीवन में करने को और कुछ न था। किन्तु उस दिन मटमैले गड्ढे में एक पत्थर गिरा। दक्षिण का बन्द दरवाजा खोल कर मेरे दो सीटवाले कमरे मे मेट्रन के साथ वह आई।

उस दिन कुछ भी असाधारण नही लगा। हा, दो विशाल नयन जरा और तरह के थे। उन आंखो में विश्व की सारी उज्ज्वलता समाई-सी लगती थी। नागिन के काले चमकीले नयनो से भी ज्यादा कालिमा मानो उनमे घनी हो गई थी। लगता था, दुर्लभ काले हीरे, जाने किसने, साधारण लालित्यपूर्ण सुन्दर मुख पर जड दिये हो। मानो दो काली नागिनें आंखो द्वारा ही किसी को मृत्यु-दशन दे सकती थी।

बाबकट तेलविहीन सुनहरे बाल नचाकर, वह मेरी तरफ देखकर जरा हंसी। और उस हंसी के साथ ही मेरे एकाकी, जड हृदय में जैसे वह एकबारगी आ बैठी।

मेट्रन चारुशीला हाजरा ने परिचय करा दिया, 'शान्ति, यह तुम्हारी रूम-मेट है। तुम लोगो के साथ ही इतिहास में भर्ती हुई है। इसे सब कुछ बता देना।' मेट्रन के जाने के बाद साहस इकट्ठाकर पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है?'

हाथ के अटैची केस को खोलकर हरे रंग की चमड़े की एक जोडी चप्पलें निकालकर वह चौकी पर बैठते-बैठते बोली, 'कंका।'

बिजली की तरह एक नाम स्मृति में कौंध उठा। पूछा, 'पदवी क्या है?'

नीचे मुडकर जूते के फीते खोलते-खोलते अस्पष्ट स्वर में कंका ने कहा, 'मंडल।'

'इतिहास के आनर्स में तुम्ही फर्स्ट आई हो न?'

मुह उठाकर मेरी तरफ देखते हुए कंका हंस उठी, 'हां।'

वह हंसी आनन्द या गर्व की हंसी नही थी, केवल कौतूहल की थी।

प्रायः दो महीने-बाद् एक दिन दरभंगा बिल्डिंग मे कंका से मिलने गई। एक कमरे मे
 दो-एक घंटा टाइम मिलता है, उसी के पास जाने की

 कामन-रूम में घुसते ही देखा, लाल जूते पहने पैर हिलाते

हुए कङ्का टेविल पर बैठी चारों तरफ इकट्ठी लड़कियों से बातें कर रही है। यह मैंने हमेशा देखा है कि कहीं पास टेविल मिल जाय तो वह कुर्सी पर कभी नहीं बैठती और यह भी अक्सर होता, कि उसको केन्द्र बनाकर एक भीड़-सी हो उठती। मुझे देखते ही मिमि दत्त चिल्ला उठी, 'स्वागतम्, यह लीजिये, शान्ति मित्र अपनी रूम-मेट की खोज में यहां हाजिर हो गई हैं। नहीं तो, भला आशुतोष बिल्डिंग की छात्राओं की पग-धूलि कभी दरभङ्गा बिल्डिंग में पड़ती है !'

कोने में पड़ी ईजी चेयर पर लेटी पीली धारी की साड़ीवाली लड़की ने टिप्पणी की, 'इसकी मेटिंग इन्सटिंक्ट प्रवल लगती है।'

हंसी-मजाक से मुझे झिझकती देख कंका ने सादर पुकारा, 'शान्ति, इधर आओ। अभी तुम्हारी छुट्टी है ? अच्छा किया, मैं भी खाली हूं।'

हमारे होस्टल की वरुणा ने पूछा, 'तू तो अंग्रेजी में भी इतनी अच्छी है कंका, तूने भी अंग्रेजी क्यों नहीं ली ? तव तो शान्ति को एक पल के लिये भी सखी-विरह न सहना पड़ता।'

कंका ने मुंह बिचकाकर उत्तर दिया, 'सिलेवस खोलकर देखा, अंग्रेजी की सभी किताबें बहुत बार पढ़ी हुई रखी गई हैं और इतनी बार पढ़ी हुई चीज फिर से पढ़ने की इच्छा नहीं हुई।'

कई लड़कियां हंसी छिपाने की बेकार कोशिश कर रही थीं, पर मैं जानती हूं, कंका सच ही कह रही थी। कंका को शान्त निर्जीव बंगाली लड़कियां सह ही नहीं सकती थीं। उसका पहनावा-ओढ़ावा, मुक्त व्यवहार, कुछ भी उन्हें अच्छा नहीं लगता था। फिर भी उससे सम्बन्ध बनाये रखने में लाभ था। बी० ए० में वह प्रथम आई थी। हो सकता है, एम० ए० में भी आए। उससे नोट लेना और उसके पढ़ने का तरीका जानना बहुत ही जरूरी था, और फिर कंका मण्डल का उदार आतिथ्य प्रसिद्ध था। इसीलिये ये सब सुविधावादिनी पीठ पीछे उसकी निन्दा करते हुए भी, उसके साथ मित्रता बनाये रखतीं। हीरे की चमक सबको आकर्षित करती ही है।

कंका अन्यमनस्क हो सीटी बजाते हुए गुनगुनाने लगी। लड़कियां कुछ देर एक-दूसरे का मुंह देखती रहीं। फिर पीली धारीवाली साड़ी पहनी हुई लड़की विरक्त स्वर में बोल उठी, 'सीटी क्यों बजा रही हो ? जानती नहीं, यह को-एजूकेशन क़ालेज है ?' उसकी कड़ुवाहट को ढंकने के लिये मिमि दत्त सहज भाव से पूछ बैठी, 'सीटी बजाने पर तुम्हारी मां तुम्हें टोकती नहीं ?'

उद्धत-स्वर में उत्तर मिला, 'मां नहीं है, सो ह्वाट ?' कुटिल दृष्टि से कंका ने मिमि दत्त की तरफ देखा। मिमि दत्त अप्रतिभ स्वर में सान्त्वना देने की कोशिश

करती हुई बोली, 'हाय, मुझे मालूम नहीं था, भाई।'
'जानने की जरूरत भी नहीं है। शान्ति, चलो, घर चलें।' चीते की तरह उछलकर कका जमीन पर खड़ी हो गई। वरुणा ने आश्चर्य से कहा, 'यह क्या ? चार बजे ए० के० आर० की क्लास है।'
'आज पढ़ने की इच्छा नहीं कर रही, मैं चली।' घर वापस आ गये। कंका का सामान हमारे छोटे कमरे में किसी तरह भी समा नहीं पाता था। काफी बक-झक के बाद मेट्रन बगल के बरामदे को ढकवाकर रखने को बाध्य हुई थी।
टेबिल की दराज से चाकलेट का बाक्स निकालकर एक अपने मुंह में रख, उसने बाक्स मेरी तरफ सरका दिया। हम दोनों की चौकियों के बीच उसने एक बड़ा शीशा लगवाया था। उसमें हम दोनो का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। मैंने गौर से उसे देखा, प्राण-मदिरा-उच्छ्वसितपूर्ण यौवन, सुगठित शरीर। सौन्दर्य उग्र, लेकिन भरे होठों और छोटे-से चिबुक में अनन्त कोमलता। पहले ख्याल नहीं किया था। उस दिन देखा, उसकी लम्बी गर्दन रजनीगधा की डंठल के समान सीधी थी। केश-गुच्छ अंगूर जैसी शोभा से झूल रहे थे। अति आधुनिक पोशाक और भाव-भंगिमा उसकी लीलामय सरलता को नष्ट नहीं कर सके थे।
स्वयं को देखा, निष्प्रभ भीरु दृष्टि, स्वास्थ्यहीन क्षीण देह, दागदार भावशून्य मुख-मंडल, विचित्रता-विहीन जीवन, आनन्दहीन बन्धन की कठोरता से दबा यौवन। ओह ! उस लीला-प्रतिमा की उपयुक्त संगिनी भला मैं। यह असमानता देखकर हृदय धिक्कार उठा स्वयं को। लेकिन इसीलिये तो मैं कका को इतना प्यार दे पाई हूं। मेरे जीवन का जो स्वप्न था और जो मुझे मिला नहीं, कका उसी का साकार रूप बनकर आई है। जो मैं बन न सकी, कका वही है। इसीलिये कका को मैं इतना प्यार कर पाई हूं। मुग्ध दृष्टि से देखते-देखते ही बोली, 'अच्छा कका, तू इतने सुन्दर बाल कटवा क्यों डालती है ?'
बड़ी तुच्छता से कका बोली, 'बाल रखकर क्या होगा, तेल डालो, काढो, उन्हें बांधो और ऊपर से पीठ के ऊपर पड़े रहकर सारे बदन में सिहरन पैदा करते रहते हैं। ऐसे ही अच्छा है।' कका सिर हिलाकर जोर से हो-हो करके हंस पड़ी। चारों तरफ की दीवालों में टकराकर वह हंसी लौट आयी। शीशे की तरफ देखकर चिन्तित स्वर में कका ने कहा, 'बाल क्या मैंने आज कटवाये है ? सिस्टर वेथेल खुद साथ गई थी। तब मैंने मात्र मैट्रिक की परीक्षा दी थी।'
'सिस्टर वेथेल कौन ?'
'मैं जिस मिशनरी स्कूल में पढ़ती थी, उसी की मालकिन।'
'सचमुच बाहर के स्कूल-कालेजों से इतना अच्छा परीक्षाफल पाना कठिन ही है।

तूने बी० ए० भी तो वहीं से पास किया है ?'
'हां', कंका चुप हो गई। जाने क्यों, घर की बात वह कभी भी करना नहीं चाहती थी। एक कमरे में रहते हुए भी उसके परिवार के बारे में मेरा ज्ञान बड़ा ही सीमित था।
मां-बाप नहीं हैं, बुआ और फूफा उसके अभिभावक हैं। उसके पिता उसके लिये रुपया और जमींदारी छोड़ गये हैं। महीने-के-महीने बुआ वही रुपया भिजवा देती हैं। उसके भाई-बहन कोई नहीं है। पवना जिले के एक छोटे गांव में उसका पैतृक स्थान है। इतनी बातें भी बड़ी कोशिश के बाद जान पाई थी। उसके बारे में बहुत-कुछ जानने की इच्छा होती, पर वह अपने स्वभाव के विपरीत इस विषय में मौन ही रहती। इसीलिये मैं आज भी चुप रह गई।
बन्द खिड़की को जोर से धक्का मारकर खोलते हुए कंका बोली, 'कितना खराब कमरा है! इतने छोटे-से कमरे में दो वर्ष से कैसे रहती है तू ?'
अपमान अनुभव करते हुए मैं बोली, 'इससे अच्छे होस्टल की कलकत्ते में कमी नहीं है। नापसन्द है, तो वहां जा सकती हो।'
अजीब लड़की है। जरा भी बिना बुरा माने हंसती हुई बोली, 'बुआ जो कंजूस है। जो रुपया भेजती हैं, उसमें मंहगे होस्टल में रहूंगी तो और खर्च कहां से करूंगी ?'
'यह क्या, कंका ? रुपये तो तुम्हारे काफी आते हैं।'
कंका मुंह बिगाड़ते हुए बोली, 'काफी, खाक काफी आते हैं! अरे, उसमें मेरा क्या होगा ? कलकत्ता आनन्द की जगह है। रास्ते में निकलो तो, बस रुपया खर्च करने की इच्छा हो उठती है। बताऊं तुम्हें ? आज तक जो स्कालरशिप मिली है, मैंने पूरी-की-पूरी कपड़े खरीदने में ही खर्च कर दी है। बुआ नाराज होती हैं, तो कहती हैं, बाप पर ही गई है लड़की।' कहते-कहते कंका गम्भीर होकर एकदम चुप हो गई।
असह्य नीरवता तोड़ते हुए मैंने कहा, 'उस गांव में पैदा होकर भी तुम इतना पढ़ पाई हो, यह भी आश्चर्य की ही बात है। तुम्हें देखकर तो लगता नहीं कि दुनिया के किसी भी गांव से तुम्हारा सम्बन्ध हो सकता है।'
अनिच्छा से कंका बोली, 'शुरू से ही मैं मिशनरी मेम-साहबों के घर बड़ी हुई हूं। परीक्षाफल अच्छा करती थी और उन लोगों ने बड़ी कोशिश की, तभी इतना पढ़ पाई हूं।'
'लगता है तुम्हारे माता-पिता, जब तुम बहुत छोटी थी, तभी मर गये थे ?'
तीव्र दृष्टि से मेरी तरफ देखते हुए कंका बोली, 'हां, तुम बहुत फालतू बातें करती

हो।' अनजाने ही उने आघात पहुंचा दिया। मुझे मालूम था, आघात उसे भ्रियमाण नहीं बनाता, वरन् तीखा बना देता है। बात का सिलसिला बदलने के लिये ही कहा, 'अच्छा, काम की ही बात करें। तू ब्याह-वाह तो करेगी न ?'
कंका हंस पड़ी, 'शायद करूंगी ही। लेकिन विवाह करने लायक पुरुष तो एक भी दीखा नहीं।'
'किस तरह का चाहिये तुम्हें ?'
कंका के बांके नयनों में स्वप्न तैर उठे, 'कैसा चाहिये, यह तो नहीं मालूम, पर जो चाहिये वह बिना देखे शायद समझ भी पाऊंगी या नहीं, यह भी मालूम नहीं।'
बड़ी देर तक वह न जाने क्या सोचने की कोशिश करती रही। अन्त में विफल प्रयास होकर मुझसे पूछ बैठी, 'तुम विवाह नहीं करोगी ?'
यह बात सोचने का भी मेरे पास समय नहीं है। मेरे बाद और चार बहनें हैं। किसी तरह अपनी व्यवस्था स्वयं कर पिता को मुक्ति देनी पड़ेगी। उन बहनों की शिक्षा का कुछ भार उठाना पड़ेगा। मेरी नियति होगी किसी बालिका विद्यालय में पहरों चिल्लाना और रात को अकेले सोना। यह सब सोच गयी मैं। ऊपर से कहा, 'मुझ जैसी कुरूप से कौन विवाह करेगा, भाई ?'
कंका विस्मय-सहित कुछ कहते-कहते मेरे चेहरे की तरफ देखकर चुप रह गई, फिर अपने बिस्तर से उठकर चाकलेट-सने हाथों में मुझे जकड़कर बोल उठी, 'नेवर माइंड, लड़कों के बिना भी हमारे दिन अच्छे कट जायेंगे।'
शाम के बाद अपनी टेबिल पर बैठी ग्रीक नाट्यकार यूरीपिडिस के 'मीडिया' नाटक का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ रही थी। बड़ी कोशिशों के बावजूद मुझे न ले जा सकने पर, कंका और लड़कियों के साथ तीन बजे के शो में 'हैमलेट' देखने गई हुई थी। शेक्सपीयर का 'हैमलेट' मेरी पाठ्य-तालिका में नहीं था और कल क्लासिक्स का ट्यूटोरियल था, इसीलिये नहीं गई। कंका को तो लिखने-पढ़ने की जरूरत नहीं थी। किताब पर एक बार दृष्टि डाल लेने से ही उसका काम चल जाता है। लेकिन मुझे तो पढ़ना पड़ता है। गुनगुनाते हुए रटने की तरह पढ़ रही थी :
'हर्ड मी नाट आल्सो भी सेड, विथ ए लाउड वायस इनवोकिंग थेमिस, हू फुलफिल्स दा वाउ, एण्ड जोव, टु हूम दी आइदस आफ मेन लुक अप एज गार्जियन आफ देयर ओथ्स। मीडियाज रेज कैन बाइ नो ट्रीवियल वेन्जेन्स बी एपीज्ड।'
बिजली की तरह वह कमरे में घुसी। सिर से पैर तक काले कपड़े, काले कांच के ही गहने, कन्धे पर काले बाल सांपों की तरह लहरा रहे थे और उसकी आंखें ? उत्तेजित, मत्त ! मैंने पूछा, 'कैसा लगा सिनेमा ?'
'बहुत अच्छा।' कुर्सी पर बैठते हुए अपने काले तीन इञ्च एड़ीवाले जूते खोलते-

सोचते कंका कहने लगी, 'फ्रेडरिक मार्च को हेमलेट बनाया है, बेसिल राथबन को चाचा, एलिसा लैंडी हेमलेट की मां बनी है, और नारमा शीयरर आफीलिया। सभी ने अच्छी ऐक्टिंग की है। खासकर हेमलेट ने। अन्तिम दृश्य में जब वह चाचा को छुरी मारता है,'...कहते-कहते कंका अचानक बरामदे में चली गई। अवाक् होकर कुछ देर तक उसके लौटने का इन्तजार कर, मैंने फिर किताब पढ़ना शुरू किया।

'एफ्रोस्ट हर नोट, बीवेयर आफ दोज फेरोशस मैनर्स एन्ड दी रेज, व्हिच बोयल्स इन दैट अनगवर्नेबुल स्पिरिट।'

'दिन-रात क्या पढ़ती रहती हो ?' कमरे में घुसते ही मेरे हाथ से किताब खींचते हुये कंका बोली, 'क्या किताब है ? मीडिया ! उस आधी पागल औरत की कहानी ? भयानक औरत थी, पति को सबक सिखाने के लिये अपने ही हाथों अपने बेटे-बेटियों की हत्या कर दी।' किताब कंका ने जमीन पर फेंक दी, 'सब जगह वही एक बात है। हत्या, हिंसा, खून ! हेमलेट देखा, उसमें भी वही। यहां तुम खोलकर बैठी हो मीडिया, इसमें भी वही। सब······' क्रुद्ध चाल से पैर पटकते हुए कंका कमरे में घूमने लगी।

किताब उठाते हुए पूछा, 'कंका, आज तुझे क्या हुआ है ?'

'मालूम नहीं। यह सब देखने पर मेरा मन कैसा तो हो जाता है। न जाने कैसी एक बेचैनी-सी होने लगती है मुझे।' कंका बिछौने पर लेट गई। उस दिन कंका खाना भी नहीं खा पाई। जल्दी ही सोने की तैयारी करली। काफी रात बीतने पर, पढ़ाई खत्म कर मोमबत्ती बुझाने से पहले, मैंने एक बार कंका की तरफ देखा। वह गहरी नींद में थी। आंखें बन्द होने के कारण उसका चेहरा मुझे और भी सुन्दर लगा। उन अजीब अस्वाभाविक आंखों से कभी-कभी मुझे भी डर लग उठता।

कितनी देर प्यार से मैं उसे निहारती रही ; मालूम नहीं कब, अचानक कंका के मुंह से नींद-भरे स्वर में 'तारा, तारा' शब्द सुनकर मुझे होश आया।

दूसरे दिन सुबह मजाक करने का प्रलोभन संभाल न सकी और पूछ बैठी, 'तू कितनी ही मेम साहब बन ले, कङ्का, है तो हिन्दू लड़की ही ; रात को नींद में देवी-देवता के ही नाम मुंह से निकलते हैं !'

तीक्ष्ण खोजती निगाहों से मेरी ओर देखती हुई कङ्का बोली, 'कौन-सा नाम ?'

'कह रही थी—तारा, तारा !'

आवेगपूर्वक मुझे झकझोरती हुई कङ्का उत्तेजित —— में बोली, 'तारा ? तारा ? और क्या कह रही थी ?'

मुझे बुरा लगा। 'इतनी अधीर होने की क्या बात है? देवी-देवता के नाम लेने में ऐसी शर्म क्यों? और क्या कहती? नींद में तेंतीस करोड़ देवताओं के नाम तो लिये नहीं जा सकते।'
कङ्का ने गहरी सांस लेते हुए अन्यमनस्कता से उत्तर दिया, 'हो सकता है।'

उस दिन लड़कों के टेनिस टूर्नामेंट के कारण एक बजे ही छुट्टी हो गई। हमारी वरुणा के दूर के किसी रिश्ते की मौसी का लड़का जयन्त कप्तान था। वरुणा के अनुरोध से हम कई जने खेल देखने गये थे।
जयन्त अंग्रेजी के एम० ए० फाइनल का छात्र था। पिछले साल परीक्षा में फेल हो जाने के कारण फिर पढ़ रहा था। निर्दोष सुन्दरता और खेल-कूद में निपुणता के सिवाय और कोई खास बात उसमें नहीं थी। लेकिन सुगठित शरीर पर स्पोर्टस के कपड़े पहने जब वह खेल के मैदान में उतरता, तो उसकी तरफ देखकर अनेक नारियों के हृदय विस्मय और आनन्द से हिल्लोलित हो उठते।
नेट के पास सादी पोशाक पहने खड़ा जयन्त अपने हाथ के रैकेट की ओर देख रहा था। नीले रङ्ग का खिलाड़ियों का कोट पहने था। नवम्बर की धूप में उसका रङ्ग गुलाबी हो रहा था। घुघराले नीग्रो-जैसे उसके केश धूप के कारण गोल्डेन फ्लीज जैसे लग रहे थे। अचानक न जाने क्यों, जेसन के सुनहरे मेषचर्म की बात याद हो आई। बड़ी व्यग्रता से खेल देखते-देखते कङ्का ने कहा, 'देख लेना, वह सुन्दर-से व्यक्ति जरूर जीतेंगे।'
मैंने खेल में ध्यान देते हुए कहा, 'उसके सामने रङ्गीन राय है, जीतना मुश्किल ही है।'
हाथ के रूमाल को जोर से ऐंठते-ऐंठते कंका निश्चित स्वर में बोली, 'वही जीतेंगे। उनको जीतना ही पड़ेगा।' उसकी आंखों की तरफ देखकर मैं सिहर उठी। लगा, सांपों ने फन उठा लिये हैं।
खेल खत्म होते-होते शाम हो गई। अपने छोटे कमरे में पहुंचकर गले से मफलर उतारते हुए मैंने कहा, 'विजयी वीर कैसा लगा, कंका देवी? शायद वरुणा ने परिचय करा दिया था।'
'कैसा लगा से मतलब? कोई रसगुल्ला-सन्देश है, जो चखकर बताऊंगी?' कंका ने बिछौने पर लेटते हुए कहा।
'तुम जिस तरह जयन्त चौधरी की तरफ देख रही थी, उससे तो लग रहा था, संदेश-रसगुल्ले से भी लोभनीय जो चीज होती होगी, वह वैसा ही है।' कंका कुछ विपण्ण-सी हंसी।

सर्दियों में गले के दर्द की शिकायत प्रायः ही रहती थी। अतः टान्सिल-सेवा का आयोजन करने लगी। कंका निरन्तर दूर सान्ध्याकाश की तरफ देखती रही। लौटते समय रास्ते में उसकी अन्यमनस्कता पर ध्यान गया था। सारे दिन की उत्तेजना और उत्साह जाने कहां अन्तर्हित हो गया। उग्र सपीले नयन जैसे मंत्र-मुग्ध हो सो गये थे, और अब न जाने कितने युगों के स्वप्न देखकर जागे हों।
गरम पानी में कुल्ला करने की दवा डालकर कंका से बोली, 'किन्तु धन्य है तुम्हारी इच्छा शक्ति! अन्त में, तुमने जयन्त को जिताकर ही छोड़ा। उनके पाइन्ट पाते ही, तुम जिस तरह 'चीयर' कर रही थी, उस उत्साह से तो उनके जीतने की बात निश्चित ही थी। देख रही थी न? बीच-बीच में वे तुम्हारी तरफ देख रहे थे।'
कंका उठ बैठी, 'मैं जानती थी, वे जीतेंगे ही। अच्छा, तुम्हें मालुम है, वरुणा के वे किस रिश्ते के भाई हैं?'
पानी की गर्मी को देखते-देखते मैंने उत्तर दिया, 'मालुम नहीं। वरुणा तो कजिन कहती है। सुना है, दूर के रिश्ते के मौसेरे भाई हैं। पिता ने फिर विवाह कर लिया है। इसीलिये उसकी मां अपने भाइयों के पास रहती है। भाई काफी बड़े आदमी हैं, फिर भी बोझ तो है ही। और फिर जयन्त ने पिछली बार फेल होकर तो और भी मिट्टी कर दी। मामाओं को और एक साल खर्च चलाना पड़ेगा। बाप तो खबर ही नहीं लेता।' कहकर गर्म पानी का बर्तन लेकर मैं बाथरूम में चली गई। लौटकर देखा, कंका ठीक उसी प्रकार बैठी है। मेरे कमरे में घुसते ही उसने प्रश्न किया, 'अच्छा, तब उनकी जात क्या है?'
मैं समझ गई। इतनी देर से जयन्त चौधरी की सबल देह और सुन्दर चेहरा ही कंका के मन में घूम रहा था। हंसकर बोली, 'क्यों? ब्राह्मण—बारेन्द्र ब्राह्मण। वरुणा बागची है न!'
कंका की आंखों में भय की एक छाया उतर आई। अर्द्ध-स्फुट स्वर में उसने अपने-आपसे ही कहा, 'यानी वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं!'

ज्यादा दिन नहीं बीते। दूसरे ही दिन जयन्त विजिटर्स रूम में आगन्तुक होकर आ गया। गोधूलि के अन्धेरे तक बात-चीत कर कंका ऊपर लौट आई। मेरे सिर में दर्द था। इसीलिये बत्ती जलाकर पढ़ने नहीं बैठी थी। कंका निःशब्द अपने बिछौने पर बैठ गई। उसने ग्रे सिल्क की साड़ी पहन रखी थी। पूरी बांहों का काली क्रेप का ब्लाउज। अचानक धीमी रोशनी में वह न जाने क्यों बड़ी असहाय-सी लगने लगी, मानो सन्ध्या का अन्धकार षड़यन्त्र करके उसकी

धुंधली मूर्ति की गहन कालिमा में मिला देगा। लेकिन उस हल्के अंधेरे को पराजित कर उसके नयन चमक रहे थे। वे जैसे और भी काले हैं, और भी गहरे है। न जाने कहां से क्या उसे निगलने आया है, और न जाने किसके साथ उसका अविराम युद्ध चल रहा है। उन सारी शक्तियों के विरुद्ध वह अकेली हैं। वह असहाय है।

मैंने पूछा, 'जयन्त चौधरी मिलने आये थे ?'

कंका ने उत्तर दिया, 'वे लोग टेनिस ग्राउन्ड में लड़कियों के खेलने का इन्तजाम करना चाहते है। मैं पहले टेनिस खेला करती थी। वरुणा से यह सुनकर मुझसे भार लेने के लिये कह रहे थे। मिस्टर चौधरी कल सेक्रेटरी से यह प्रस्ताव करेंगे। वे जो कहेंगे, वह मुझे कल बता देंगे।' कंका बात खत्मकर टेबिल के पास बैठकर बत्ती जलाकर धीमे स्वर में गुनगुनाने लगी, 'आई एम नाट नोवडीज डार्लिंग।'

मैं मजाक कर उठी, 'अभी से कौन किसका डार्लिंग है, यह तो बताना सचमुच कठिन है !'

मामूली-सा मजाक था। किन्तु बड़ी तेजी से मेरी तरफ देखकर आंखों से आग बरसाती हुई कंका बोली, 'तुम फालतू बातें करती हो, शान्ति।' साथ-ही-साथ उसके हाथ के धक्के से उसी का लाया हुआ गुलाब का गुच्छा फूलदानी से गिरकर जमीन पर बिखर गया।

मैं सकुचित हो उठी।

छात्राओं द्वारा परिचालित छात्रावास। वे स्वयं ही व्यवस्था करती हैं और स्वयं ही मालकिन हैं। चारुशीला हाजरा मेट्रन हैं, किन्तु वे भी कुल दो साल पहले पास करके शिक्षिका बनी हैं।

कड़ाई या डिसिप्लीन का काफी अभाव है, इसीलिये कंका और जयन्त की घनिष्ठता पर आपत्ति करनेवाला कोई नहीं था। जयन्त की साप्ताहिक मुलाकातें दैनिक बनने का निर्विरोध मौका पा गई।

एक दिन देखा, कंका जयन्त के साथ सिनेमा जाने के लिये तैयार हो रही थी। शीशे के सामने खड़े होकर वह कंघे और सुगन्धित लोशन की सहायता से अपने विद्रोही केश-गुच्छों को वश में करने की बेकार कोशिश कर रही थी। मैंने कहा, 'देखो कंका, तुम्हें सावधान होना चाहिये। यह मार्च का महीना है। जुलाई में जयन्त की परीक्षा है। कहीं इस बार भी फेल न हो जाय वह।'

कंका निश्चिन्त-सी हंसी, 'अरे ! नहीं, नहीं । इसीलिये तो मैं जयन्त को पढ़ने में मदद कर रही हूं । उसकी किताबें सब पढ़ डालती हूं, फिर उसके साथ उनकी आलोचना कर सब समझा देती हूं ।'

मैं आश्चर्य से बोल उठी, 'हे भगवान ! तभी आजकल यूनिवर्सिटी से लौटकर तुम इतनी किताबें पढ़ने में लगी रहती हो ? मैं सोचती थी, तुम्हें बुद्धि आ गई है, अपना काम करती हो । वह न करके यह बेगार भुगत रही हो । बेमतलब अंग्रेजी की किताबें पढ़कर समय नष्ट कर रही हो । अपने भविष्य की बात भी तो सोचो ।'

कंका ने अवहेलनापूर्वक उत्तर दिया, 'मेरी तो अभी एक साल की देर है । जयन्त की परीक्षा तो आ गई । उसे अगर कोई आलोचना करके न समझा दे, तो याद ही नहीं रहता । अकेले पढ़ने में उसका मन नहीं लगता । उसकी बुद्धि तो खेल में ही काम करती है ।'

मैंने हंसते हुए कहा, 'इसके लिये तो किसी भी पक्ष को कोई अफसोस नहीं है ।'

कंका एक बार मेरी तरफ देखकर हंसी, सुख की हंसी । समझ गई, चिर-दिन से नारी पुरुष में जो रूप खोजती रही है, और जिस रूप को आदिम काल से प्यार करती आयी है, कंका को जयन्त में वही रूप दिखा है । वह रूप है—वीर का रूप ।

गहरे हरे रंग की पोशाक पर, बालों में और कान के पीछे कंका ने बड़ी लापरवाही के साथ स्प्रे द्वारा फ्रेंच सेंट छिड़क लिया । होठों में लाल लिपस्टिक लगाकर आइब्रो पेंसिल से अपनी आंखों को और भी भयावह बना लिया । हाथ में चांदी के तारों का पर्स लेकर मेरी तरफ मुड़कर उसने मुझसे 'चियरो' कहकर विदा मांगी । कंका की अप्सरा-जैसी मूर्ति को देखकर मैं सोचने लगी कि शुरू दिनों-वाली चिढ़ या क्रोध का अब उसमें लेश भी नहीं रहा । पुरानी अन्यमनस्कता भी लुप्त हो गई है । वह आज सौन्दर्य-पुलकित, उद्वेलित नदी की तरह यौवन ज्वार से किनारे भिगोती बही जा रही है । किसी दुविधा या संशय का चिह्न मात्र भी नहीं है । नियति को अतिक्रम न कर सके तो, आत्मसमर्पण के सिवाय उपाय ही क्या है ? लेकिन मंडल और चौधरी ? मालूम नहीं, इस प्रेम की परिणति सुख-मय होगी या नहीं ।

दिन बीतते गये । कंका-जयन्त की अनुराग-कहानी बढ़ते-बढ़ते छात्र-छात्राओं की वार्ता का विषय बन गई । एकाग्र होकर कंका का नया रूप देखती रही । अदम्य उत्साह से जयन्त को परीक्षा-वैतरणी पार करवाने में वह लगी हुई थी । एम० ए० पास कर जयन्त मामा का घर छोड़कर अर्थोपार्जन में लगेगा । गृहहीन

वह घर बसायेगा, और लगता है, गृहलक्ष्मी बनेगी कंका। उद्दीप्त अग्निशिखा घर की दीवाल पर प्रदीप की स्निग्धता से जलेगी। पर जो अनजानी ज्वाला उसके नयनों में है, और जिस रहस्यमय जलन से वह हमेशा अस्थिर रहती है, क्या उसका निर्वाण पुरुष के प्रेम से हो जायेगा ?

मेरी वार्षिक परीक्षा पास आ गई थी। बाध्य होकर चार साल पहले पास हुए एक बेकार युवक को शिक्षक नियुक्त करना पड़ा। जयन्त और कंका के नीचे तल्ले वाले विजिटर्स रूम के सामने एक विजिटर्स रूम मैंने दखल कर लिया। मुझे अच्छी तरह पास होना ही पड़ेगा।
प्रेमालाप का अंश बीच-बीच में पर्दे के पार से कानों तक आ पहुंचता। कभी स्वर धीमा होता, कभी ऊंचा।
उस दिन ऊपर से वर्क की 'फ्रेंच रिवोल्यूशन' किताब लाने जाते वक्त, कंका के कमरे के सामने कौतूहल-वश खड़ी हो गई। तिरस्कार-भरे स्वर में जयन्त को बोलते सुना, 'देखो तो, क्या कर डाला ? जानवरों की तरह दांतों से क्यों काटती हो ?'
उत्तेजित, पर दबे स्वर में, कंका बोली, 'तुमने मना करने पर भी मेरा हाथ क्यों पकड़ा ?'
व्यंग से भरा उत्तर सुनाई पड़ा, 'जैसे तुम पकड़ में आना ही नहीं चाहती हो ! उस दिन शिवपुर बगीचे की बात याद है ?'
'चुप रहो। उस दिन मेरी इच्छा हो गई थी। आज इच्छा नहीं है। यू शुड नेवर फोर्स मी टु एनीथिंग।'
जयन्त का उत्तर सुनाई नहीं पड़ा। और ज्यादा खड़ा रहना निरापद नहीं लगा। अतः ऊपर चली आई। मटमैले पानी में भी हलचल हो उठी थी। अपनी ही भीरु दृष्टि के सामने मानव-मन की प्रागैतिहासिक प्रवृत्ति का एक सम्यक् विकास देखा। मन की चंचलता दमन करते हुए, डेस्क खोलकर किताब निकाल रही थी। उसने आकर प्रश्न किया, 'शान्ति, अपनी टिंचर आइडिन की शीशी दे तो, और थोड़ी-सी रुई भी।' निरुत्तर, शीशी निकालकर देते वक्त, हठात् उसके स्वच्छ सफेद वस्त्रांचल पर दृष्टि पड़ी। थोड़ी-सी साड़ी रक्त-रंजित हो उठी थी। कंका ने तीव्र दृष्टि से मेरी तरफ देखा। अनजाने ही मैंने मृदु स्वर में खेद व्यक्त किया।
सहज स्वर में कंका बोली, 'पेंसिल काटते वक्त चाकू से जयन्त के हाथ की नस कट गई है। पहले कपड़े से रोकना चाहा था। पर अब देखती हूं, कुछ ज्यादा ही

लग गई है।' दरवाजे की तरफ बढ़ते हुए कंका मेरी तरफ देखकर हंसी थी। इस्पात की तरह प्रखर उज्ज्वल हंसी। मुझे लगा जैसे उसकी दोनों आंखें बड़ी अस्वाभाविक-सी लग रही थीं।

मेरी परीक्षा हो गई। जयन्त की परीक्षा भी खत्म हो गई। वह मामाओं के साथ पूजा में उनके गांव चला गया। परीक्षा का साल था। इसीलिये मैं नहीं गयी। कंका भी नहीं गई। उसको कहीं जाने की जगह ही नहीं है। मैंने कंका से कहा, 'जयन्त को तो सेकेन्ड डिवीजन मिल गया। गुरु-दक्षिणा में वे क्या देंगे ?'

बिछौने पर लेटी कंका 'गोन विथ दी विन्ड' पढ़ रही थी। आलस्य-भरे स्वर में बोली, 'अपने-आपको तो दे ही रखा है। आइ एम सिक एण्ड सलेन। माइ एन्टनी इज अवे।'

मैंने कहा, 'धन्य है आधुनिक क्लियोपेट्रा ! लेकिन एन्टोनी तो ठीक रहेगा ?'

'न रहने का कोई कारण तो नहीं दिखाई पड़ता।'

उसके स्मृति-मग्न चेहरे की ओर देखकर, इतने दिन तक जो बात बार-बार मन में उठती थी, उसे हिचकते हुए कह ही डाला मैंने। 'लेकिन मंडल और चौधरी ! विवाह रुकेगा नहीं तो ?'

'क्यों रुकेगा ?' कंका किताब फेंककर उठ बैठी। 'मैं जात-पांत नहीं मानती। वह सब आजकल कोई नहीं मानता।'

'किन्तु यह विवाह अगर सुखकर न हो तो ?'

'क्या कह रही हो, शान्ति ? एक बार ट्रैजडी हुई। इसीलिए क्या हर बार वही होगी ? समय के साथ-साथ सब सम्भव होता है। किसी की शक्ति नहीं—आदमी की जिन्दगी पर इस तरह छाया डालने की।'

किसी अज्ञात ट्रैजडी का आभास मिलते ही प्रश्न कर उठी, 'एक बार क्या ट्रैजडी हुई है ?'

उत्तेजित उग्र स्वर में कंका बोली, 'कुछ नहीं। सुनो शान्ति, लगता है, जयन्त ब्राह्मण है, इसीलिये उसने मुझे ज्यादा आकर्षित किया है। देश में हम लोगों के घर ब्राह्मणों को देवता की तरह पूजा जाता है। उसी ब्राह्मण का प्यार... ! मैं उसके सामान हो जाऊंगी। छोटी जात हूं, इसलिये अवज्ञा मिलती रही है। अब सब खत्म हो जायेगा।'

हंसकर मैंने कहा, 'दी फ्रूट आफ दैट फारबिडन ट्री, क्यों ? इसीलिये तुम्हारा मोह बढ़ गया, लेकिन तुम बहुत बढ़ाकर कह रही हो, कंका। ब्राह्मण और कायस्थ

में उतना ज्यादा फर्क तो नही है। कायस्थ को गांवो में कोई छोटी जात नही कहता। तुम तो कायस्थ हो।'
सतर्क सर्पिल दृष्टि से देखते हुए कंका ने कहा, 'नही, ब्राह्मण-कायस्थ मे सचमुच इतना फर्क नहीं है।'
मैंने कहा, 'अत यह प्रश्न तो उठता नही। जयन्त कब लौट रहा है ? हम लोगो का कालेज दो-एक दिनों में खुलनेवाला है।'
कंका ने उदासी मे उत्तर दिया, 'जयन्त ने आज चिट्ठी में लिखा है, दस दिन में लौट रहा है।'

बात सुनकर विश्वास नही हुआ। मुना, वरुणा क्लास की और लड़कियो से कह रही थी। कंका की उस दिन तबीयत खराब थी, इसलिये होस्टल में ही थी। यूनिवर्सिटी नहीं आई थी। विवाह की बात सुनकर आश्चर्य हुआ। जयन्त कुछ दिन हुए, कलकत्ता लौट आया है। अभी भी वह कंका-भवन का नियमित यात्री है। सोचा, कंका से उसकी इस विषय में कोई बात हुई होगी।
लाइब्रेरी से चौसर की एक किताब लेकर करीब चार बजे होस्टल लौटी थी। नीले रंग के बिछौने पर सोयी हुई कंका 'गोन विथ दी विन्ड' किताब खत्म कर रही थी। मैंने पूछा, 'सिर का दर्द कम हुआ, कंका ? निन्यानवे से ज्यादा तो बुखार नहीं हुआ न ? ऊपर से जिद्द करके सुबह-ही-सुबह स्नान भी तो कर डाला तुमने !'
किताब मोड़ते हुए कंका ने मेरी तरफ देखा, 'नहीं, बुखार तो नही हुआ। पर सिर में दर्द है और बदन में जलन-सी हो रही है। नहाऊं न तो क्या करू ? बुखार होते हुए भी मुझे तो नहाना ही पड़ता है, नही तो बदन बहुत ही गरम हो जाता है। सुबह डरते-डरते जरा-सा पानी डाला था। अभी भी सिर से और बदन से जैसे आग निकल रही है।'
आया ने पूड़ी-तरकारी और चाय ला दी। चाय पीते-पीते पूछा, 'तुम चाय नही पीओगी ?'
कंका हसी, 'मुझे चाय पीने की जरूरत नहीं है। वैसे ही गर्मी से बेचैनी हो रही है।'
खाने में मन लगाते हुए बोली, 'आज यूनिवर्सिटी में एक बात सुनी।'
'क्या बात ?'
रुकते-रुकते बोली, 'जयन्त के विषय में।'
भौहें सिकोड़कर कंका बोली, 'जयन्त के विषय में ?'

'वरुणा कह रही थी, जयन्त का शायद कहीं विवाह ठीक हो गया है। उसके मामा के गांव के जमींदार की लड़की से। विवाह के वाद वे लोग जयन्त को इंगलैण्ड भेजकर काम लगवा देंगे।'

कंका तीर की तरह उठकर वोली, 'क्या ? जयन्त का विवाह !' उसकी तरफ देखकर डर लगा। मुंह लाल, रूखे विखरे वाल और वे दो आंखें ? लगा, कुंडली मारे सांप तीव्र आक्रोश में फन उठाकर काटने को तैयार है। नारी की आंखों में यह सर्पिणी-सी दृष्टि ! मुझे लगा, मैं इस कंका को पहचानती भी नहीं। मेरी हंसमुख लीला-संगिनी कहां खो गई ? यह अर्द्ध-विक्षिप्त नारी कुछ भी कर डाल सकती है।

डरते-डरते वोली, 'हो सकता है, वरुणा यों ही कह रही हो। मुझे तो लगता है, वेकार की सी वात है। जयन्त तो शाम को आयेगा, तुम स्वयं ही पूछ लेना।'

शाम को जयन्त आया। कंका ने कपड़े वगैरह नहीं वदले। कुछ देर वाद मैं भी, एक किताव हाथ में लेकर, सामनेवाले कमरे में जाकर वैठ गई। न जाने क्यों, आज मुझे वहुत ही डर लग रहा था। लगता था, आज जरूर कुछ घट सकता है। कंका सारी शाम चुप रही थी। मालूम नहीं, क्यों वह नीरवता मुझे वड़ी चुभ-सी रही थी।

धीमे स्वर की आवाज सुनाई नहीं पड़ती, फिर भी कान लगाये रही। जानती थी, मेरा यह व्यवहार असंगत और अभद्र है। लेकिन मैं कंका को वहुत प्यार करने लग गई थी।

कंका के उग्र स्वर का विक्षोभ सुनाई पड़ा। पर वात समझ में नहीं आई। किताव रखकर उनके कमरे के सामने पर्दे के पीछे मन्त्र-मुग्ध-सी खड़ी हो गई। आवेश-भरी कंका पर्दा हटाते हुए वाहर आ गई। उन्मत्त दृष्टि से मेरी तरफ देखकर घृणा-भरे स्वर में वोली, 'यहां खड़ी होकर सुन रही थी ! कौतूहल का अन्त नहीं है तुम्हारे। अच्छा सुनो, अच्छी तरह सुनो। मैं कंका नहीं हूं। मेरा नाम मंगला है। नाम वदलकर परीक्षा दी है। लेकिन भाग्य न वदल सकी। मैं कायस्थ नहीं हूं। शुरू से अन्त तक झूठ वोलती रही हूं। मैं शूद्र हूं, अर्थात् चाण्डाल। मेरे पिता एक खूनी हैं। और अंडमान में हैं। जाओ, जाओ, सवसे कह दो। खड़ी क्यों रह गई ? स्पाई कहीं की !'

उसने मुझे स्पाई कहा है, इसकी वजाय मेरे कानों में गूंजने लगा, 'मैं चाण्डाल हूं, मेरे पिता खूनी हैं !'

हतवुद्धि-सी पर्दा सरकाकर कमरे में घुसते ही मैंने अकेले वैठे जयन्त से प्रश्न करके कंका की वात का मतलव समझ लिया था। कंका या मंगला के पिता

का, जाति से चाण्डाल होते हुए भी, ब्राह्मण-प्रधान गांव में धन के कारण सम्मान था। गांव मे मिस्नरी अंग्रेज महिलाओ द्वारा स्कूल बनने पर मंगला के पिता ने उसे भर्ती करा दिया था। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभा के कारण मंगला सभी की विशेष प्रेमपात्री हो उठी थी। वह माता-पिता की इकलौती सन्तान थी। मिस्नरियों ने आग्रहपूर्वक उसे योग्य बनाने का काम अपने हाथ में ले लिया, लेकिन घर में कई तरह के क्लेशो के कारण, मंगला का शिशु-जीवन छायाग्रस्त हो गया।

पड़ोसी ब्राह्मण की लड़की तारा की प्रेरणा से ही, मंगला के पिता मगला को उच्च-शिक्षा दिलवाने को तैयार हुए थे। सुगठित बलिष्ठ देह, चाण्डाल होते हुए भी धनी होने के कारण, रुचि और शिक्षा का समन्वय उसमें था। यौवन और चांडाल-सुलभ गर्म खून उसकी नस-नस में प्रवाहित था। निर्जीव अशिक्षिता पत्नी उसे बांधकर न रख सकी। सुन्दरी ब्राह्मण-कन्या तारा को चांडाल प्रेमी मिला। तारा को लेकर पत्नी से कलह शुरू हुई। वह रात्रि कंका को आज भी याद है, जब सोने के कमरे से उसने माता की तेज आवाज सुनी: 'वह वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण है, तुम उसे छूते हो।' उस रात का वह भयावना दृश्य कंका को आज भी उदास कर देता है। भगड़े का अन्त मार-पीट में हुआ और क्षणिक क्रोध में पागल मंगला के पिता ने बच्चो की आतंक-भरी निगाहो के सामने पत्नी की हत्या कर डाली। मंगला के नाम सारी सम्पत्ति का बुआ और फूफा पर भार दे, वह पत्नी-हत्यारा आज भी अंडमान में है। मिस्नरी महिलाओ ने मंगला का सारा भार अपने ऊपर ले लिया। इसीलिये मंगला आज कंका है, विश्व-विद्यालय की छात्रा है।

समझ गई। इसीलिये कंका के स्वभाव में उग्र स्वातन्त्र्य है, और जहरीले नयन उसके पिता के उन्मत्त यौवन के प्रतीक है।

इसमे कोई सन्देह नही, कि जयन्त मुश्किल में पड़ गया है। सुकुमारी युवती से उसने निर्विवाद प्रेम किया था। सभ्यता के तीव्र प्रकाश में भी किसी का ऐसा कलुषित अतीत अन्धकार में छिपा हो सकता है, यह तो उसने कभी सोचा भी नहीं होगा।

विषण्ण स्वर में जयन्त मुझसे बोला, 'मिस मित्रा, देखिये क्या हुआ? मां से उसके बारे में सब बताया। कायस्थ सुनकर ही उन्होने रो-रोकर सिर की कसम खिलाई थी, यह सब सुनकर तो उससे मिलना ही मना कर देंगी। पिताजी ने मां के साथ अच्छा व्यवहार नही किया। उसका तो एक मात्र आसरा मैं ही हूं। मैं मां को इतना बड़ा आघात कैसे दूंगा? आज गुस्से की झोंक मे पिता का

नाम पूछते ही कंका ने यह सब बताया। कितनी भयानक बातें हैं!'

मैं भी क्या बोलती? अपने मन को लेकर ही मैं व्यस्त थी। गंदले पानी में भी लहरें उठ रही थीं।

कुर्सी से उठते-उठते जयन्त ने लम्बी सांस ली, और कहा, 'विवाह की बात मेरी अभी ठीक नहीं हुई है, कहा था, सोच-समझकर उत्तर दूंगा। पर अब वहां विवाह करने के सिवाय कोई और रास्ता नहीं। कंका से विवाह करूं, तो मित्र और रिश्तेदार मेरा मुंह तक नहीं देखेंगे। अपना ही कोई ठिकाना नहीं है, उसे लेकर कहां जाऊंगा? और मिस मित्रा, आप तो सब जानती हैं, मेरे लिये कंका जरा ज्यादा ही उम्र पड़ जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि वह मुझे प्यार करती है। पर न जाने कभी-कभी मुझे उससे एक प्रकार का डर-सा लगता है। खैर, सोचकर देखूंगा।' जयन्त चिन्तित-सा बाहर चला गया।

इन कई दिनों में मुझे कंका के मुंह की तरफ देखने का साहस नहीं हुआ। दो-एक काम की बात करती, तो आंखें नीची करके। आज प्रायः बीस दिन बाद जयन्त आया, तो कंका ने मुझे बुलाया, 'शान्ति, जरा मेरे साथ नीचे चल। मैं उसके साथ अकेली नहीं रहना चाहती।'

अप्रतिभ स्वर में मैंने कहा, 'मैं तेरे साथ रहकर क्या करूंगी? हो सकता है, जयन्त तुझसे कुछ सलाह करने आया हो।'

कंका पागल-सी हंस पड़ी, 'सब बातचीत खत्म हो गयी। विवाह ठीक करके, विदा लेने आया है।'

वकील की तरह बोल उठी मैं, 'कंका, यह तुम्हारा भ्रम है। सुन तो आओ, क्या कहते हैं।'

'क्या कहेगा? पत्र लिखकर तो यह बात कई दिन पहले ही बता दी थी। आओ शान्ति, मैं उसके साथ अकेली नहीं रहना चाहती।' निर्मम स्टील की तरह कंका की आंखें चमक उठीं।

कंका के साथ मुझे देखकर जयन्त को कैसा-सा लगा, लेकिन फिर वह संकोच से मुक्त हो गया। जरा हिचकते हुए बोला, 'मिस मित्रा तो सब जानती हैं। वे यहां...?'

कंका ने उत्तर दिया, 'शान्ति यहीं रहेगी।'

जयन्त ने जमीन की तरफ निगाहें रखते हुए भाषण की भंगिमा में बोलना शुरू किया, 'चिट्ठी से तुम्हें सब मालूम तो हो ही गया है, कंका। विवाह करने के सिवाय मेरे लिये कोई चारा नहीं। सब मामा जोर दे रहे हैं। और मां ने जबान ही दे दी है। सारे जीवन मामाओं का अन्न खाया है। उनकी बातें

के विरुद्ध जाना असम्भव है। मां सारे जीवन दुखी रही हैं। अब मैं उनको इतना बड़ा आघात नहीं दे सकूंगा।'
कंका ने सहज स्वर में पूछा, 'विवाह कब है ?'
जयन्त ने दबे स्वर से कहा, 'परसों। देखो कंका, जन्म से ही दूसरे के घर पला हूं। यह विवाह करने के बाद मेरी कुछ स्थिति हो जायेगी। नहीं तो, तुम्हारा जीवन भी नष्ट कर दूंगा। तुम्हारा भविष्य भी तो देखना होगा।'
कंका के निरुत्तर मुंह की ओर देखते हुए, बात बदलने के लिये मैं बेतुका-सा प्रश्न कर बैठी, 'वह कैसी है ?'
जयन्त कंका के मुंह की तरफ चकित-सा देखता हुआ, अस्पष्ट स्वर में बोला, 'बुरी नहीं, चेहरा बड़ा सुन्दर है।'
देखा मैंने, कंका अपलक जयन्त की ओर देख रही है।
उसकी दोनों सपिल आंखें सजल हो उठी हैं। उस दृष्टि को ढंककर कंका ने साधारण स्वर में कहा, 'एक बार बहू-भात के दिन जाकर तुम्हारी बहू को देख आऊंगी, जयन्त।'
मैं आश्चर्यचकित रह गई। जयन्त दुविधा और सशय से टालने-सा लगा।
कोमल करुण स्वर से कंका ने फिर कहा, 'जयन्त, तुम इसके लिये मना मत करो। कुछ करूंगी नहीं, केवल एक बार दूर से देख आऊंगी।'
साथ-ही-साथ उसकी आंखों की निर्मम निष्ठुरता को ढंकते हुए अश्रु-धारा बरस पड़ी। आश्चर्य की बात थी।
जयन्त विगलित, विव्रत स्वर में बोल उठा, 'ओह ! तुम आना न, इसमें हर्ज ही क्या है ? तुमसे मेरा मित्रता का सम्बन्ध तो हमेशा ही रहेगा। तुम्हें बुरा लगेगा, इसीलिये आने को नहीं कहा, और फिर मुझे भी तो बुरा लगेगा। एक बात और है कंका, मैंने तुम्हें जो चिट्ठियां लिखी थीं, उन्हें रखने से अब क्या फायदा ? वे सब मुझे दे दो।'
आंसू-भरा मुंह उठाकर मर्मस्पर्शी स्वर में कंका बोली, 'होस्टल की लड़कियां देख लेंगी, इसलिये मैंने वे सब नष्ट कर दी हैं, एक भी नहीं रखी है। तब थोड़े ही मालूम था, अन्त में वे ही बच रहेंगी।'
आज भी कंका के विवाहोत्सव में जाने की बात याद आती है। सारे दिन वह बाहर ही थी। शाम को घर लौटकर, काले चमड़े के सूटकेस में न जाने क्या-क्या रखकर, वह कपड़े पहनने लगी। समझी, जयन्त की पत्नी को देने के लिये उपहार होगा। कंका समझ गई है, बुद्धिमान है, और फिर आत्म-सम्मान उसमें अपार है। जहां कोई उपाय नहीं, वहां बेकार उच्छ्वास व्यक्त करने को मूर्खता

उसमें नहीं है ।

उस दिन कंका ने काले कपड़े पहने । काली रेशम की साड़ी, काले कांच के गहने और सारी कालिमा को पराजित करते जल रहे थे उसके काले नयन, 'जैसे सांप के माथे पर मणि जगमगाती है ।

मेरी तरफ देखकर तीखी हंसी हंसते हुए कंका ने पूछा, 'कैसी लग रही हूं ?'

बोली, 'नागिन जैसी ।'

नागिन की तरह ही अचानक कंका ने मुझे पकड़कर चूम लिया, 'अच्छा तो, जा रही हूं, शान्ति ।'

जीवन में फिर उससे कभी भेंट नहीं हुई ।

विवाह-मण्डप में जयन्त की नव-परिणीता वधू के सुन्दर चेहरे पर नाइट्रिक एसिड डालकर ही कंका शान्त नहीं हुई । उसके हाथ में कंका के नाम लिखे हुए जयन्त के सारे पत्र सौंप आई । वे पत्र उसने नष्ट नहीं किये थे । लाल फीते में बंधे वे प्रेम-पत्र ! सौत को मीडिया का उपहार !

कोई नहीं जानता, वह कहां चली गई । आज भी उसकी खोज हो रही है ।

केवल मैं स्वप्न देखती हूं, ड्रेगन-चालित रथ में मीडिया और उसके गोरे हाथ अपनी सन्तान के रक्त से रञ्जित । नारी आज भी प्रेम का प्रतिशोध लेना जानती है । मीडिया आज भी जीवित है ।

FROM SKETCHES OF TOULOUSE-LAUTREC.

विमल कर

नीरजा

आज शाम को भी नीरजा मेरे घर के सामने से गुजरी। पिछले कई दिनों से मैं उसे देख रहा हूं। कल कुछ अधिक रात गए वह रिक्शे से गुजरी थी। रिक्शा देखकर मैंने सोचा था कि शायद वह कुंजबाबू के आनन्द-भवन में रहने लगी है।

आज शाम को जब नीरजा मेरे मकान के सामने से गई, उस समय मैं बरामदे में बैठा था। बरामदे के बाद बगीचा और बगीचे के किनारे कंटीले झाड़ की कतार और उस कतार के बाद सड़क है। यह रास्ता सीधा स्टेशन के ओवर-ब्रिज तक गया है।

मेरा यह घर बहुत ही छोटा है। सब ओर से इसकी दीन-दशा झलकती है। खपरैल की छत का छोटा-सा घर, जामुन-काठ का दरवाजा, बाग में कुछ देशी फूलों के पौधे, लकड़ी के टूटे दरवाजे से सटी जंगली लता। जाड़ा शुरू होने के शुरू-शुरू में ही छोटे-छोटे बैंगनी रंग के फूल लगते हैं लता में। हेमन्त का अन्त हो चला है, इसीलिये वे जंगली फूल खिलने शुरू हो गये थे।

शाम को जब नीरजा जा रही थी, मुझे लगा कि मुहूर्त भर के लिए वह मेरे घर की ओर देखती रही। जाड़े की ऋतु शुरू होते ही यहां वायु-परिवर्तनार्थ आने वालों की भीड़ होने लगती है। स्वास्थ्य लाभ के लिए या घूमने के ख्याल से

जो आते हैं, वे इस तरफ के मकानों में ही ठहरते हैं, और इस रास्ते से आते-जाते समय आंखों में से एक पल के लिए मेरे इस घर की ओर देखते हैं। मेरे घर के आस-पास जितने भी मकान हैं—सभी ऐश्वर्य एवं सौन्दर्य से परिपूर्ण प्रासाद-तुल्य हैं। उनको किसी तरह का अभाव नहीं, इसीलिए इस जगह मेरा मकान विल्कुल वेमानी और अनाथ-सा लगता है।

वहुत-कुछ नीरजा की तरह ही। जव पहले-पहल मैंने नीरजा को देखा था, तव मुझे भी ऐसा लगा था कि ज्योत्स्ना के समान ऐसे उत्फुल्ल सुन्दर मुख पर, मरी हुई मछली की आंखों की मणि-जैसा एक अशुभ तिल कैसे हो गया! नीरजा के वाएं गाल पर, नाक से सटा हुआ, ऊपरवाले ओंठ को छूता हुआ-सा एक तिल था—श्याम रंग के साथ कुछ-कुछ रक्तिम आभा का सम्मिश्रण लिए हुए।

तिल और मछली की आंख में सादृश्य ढूंढ निकालने का प्रयत्न मैंने किसी दिन भी नहीं किया। यह वात नीरजा ने ही मुझे वताई थी। उसने कहा था, उसके मामा ने, जो नेपाल के राज-दरवार में नौकरी करते थे, एक वार कहा था कि यह तिल वहुत ही शुभ चिह्न है।

नीरजा ने नाना-प्रकार के शुभ लक्षणों के मध्य जन्म ग्रहण किया था। उसके परिवार के लोगों से मैंने वह कहानी सुनी थी। वह सरकारी स्टीमर में पैदा हुई थी। उसके पिता पूरे महीने से रही पत्नी को लेकर, जव घर वदलने के लिए नदी पार कर रहे थे, उसी समय नीरजा पैदा हुई थी। भगवान की असीम कृपा ही थी कि प्रसूति इतने स्वाभाविक एवं सरल रूप से हो गई। पता नहीं चला कि कहीं कोई आपत्ति आई है। नीरजा के जन्म के पश्चात् उसके पिता को एक सरकारी खिताव भी प्राप्त हुआ। जिस नदी ने वार-वार पुल तोड़कर रेल-कम्पनी को परेशान कर रखा था, उसी नदी को नीरजा के पिता ने पराजित कर दिया। नौकरी में काफी उन्नति हुई। नीरजा के जन्म के पश्चात् दुनिया में और भी वहुत-सी सौभाग्यपूर्ण घटनाएं घटित हुई थीं। नीरजा की मां को पितृ-सम्पत्ति प्राप्त हुई—प्रायः वीस-पचीस हजार रुपये। नीरजा का बड़ा भाई सर्प डंसने से आई निश्चित मृत्यु से भी वच गया। उसकी छोटी फूफी की शादी अप्रत्याशित ढंग से हो गई, उसके पैर की खरावी पर लड़के ने ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार परिवार में कितनी ही अच्छी घटनाएं घटित हुईं।

ऐसी सुलक्षणा लड़की की अत्यन्त यत्न एवं लाड़ के साथ रक्षा करते-करते, पहले उसके पिता की मृत्यु हुई और वाद में मां की। मेरे साथ जव नीरजा का प्रथम परिचय हुआ, तव उसकी मां जीवित थीं। उनका रूप वहुत स्निग्ध था एवं

चेहरे की आभा कुम्हार टोली की देवी प्रतिमा जैसी थी। नीरजा को अमित स्नेह एवं दुलार देने पर भी वे किसी-न-किसी मामले में उद्विग्न रहती थीं। ऐसा लगता, उनकी सुलक्षणा लड़की पर कोई अधिकार कर लेगा, इसी डर से वे सतर्क रहती थीं। बड़ा लड़का तो विदेश में है। उसने विदेशी औरत से ही शादी की है। नीरजा की मां को इस कार्य में एक बड़ी रकम न मिलने का क्षोभ अभी तक है। अपने कुल की मर्यादा और गौरव बनाये रखने के लिए वे अपने मन-पसन्द पात्र को लड़की सौंप देने की सोचती थीं।

एक बार नीरजा की मां अधिक बीमार हो गईं। रोग जटिल होता गया। उन्होंने सोचा, अब उनका जीवन समाप्त होने का समय आ गया है। उस समय तक वे नीरजा के लिए योग्य पात्र नहीं खोज पाई थीं। जीने का कोई भरोसा नहीं और समय भी नहीं था, इसलिए अन्त में उन्होंने नीरजा को मुझे सौंप दिया। ऐसी सुलक्षणा नीरजा को पाने के पश्चात् बहुतों को ऐसा लगा था कि पितृ-पक्ष का पारिवारिक सौभाग्य नीरजा अब पति की गृहस्थी में स्थानान्तरित कर देगी। किसी-किसी ने कहा भी कि यह शादी ही उसकी सूचना है।

मैंने बहुत ही प्रसन्नता और प्रेम से नीरजा को ग्रहण किया था। किसी दिन भी चेतन मन से मैंने ऐसी कल्पना नहीं की थी कि मैं आशातीत सौभाग्य अर्जन करूं या समृद्ध और यशस्वी पुरुष बन जाऊं, और न ही मैंने नीरजा से कभी कहा कि तुम्हारे भाग्य द्वारा मैं विजयी बनूं।

नीरजा से मैंने सिर्फ परिपूर्ण प्रेम चाहा था। किशोरावस्था से ही इस धारणा ने मेरे मन में जड़ जमा ली थी कि जीवन में प्रेम ही एकमात्र धन है। मुझे मेरी सोना मौसी ने एक कहानी सुनाई थी। मेरी चेतना में उस कहानी ने एक मधुर स्मृति की तरह घर बना लिया था। यौवन प्रस्फुटित होने की अवस्था में जब मैं पहुंचा, तब मैंने अनुभव किया कि नियति का चक्र पूरा हो चुका है।

सोना मौसी से मैंने जो कहानी सुनी थी, उसकी रूपरेखा प्राचीन उपकथा जैसी थी। सावित्री का उपाख्यान याद आ जाता। किन्तु मुझे हमेशा ही ऐसा लगता कि सौमती की कहानी में सावित्री के उपाख्यान से भी अधिक गम्भीरता है। सौमती ने एक अद्भुत अभिसार किया था। मृत्यु और प्रेम में से श्रेष्ठ कौन है, इसका अन्वेषण किया सौमती ने। मृत्यु-रथ का अनुसरण करते-करते मृत्युलोक के अंतिम प्रान्तर तक पहुंच गया। और यमराज से कहा था, 'यमराज, मेरी प्रेयसी को तुम अपने रथ से उतार दो।'

सोना मौसी ने कहा था, वह सब बड़ी आश्चर्यजनक बातें हैं। यम ने कहा, मृत्यु जिसे एक बार ले लेती है, उसको वापस नहीं देती। उसकी शक्ति के सामने मनुष्य

नीरजा रह जाता था। उसे छोड़कर मुझे दूसरी कोई चिन्ता नहीं थी।
धीरे-धीरे मैंने महसूस किया कि मैं नीरजा को यथार्थ दृष्टि से नहीं देख पाया था। उसके जीवन में जितने अशुभ उपकरण थे, उन सबको अलग करके देखा तो समझ आता कि नीरजा के परिवार में जो मुक्ति जीवित थी, वह मुक्ति जब आक्रान्त हो चुकी थी तब मैंने उससे विवाह किया था। दरअसल, नीरजा के माता-पिता एवं उसके अन्य आत्मीय स्वजनों ने नीरजा के चरित्र में बहुत से विषाक्त बीजों का रोपण कर दिया था। जब मुझे वह पत्नी-रूप में प्राप्त हुई, वह विष उसकी समग्र चेतना के अन्दर संक्रमित हो चुका था। जिस नीरजा को मैंने प्राप्त किया था वह मरणोन्मुखी थी। संसार के दुःसह रोगों ने उस पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में ले लिया था।
मैंने समझा, सोना मौसी की कहानी को मैं हृदयंगम नहीं कर सका हूं। मेरे प्रेम ने मुझे जड़पदार्थ में परिणत कर दिया है। मैं ज्यादा दूर चल नहीं सकता, क्लेश सहन नहीं कर सकता। जीवन के एक गुरुतम प्रश्न का सामना करने को

सामर्थ्य और साहस भी नहीं जुटा पाता।

मनुष्य नहीं जानता कि वह क्यों प्रतीक्षा करता है। मैं भी यहां से चले आने के बाद से ही प्रतीक्षा करता रहा हूं, और आज, प्रायः पन्द्रह वर्ष की प्रतीक्षा के बाद, नीरजा अप्रत्याशित ढंग से देखने को मिली है। देखकर ऐसा लगा कि यह आनन्द-भवन की अतिथि है।

एक दिन घर के सामने ही भेंट हो गई। शाम हो चुकी थी एवं ठण्ड पड़ रही थी। नीरजा ने ही मुझे पहचाना। मैंने कहा, 'चलो, भीतर चलें।'

मेरा बैठक का कमरा अत्यन्त छोटा है। सामान वगैरह बहुत ही कम है। छोटा लड़का, जिसे मैं नौकर की जगह रखे था, लालटेन जलाकर रख गया। साधारण से तख्तपोश पर बिछी हुई दरी, काठ की एक कुर्सी, एक बेंत का मोढ़ा, और एक छोटी-सी टेबल खिड़की की ओर रखी हुई थी।

नीरजा तख्तपोश के ऊपर ही बैठी। लालटेन की रोशनी में यथासाध्य उसका चेहरा देखा। नीरजा के चेहरे का रूप जैसे बहुत बदल गया है। गाल के पास का मांस फूलकर पीला-सा हो गया है। बहुत दिन तक कोई रक्त सुखानेवाली व्याधि भोगने से ही, शायद शरीर का चमड़ा इस तरह सफेद हो जाता है। बहुत ही निर्जीव-सी दीख रही थी। दोनों आंखें श्रीहीन एवं अवसाद-ग्रस्त थीं एवं आंखों की ऊपरी पलकों पर एक काली-सी रेखा पड़ चुकी थी, जिससे वह अत्यन्त ही निर्विकार एवं संज्ञा-शून्य दिखाई पड़ रही थी। वह तिल उसके मुंह पर यथास्थान ही था, लेकिन अब और भी काला हो चुका था।

दो-एक छोटी-मोटी बातों के बाद मैंने कहा, 'कुंज बाबू के मकान में रहने लगी हो ?'

'उनकी पत्नी ने भेजा है। कुंज बाबू की बड़ी लड़की स्वास्थ्य-लाभ करने आई है, मैं उसकी नौकरानी हूं।' नीरजा ने कहा।

'नौकरानी ?'

'एक ही बात है। देख-भाल करने वाली दाई।' नीरजा ने अपने गले में पुराने शाल को लपेट लिया। उसके हाथ में कपड़े का एक छोटा थैला था जिसमें बाजार से लिया गया छिटपुट सामान दिखाई पड़ रहा था। समझ गया कि कुंज बाबू की लड़की के हुक्म से बाजार करके लौटी है नीरजा। कुंज बाबू की लड़की को मैंने पहले कई बार देखा है। विवाहिता एवं अस्वस्थ लड़की—बेचारी प्रायः ही यहां हवा-पानी बदलने आती है।

कुछ समय नीरव बैठा रहा। नीरजा के दुर्भाग्य का इतिहास जानने की इच्छा नहीं थी मेरी। मैंने अनुभव किया कि सौभाग्य ने उसे जो कुछ भी दिया था,

दुर्भाग्य ने एक-एक कर वापस ले लिया है। नीरजा का वह मन-पसन्द मकान अहम्, दम्भ, स्वेच्छाचारिता—सभी कुछ खत्म हो चुका है।

मैंने एक बार नम्र स्वर में कहा, 'तुम्हारे साथ बहुत दिनों बाद मुलाकात हुई है।

'हां, बहुत दिनों बाद,' नीरजा ने रुक-रुककर कहा। और लालटेन की तरफ देखते हुए दीर्घ निश्वास फेंका। कुछ क्षण चुप रही, फिर बोली, 'तुम यहां कितने दिनों से हो?'

'बहुत दिनों से यहीं रहता हूं। सात-आठ वर्ष हो गये हैं।'

'अकेले ही रहते हो?'

'एक नौकर है।'

'आज-कल क्या करते हो?'

'यहां हिन्दुस्तानियों का एक स्कूल है, उसी में पढ़ाता हूं।'

'ओ, मास्टरी।'

लालटेन की रोशनी में पलकों को कई बार मिचमिचाते हुए नीरजा फिर बोली, 'मेरी आंखों की पलकों में आजकल कीड़े लग गये हैं। शाम को रोशनी में जलन और भी बढ़ जाती है। अब चलूं, लड़की प्रतीक्षा करती होगी।'

मैंने नीरजा को और बैठने को नहीं कहा। वह उठ खड़ी हुई। मैं भी उठा। बाहर ठंड पड़ रही है। धुंए के पुंज की तरह कुहासा जमा हुआ है। आकाश-तले कृष्णपक्ष का अन्धकार कई नक्षत्रों समेत स्थिर हो गया है।

हम लोग चुपचाप घर के बाहर आये। दरवाजा खोलकर नीरजा को रास्ता दूं कि अचानक नीरजा बोली, 'यह घर तुम्हारा है?'

छोटे-से 'हां' में जवाब दिया।

नीरजा ने वहीं खड़े होकर न जाने क्या सोचा, फिर बोली, 'यहां सभी मकानों के नाम हैं। तुम्हारे मकान का क्या नाम है?'

मेरे घर का कोई नाम नहीं था। कभी-कभी इच्छा होती थी कि नाम रखना चाहिए, लेकिन मन-लायक नाम नहीं मिला था। नीरजा को क्या जवाब दूं, यह मैं नहीं सोच पाया। रास्ते में चलते-चलते शाल को और भी लपेट लिया नीरजा ने। हवा में ठंड आ गई है। अंधेरे निर्जन रास्ते में एक चौपाया जानवर चला जा रहा था। नीरजा ने सोचा था, मैं दरवाजे के पास ही खड़ा हूं। उसने गर्दन घुमाकर देखा, कुछ बोलना चाहती है मानो। मैं उसके साथ ही जा रहा था। मुझे साथ-साथ चलते देख नीरजा मानो दुखित उदास गले से बोली, 'तुमने कभी सोचा था कि मुझसे मुलाकात होगी?'

'नहीं, कभी नहीं सोचा था। फिर भी कभी-कभी मन में आता था कि यदि

कभी भेंट होगी तो—देखूंगा।'

'देखूगा? क्या देखोगे?'

दो कदम चलकर नीरजा खड़ी हो गई। मुझे अच्छी तरह देखने का प्रयत्न किया। मैं कोई जवाब नहीं दे पाया।

सामान्य प्रतीक्षा के बाद उसने कदम बढाये। 'मुझे इस हालत में देखकर तुम्हें क्या लाभ हुआ, बल्कि तकलीफ ही हुई होगी?'

नीरजा की बात का मैंने कोई जवाब नहीं दिया। उसे देखकर मुझे दुख होना उचित ही था। किन्तु मुझे दुख नहीं हुआ।

आनन्द-भवन के पास पहुचते ही नीरजा ने कहा, 'अब तुम लौट जाओ, मेरा घर आ गया है।'

नीरजा के उस स्वर से अचानक सोना मौसी की कहानी याद हो आई। लगा, नीरजा यमराज की तरह ही मृत्युलोक के अंतिम छोर पर पहुचने के बाद, मुझसे लौट जाने को कह रही है।

लगता है, नीरजा समझ नहीं पाई है कि लौट जाने के पहले, अभी मैं कितनी ही देर पैदल भटकूगा, थकूगा, क्लेश पाऊंगा, और अन्त तक उस मृत नीरजा को लौटाने की कोशिश करूंगा।

रमापद चौधुरी

तीसर-रुदन का मैदान

अरुणिमा सान्याल से फिर भेंट होगी। कितने मधुर वसन्त बीत गये ! इस लम्बे समय के व्यवधान के बाद भी, कभी-न-कभी अचानक ही उससे फिर भेंट हो ही जायेगी।

खलारी की चूना-पहाड़ी से अचानक ही सावधान करने वाले घण्टे की चीख सुनाई पड़ेगी, डाइनामाइट फटेगा और चूना-पत्थर के बड़े-बड़े ढेले जोरों की आवाज करते हुए गिरेंगे······पर वह आवाज क्या मेरे कानों तक पहुंचेगी ?

पग-पग ठोकर खाते हुए बूढ़े-जैसी बरकाखाना लोकल ट्रेन धूप में झुलसा हुआ बदरंग शरीर लिये हांफती-हांफती महुआ-मिलन के प्लेटफार्म पर आ लगेगी। डब्बों की खिड़कियों से कन्वेण्ट की छुट्टियों में घर लौटती हुई, गाफिल कबूतरों के झुण्ड-सी, एंग्लो-इण्डियन लड़कियां झांक-झांककर पूछेंगी, 'मैकलुस्कीगंज कितनी दूर है'······'ट्रेन लेट तो नहीं है ?' ड्योढ़े दर्जे के डब्बे में गन्दे देहातियों की भीड़ में शोर-गुल मचता रहेगा।······पर वह सब क्या मेरे मन को स्पर्श कर पायेगा ?

फिर भी बरकाखाना की लोकल ट्रेन जलती दोपहर की चादर ओढ़े, रेल-मजदूरों के शरीर की दुर्गन्ध के भभके छोड़ती हुई महुआ-मिलन स्टेशन पर आकर रुकेगी

ही। जानकी-मईया के पास से गुजरकर, राधाकिशन के मन्दिर के पार, टीलों से घिरे घरों के झुण्ड के पास आ खड़ी होगी ट्रेन।
गांव के नाम के आगे डेरा, डीह, गांव आदि कुछ भी नहीं लगता। कहने को गाव है, नाम है मैदान का। इस जङ्गली नाम का अनुवाद किया जाये तो होगा—'तीतर-रुदन का मैदान'। इसके पास ही है—महुआ-मिलन स्टेशन।
टिकट हाथ में लिये मैं भागता-भागता स्टेशन पहुचूगा, देहातियों की भीड़ में धक्का-मुक्की करता हुआ मैं डब्बा खोजूंगा। फिर उसके चेहरे पर से फिसलती हुई मेरी नजर दूसरी ओर चली जायगी, लेकिन दो-चार पल बाद ही मेरा मन ठिठककर खड़ा हो जायगा। शायद दो-चार पग बढ चुका होऊंगा, पर मन के रुकने के साथ-ही-साथ नहीं, तो एक-आध सेकण्ड बाद पांव भी रुक जायेंगे। एक बार फिर मुड़कर उस चेहरे की ओर देखूगा। लगेगा, वह चेहरा कुछ पहचाना-सा ही नहीं, बल्कि न जाने कितना परिचित-सा लग रहा है। कुछ याद भी आयेगा।
अनजाने ही, कम्पार्टमेण्ट के सामने आ खड़ा होऊंगा। अच्छी तरह से अरुणिमा की ओर देखूगा। देखूगा—नया खरीदा हुआ होल्डाल, लेबिल लगा सूटकेस, फ्लास्क, बेंत की लंच-बास्केट, सभी इस बीच प्लैटफार्म की धूल से अंट गये हैं। इन सब के साथ ही, एक चुस्त-दुरुस्त पोशाक में सजे हुए पुरुष पर भी नजर पड़ेगी। ताकतवर दोहरा शरीर, काशनी कार्डराय की पतलून, गुलाबी रंग की हवाई शर्ट, आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा, पावों में क्रेप-सोल का कीमती जूता, कन्धे पर चमड़े की पट्टी से झूलता हुआ कैमरा, सब को पारकर मेरी नजर पड़ेगी—दो थल-थल उंगलियों के बीच दबे धुआं छोड़ते चुरुट पर। उस तरफ से हटकर नजर जायेगी रेल के डब्बे की ओर, डब्बे के पायदान की ओर। फिर आंखें उठाकर अरुणिमा की दृष्टि-से-दृष्टि मिलाकर देखूगा। अपरिचय से बांकी हो गयी भौंहों पर दोपहरी की क्लान्ति होगी, और आखों की पुतलियों में उकताहट की रेखा। उड़-उड़कर ललाट पर गिरती रूखी लटें रेल-यात्रा की गवाही देंगी और गले में पसीने से भीग आयी मोतियों की माला और मुड़ी-मुड़ी चुन्नटों वाली हरी साड़ी, उदास-उदास-सी थकान का आभास देगी। अरुणिमा! अरुणिमा एक बार प्लैटफार्म पर पड़े हुए सामान की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखेगी, फिर हवाई शर्ट की ओर, फिर हाथ बढाकर डब्बे से एक तीन साल के गोलमटोल-से बच्चे को उतारेगी और उसे झप् से गोद में लेकर सावधानी से डब्बे की सीढ़ियां उतर आयेगी। मेरे मन में तब एक ही इच्छा, एक ही कामना जागेगी—अरुणिमा क्या एक बार नजर उठाकर देखेगी भी नहीं? पहचानेगी नहीं?

पर वह तो उस समय बड़ी व्यस्त रहेगी। आस-पास कौन खड़ा है, यह देखने की फुरसत ही न होगी उसे। ना, अन्त तक नहीं रुक सकेगी अरुणिमा, नजरें मिलेंगी, हंसी से उसके अधर कांप उठेंगे।

'मुझसे नहीं रहा जाता अब', मैं मीठी हंसी से उज्ज्वल, मधुर कण्ठ की काकली सुनूंगा, 'मुझसे गम्भीर नहीं रहा जाता अब।'

'तो मुझे देख लिया था? पहचाना?' मैं पूछूंगा।

आंखों में आंखें डालकर अरुणिमा हंस देगी, बात का जवाब नहीं देगी।

फिर उस सजे-बजे पुरुष से मेरा परिचय करायेगी अरुणिमा—कुछ कहकर, या नाम बताकर? नहीं, बस, तिरछी नजर से देखकर एक लज्जा-गर्व-मिश्रित कौतुक-भरी हंसी हंस देगी।

मुझे विस्मय होगा, पर इस विस्मय को दबा ही जाना होगा।

'सुनीत दा, ये मेरे सुनीत दा हैं', अरुणिमा मेरा परिचय देगी।

'बड़ी खुशी हुई', गुरु-गम्भीर स्वर के साथ ही एक भारी मांसल हाथ बढ़ आयेगा मेरी ओर। हाथ बढ़ाकर मुझे भी खुशी जतानी होगी।

फिर अरुणिमा के मुन्ने को गोद में उठाकर रस्मी तारीफ की दो-चार बातें करूंगा, या उसके रूप पर मोहित हो जाऊंगा, और अरुणिमा के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में चिन्ता प्रकट करूंगा।

'सच, कितनी दुबली हो गई हो', मैं कहूंगा।

'तभी तो आई हूं। तबीयत ही अगर ठीक रहती, तो इतनी जगहें छोड़कर यहां क्यों आती?' उसके चेहरे पर सहज-सरल हंसी खेल रही होगी।

उसकी बातें...उसकी बातें सुनकर काम-काज ही नहीं, अपना गन्तव्य-स्थान भी भूल बैठूंगा।

'कहां जा रहे हो?' अरुणिमा पूछेगी, 'गये बिना क्या चलेगा नहीं?'

ऊपर से कहूंगा, 'काम है।' पर मन मेरा कुछ और ही कहना चाहेगा।

तब वे लोग सारा सामान-सरंजाम कुली के सिर पर लादकर चलने लगेंगे। कार्ड-राय की पतलून चलेगी आगे-आगे। हम पीछे-पीछे। तीन बरस का बच्चा हमारे बीच चीन की दीवार बनकर खड़ा होगा।

'अब मैं चलूं', मैं लौटना चाहूंगा। मुझे ट्रेन की सीटी सुनाई देगी, और अगले ही क्षण मेरा हाथ कसकर थाम लेगी अरुणिमा। वह मनुहार की दृष्टि से मेरी ओर देखेगी, 'कितने दिन, कितने बरस बाद मिले हो, बोलो तो? और आज ही तुम्हें दुनिया भर का काम आ पड़ा है!' देखूंगा, अरुणिमा की आंखों में वेदना है।

मैं निरुत्तर हो जाऊंगा, कुछ कह न सकूंगा।
वह कितना-कुछ कहेगी। 'नहीं, नहीं, तुम्हारा जाना नहीं होगा। इस नई जगह में तुम्हारे बिना हमें कितनी असुविधा होगी, सोचा है?'
'मेरे यहां होने के ख्याल से तो आई नहीं हो, अरुणिमा। अगर अचानक ही भेंट न हो जाती, तो अपनी असुविधाओं के निवारण के लिये किसे खोजती?'
अरुणिमा भौहें चढ़ा लेगी। कहेगी, 'इतनी दूर से मैं झगड़ा करने नहीं आई हू, सुनील दा।'
अरुणिमा की आंखें छलछला आयेंगी। मैं हैरान हो जाऊंगा—लड़कियां भी कैसे मौका देखकर आंखों में पानी भर लाती हैं।
पर मेरा जाना रुक ही जायेगा। अरुणिमा के अनुनय की उपेक्षा करने की शक्ति कहां से लाऊंगा?

टिंगलीटूडांग के लाला बाबू का मकान इन्हीं के लिये पुताई वगैरह करवाकर तैयार रखा गया है—लाला बाबू के दरवान ने बताया। तीस साल पुरानी फोर्ड कार की तरफ इशारा करके उसने बताया कि लाला बाबू की चिट्ठी पाकर वह गाड़ी भी ले आया है।
गढ़ैया के पास से गाड़ी गुजरेगी। फिर पीले-पीले महुआ-वृक्षों से घिरे सुर्खीदार रास्ते से निकलकर, पगली मेम मेरी बाट्सन के बगले के बगीचे के आंवले के झालरदार पत्तों की झिल-मिल छाया को पार करके कुण्टीकड़वा की पहाड़ी सड़क पकड़ेगी। आंकी-बांकी सड़क के हिचकोलों से अरुणिमा कभी मेरी ओर ढल पड़ेगी, कभी हवाई शर्ट की ओर।
इतना लम्बा रास्ता है, इतना समय मिला है, फिर भी लाला बाबू की कोठी पर पहुंचने तक हवाई शर्ट के मुंह से कोई बात नहीं फूटेगी, फीके रंग के धूप के चश्मे में हंसी की रेखा भी नहीं झलकेगी।
एक बार काम-चलाऊ सब व्यवस्था हो जाने पर वह मोटा आदमी बाहर बरामदे में पड़ी बेंत की कुर्सियों पर पसरकर एक चुरुट सुलगायेगा। मुंह भरकर धीरे-धीरे धुआं छोड़ते हुए पूछेगा, 'कहां रहते हैं आप?'
जवाब दूंगा। फिर हम दोनों बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहेंगे, कोई बात ही न सूझेगी।
आखिरकार कार्डराय की पतलून की चुप्पी टूटेगी। दरवान से पूछेगा, 'कुएं से पानी भर दिया है ना? मेम साहब नहाने गईं?'
मैं उठ खड़ा होऊंगा। 'अब चलूं, मि० गुप्त। यहीं तो हूं, फिर आऊंगा।'

बांधते घर का पता देकर कहा था, 'आते रहना, कभी-कभी।'

'अच्छा। यहीं है तेरा घर ? जरूर आऊंगा, जरूर।' मैंने कहा था। गया भी था।

सड़क का नाम देखकर एक बार विस्मय हुआ था, फिर मन को समझा लिया था, 'धनी मुहल्ले में क्या किसी गरीब का घर नहीं हो सकता ?'

पर नम्बर देखते-देखते जिस बगीचेवाली कोठी के विशाल फाटक के सामने जा खड़ा हुआ था, उसके अन्दर घुसने की हिम्मत न पड़ी। सोचा, पहली अप्रैल तो अभी बहुत दूर है। असीमेन्दु ने क्या मुझे बेवकूफ बनाने के लिये यह पता दिया है ?

अचानक कन्धे पर किसी भारी हाथ के स्पर्श से चौंक उठा।

'क्यों रे ! बाहर ही क्यों खड़ा है ? चल अन्दर।' हाकी-स्टिक घुमाते हुए असीमेन्दु मुझे अन्दर खींच ले गया।

फिर मैंने जो वैभव, जो ऐश्वर्य देखा, मेरी तो बोलती ही बन्द हो गई थी।

कुछ वर्ष बाद फिर पता खोजते-खोजते असीमेन्दु के घर जाना पड़ा। उसका पत्र जेब से निकालकर गली का नाम मिलाया। सोचा, क्या ऐसी गन्दी गली में कोई ऐश्वर्य का प्रासाद नहीं हो सकता ? नहीं। गन्दी गली। मकान की उम्र भी सौ साल से कम तो क्या होगी। सामने के चबूतरे पर अस्सी बरस के बूढ़े के दांतों-जैसी टूटी-फूटी ईंटें झूल रही थीं। दीवारों पर काई जमी हुई थी और हरे रंगवाले लकड़ी के किवाड़ न जाने कब के सड़ चुके थे। दरवाजे के ऊपर ही अलकतरे से मकान का नम्बर लिखा था।

दरवाजा ऐसे ही उढ़का हुआ था, फिर भी मैंने कुण्डी खड़खड़ाई।

'कौन ? दरवाजा खुला है।'

एक-दो पल खड़े रहकर सोचा, अन्दर घुसूं, या नहीं ? यह घर असीमेन्दु का नहीं हो सकता, मुझे विश्वास था। चमत्कृत कर देनेवाले वैभव से दूर यहां क्यों आना होगा असीमेन्दु को ?

'कौन ?' इस बार नारी-कण्ठ का स्वर था। हल्के कदमों से कोई इस ओर आया। कपाट की ओट से रंगीन साड़ी की एक झलक बिजली की तरह कौंध गई, फिर उसने दरवाजा खोल दिया, और—

'अरे सुनीत दा, तुम ? आओ, भीतर आओ सुनीत दा। बाहर क्यों खड़े हो ? तब से पूछ रही हूं, कौन है, कौन है, और तुम्हीं आये खड़े हो जनाब !' आह्लाद से उछलती अरुणिमा मुझे रास्ता दिखाती हुई अन्दर ले गई।

दिखाने को रास्ता ही कितना था ! छोटी-सी कोठरी, सामने एक बरामदा।

बरामदे के एक कोने में ईंटों की सुर्खी, टूटे कांच-लोहे की छड़ों और तार की जाली का ढेर लगा हुआ था। एक तरफ एक मोढे पर बैठा असीमेन्दु टेनिस के रैकेट की जाली ठीक कर रहा था।

रैकेट एक ओर रखकर उसने एक सस्ती-सी सिगरेट सुलगाई, 'आ, कब आया?'

मैंने बताया।

'महुआ-मिलन में हो?' अरुणिमा ने पूछा।

मैंने गर्दन हिला दी।

असीमेन्दु से कहा, 'देखता हू, खेल का नशा अब भी बना हुआ है।'

वह हंसने लगा, 'क्यों? रैकेट की मरम्मत के लिये पैसे नहीं हैं, इसीलिये कह रहा है?'

'नहीं, नही, उम्र की वजह से। इस उम्र में...'

'खेलने की कोई उम्र होती है?' हंसते हुए असीमेन्दु ने अरुणिमा की हंसती हुई आंखो-से-आंखें मिलाईं, 'मेरी जन्म-पत्री मे इस साल यश-प्राप्ति का योग है। देखना, इस बार *बंगाल नम्बर वन* होने वाला हू।'

कहा, 'होने पर मुझे बड़ी खुश होगी। पर मामला क्या है? इतने दिन बाद अचानक यों बुला भेजा?'

अरुणिमा बीच में ही बोल उठी, 'यह बात है? मैंने सोचा था, शायद इतने दिन बाद हमारी याद ही आ गई होगी। और सुनीत दा को बुलाने के लिये तुमने लिखा है, यह मुझे नहीं बताया?'

असीमेन्दु हंसकर बोला, 'सब बातें कहने की फुरसत कहां रहती है, अरुणि!'

अरुणिमा झूठ-मूठ रूठ गई। फिर, 'बैठो, बातें करो। मैं घर से चाय बना लाती हू।' कहकर दरवाजा खोलकर निकल गई।

मैंने पूछा, 'मामला क्या है, बता तो? सब कुछ रहस्य जैसा लग रहा है। शादी हो गई है क्या? अरुणिमा क्या यहीं रहती है?'

असीमेन्दु ने बुझी हुई सिगरेट फिर से जलाई। बोला, 'नहीं, अभी तक तो नहीं हुई, पर शादी की जिद में ही यह हाल हुआ है। त्याज्य-पुत्र हू मैं।'

पूछा, 'उसके घरवालों का क्या कहना है?'

'हू-ऊं-ऊं-ऊं, आपत्ति तो है ही। अच्छा, क्या बड़े घरों के बेटे ही त्याज्य-पुत्र होते हैं?' ठठाकर हंस पड़ा असीमेन्दु।

मैंने कहा, 'काफी हद तक सही है यह बात। गरीबों के बच्चे तो माँ हो त्याग हुए-से ही होते हैं। अरुणिमा क्या यहीं आस-पास कहीं रहती है?'

'हां, दो घर छोड़कर रहती है। उसी ने तो यह घर जुटाया है। मकानी रेस्ट

थर्टी चिप्स्। हां, कुछ अपना हाल तो सुना।'

बताया, महुआ-मिलन के चूना-कारखाने में असिस्टेण्ट मैनेजर हूं।

'अब नहीं सहा जाता', गहरी सांस खींचकर बोला असीमेन्दु। 'अरुणिमा के बिना जिन्दगी में क्या रखा है, बोल तो ?'

'उसके बिना जिन्दगी बिताने को कह कौन रहा है ?'

असीमेन्दु का चेहरा विषण्ण हो आया, 'खेलना मेरा नशा है, इसे छोड़ नहीं पाता। और इसके चन्दे के लिये भी उसके आगे हाथ फैलाने पड़ते हैं।'

मैंने कहा, 'खिलाड़ियों को तो बड़ी आसानी से नौकरी मिल जाती है। कहीं कोशिश कर न। सारी समस्या ही हल हो जायगी।'

वह चुप रहा। उत्तर नहीं दिया। सिगरेट के टुकड़े को चाय के प्याले में फेंक कर फिर रैकेट की मरम्मत में जुट गया। काफी देर तक कुछ नहीं बोला।

फिर अचानक ही मानो फूट पड़ा वह। 'काश! तब ठीक से पढ़-लिख ही लेता। कोशिश मैंने कम नहीं की है सुनीत, पर सभी तो सार्टीफिकेट मांगते हैं।'

ध्यान आया, असीमेन्दु पढ़ने में कमजोर नहीं था। पर उन दिनों तो उसके तन-मन पर अरुणिमा ही छाई हुई थी। सिर्फ उसी के मन पर ? मेरे मन में भी तो अरुणिमा का नाम संगीत की कलियां चटखा देता था। अरुणिमा मेरे लिये नशा थी, उसके लिये जीवन।

यही तो प्यार है। इसी को तो प्रेम कहते हैं। अरुणिमा के लिये असीमेन्दु ने सारा भविष्य बिगाड़ लिया है, अपने उत्तराधिकार से वंचित हो गया है, अपने लिये चुन ली है—दरिद्रता और निराशा।

और मैं ? अरुणिमा को शायद भूल ही गया था।

अरुणिमा! हमारे होस्टल सुपरिण्टेण्डेण्ट की लड़की—अरुणिमा सान्याल।

होस्टल के चौदह वार्डों से घिरा हुआ हरा-हरा मैदान हर शाम खेल-कूद के शोर-गुल से मुखर हो उठता। खेलते हुए कुछ लड़कों को देखते सभी। दो-तल्ले, तीन-तल्ले की रेलिंग जरा भी खाली नहीं रहती। दो सौ नब्बे लड़कों में से अधिकांश शाम होते-न-होते ही आकर जमा हो जाते थे, और होस्टल के पश्चिम की इमारतों में दो-तल्ले के एक बरामदे में आकर खड़ी हो जाती अरुणिमा सान्याल। सुपरि-ण्टेण्डेण्ट प्रोफेसर सान्याल की कन्या। दो सौ नब्बे निस्संग जीवनों की ज्वाला में, एक वही अमृत की बूंद टपकाती थी।

मैं और असीमेन्दु, कोई बहाना पाते ही अरुणिमा से मिलने पहुंच जाते। ऐसे भी हो, दो बातें करते, उसकी हंसी देखने के लिये उसे हंसाते।

एक दिन मैं सुई-तागा मांगने जाता, तो अगले दिन असीमेन्दु पहुंच जाता, 'कमीज

के बटन नहीं लग रहे हैं। लगा दोगी, अरुणिमा ?'

अरुणिमा की उम्र तब कम ही थी। हमारी बेवकूफी पर हंस-हंसकर लोट-पोट हो जाती। हमें प्रोफेसर सान्याल के पास खींच ले जाती, 'अपने छात्रों के करतब देखो तो, बाबा ! कमीज की बांह में कोट का बटन टांक लिया है !'

उसे क्या पता था कि यह सब हम जान-बूझकर करते थे। इसी तरह उसे काम दे-देकर और उसके छोटे भाई का दुलार करके हम उससे घनिष्ठ होते गये। तब हम दोनों ही एक-दूसरे के मित्र थे। फिर अनजान में ही कब हम दोनों के बीच ईर्ष्या का अंकुर फूटा, पता नहीं। मेल-खेल में ही बात बढ़कर जीवन के बीच दीवार बनने लगी। हम एक-दूसरे से छुपकर अरुणिमा से मिलने लगे। मुझे जब एक पोस्टकार्ड की फौरन जरूरत होती, असीमेन्दु को टिंचर-आयोडिन की जरूरत नहीं पड़ती। असीमेन्दु जब कालेज स्ट्रीट से लाई हुई आमों की टोकरी घर से आई हुई कहकर प्रोफेसर सान्याल को देने जाता, तब मुझे जाकर अरुणिमा से अपनी कीड़ों द्वारा कुतरी हुई कमीज को रफू करवाने का ख्याल भी नहीं आता। इस तरह एक-दूसरे से लुक-छिपकर हम दोनों ही अरुणिमा के हृदय का प्रवेश-पथ ढूंढ़ रहे थे। और पता नहीं क्यों, हम दोनों ही सोचते थे कि अरुणिमा का प्रेम मुझे ही मिला है। दूसरे से बस, साधारण स्नेह का नाता है, जब कि उसका व्यवहार दोनों के प्रति एक ही जैसा था।

सोचता था, अरुणिमा क्या इससे भी अधिक मोहक ढंग से पुतलियां नचाकर हंस सकती है ? असीमेन्दु के साथ क्या इस संगीतमय कण्ठ-स्वर में और भी अधिक आन्तरिकता डालकर बात कर सकती है ? उसके सामने भी क्या अरुणिमा इसी तरह शरीर नचाती है ? क्या असीमेन्दु का हाथ भी ऐसी ही सहजता से थाम लेती है ? रेडियो पर फुटबाल की कमेन्ट्री सुनते समय असीमेन्दु जब कागज पर नक्शा खींचकर फुटबाल की स्थिति समझाता है, तब अरुणिमा क्या कुर्सी की पीठ पार करके उसके कन्धों पर भी अपने कोमल शरीर का भार डाल देती है ?

आखिर मैं धीरज खो बैठा। एक दिन, न जाने क्या कहा था, कैसे कहा था, मुझे याद नहीं, याद करके ही शर्म आती है। पागल की तरह अचानक उसके सामने जा खड़ा हुआ था, उसे अचानक अपनी ओर खींचकर उच्छ्वसित होकर न जाने क्या-क्या अनर्गल बक गया था—हृदय की गहराई की बातें। प्रेम की, प्यार की बातें।

...खकर खिलखिलाकर हंस पड़ी थी। हंस-हंसकर लोट-
...हो गये हो क्या, सुनीत दा ? जाओ, सिर पर

या सिर्फ अभिनय ?

'मैंने असीमेन्दु के अनुरोध पर नहीं, तुम्हें सुखी करने के लिये ही बड़े साहब से कह-कर उसे नौकरी दिलाई थी। और असीम ने भी अपनी खुशी के लिये नहीं, तुम्हें सुख देने के लिये ही नौकरी की थी। तुम जानती नहीं अरुणिमा, वह तुम्हें कितना प्यार करता था।'

'जानती हूं।' फिर हंसी से अरुणिमा के ओंठ कांपेंगे।

'तुम हंस रही हो अरुणिमा, परन्तु···', पास ही खड़ी चूना-पहाड़ी की ओर इंगित करके मैं कहूंगा, 'मैं जब भी इस पहाड़ी की ओर देखता हूं, मेरा हृदय भर आता है।'

अरुणिमा चौंककर उस पहाड़ी की ओर देखेगी, मैं उसकी आंखों में सहानुभूति की छाया खोजूंगा। कहूंगा, 'तुम्हारा क्या ख्याल है, वह एक्सीडेण्ट में मारा गया है ?'

'एक्सीडेन्ट नहीं था ?' वह विस्मित कण्ठ से पूछेगी, 'तुम्हीं ने तो कहा था, एक्सीडेन्ट हुआ है। एक्सीडेन्ट नहीं हुआ था ?'

'नहीं, अरुणिमा। फैक्टरी के रजिस्टर और पुलिस के खाते में जो भी लिखा गया हो, मुझे पता है, असीमेन्दु एक्सीडेन्ट से नहीं मरा।'

'तो फिर ?' ढलती सांझ की रक्तिम आभा में उसकी आंखों के कोने चमक उठेंगे।

जो बात कभी किसी को न बताने का संकल्प किया था मैंने, जो बात कभी अरुणिमा के कानों तक न पहुंचाने की प्रतिज्ञा की थी, आज उस रहस्य का द्वार खोल देने को बाध्य हो जाऊंगा।

बताऊंगा, 'नौकरी से लगते ही उसने कैसे-कैसे सपने देखने शुरू कर किये थे। हर शाम हम दोनों मिलकर उसका घर सजाते थे। तुम्हारी पसन्द के सामान से ही वह घर सजाता था, और बिस्तर की चादर और खिड़की के पर्दों तक का रंग उसने तुम्हारी पसन्द का ही चुना था। जो फूल तुम्हें जूड़े में फबते थे, उन्हीं के पौधे उसने बाहर बगीचे में लगाये थे।'

वह अन्यमनस्कता का दिखावा करके दूसरी ओर देखती रहेगी, पर मेरे एक-एक शब्द को सुनने के लिये उसके कान लगे रहेंगे। फिर एक बार मेरी नजर बचाकर आंचल से मुंह पोंछेगी। पर मुंह की जगह आंखों पर ही उसका आंचल लगा रहेगा देर तक।

उसे जी हल्का करने के लिये कुछ समय देकर मैं कहूंगा, 'उसने पत्र में भी तुम्हें लिखा था यह सब। लिखा था : कब आ रही हो ? कब आकर इन पौधों को सींचने का भार लोगी ? और लिखा था : सुनीत को तुमने गलत समझा

था, अरुणिमा। हमारे नये जीवन का पहला घरौंदा उसीने गढ़ा है।'
वह आंख उठाकर देख न सकेगी, घुटनों में मुंह छुपा लेगी।
मैं कहूंगा, 'फिर एक दिन अचानक वह तुम्हें ले आने को चल दिया। जाते समय कह गया था—'शहनाई बजवाने की व्यवस्था कर रखना।' मां ने उसके हाथों में रुपये थमाकर कहा था : 'बनारसी साड़ी खरीदकर बहूरानी को पहना लाना, असीम। जिस तरह से तुम्हारी मां उसका घर में स्वागत करतीं, उसी तरह से मैं भी उसे आरती उतारकर घर में लाऊंगी।'
अरुणिमा मेरी बातें सह न सकेगी, फूट पड़ेगी। कहेगी, 'रहने दो सुनीत दा, मैं यह सब सुनना नहीं चाहती।'
'पर मैं तो सुनाना चाहता हूं।' मैं कहूंगा। पूछूंगा, 'सात दिन बाद जब मैं स्टेशन पर उसे लेने गया था, तो असीमेन्दु अकेला क्यों लौटा था? तुम्हें उसके साथ देखने की इतनी साध होने पर भी, तुम्हें उसके संग क्यों न पा सका? मैं यह जानना चाहता हूं, अरुणिमा।'
अरुणिमा कहेगी, 'हां, गलती मेरी ही थी, सब अपराध मेरा ही था। पर मुझे माफ कर दो, सुनीत दा। वे सब बातें मुझे अब मत सुनाओ। बीती को बिसर जाने दो।'
पर मैं सुनाये बिना नहीं रह पाऊंगा। कहूंगा, 'क्या मैं अकेला ही था? मां ने भी कितनी बार पूछा था, कितनी बार जानना चाहा था, पर असीमेन्दु ने कभी एक शब्द भी नहीं कहा। फिर तुम्हारी उसी परिचित हस्तलिपि के पतेवाला एक पत्र आया। वही पहली और अन्तिम चिट्ठी है, जो असीमेन्दु ने मुझे कभी भी नहीं दिखाई, कभी भी नहीं पढ़ने दी।'
फिर मैं आशा करूंगा, शायद अरुणिमा आगे का इतिहास जानने का आग्रह दिखायेगी, असीमेन्दु की कथा सुनने को व्याकुल हो उठेगी। पर उसके चेहरे पर उत्सुकता की क्षीण रेखा भी नहीं उमड़ी, मुझे उस व्याकुल विषण्णता की छाया भी नहीं दिखाई दी। घृणा के आक्रोश से मेरा सारा शरीर जल उठा। मैंने आगे एक शब्द भी नहीं कहा। पर याद आती रहेगी, असीमेन्दु की याद आती ही रहेगी।
चूने की चट्टानें तोड़ने के लिये डाइनामाइट लगाने के आधे घण्टे पहले खतरे की घण्टी बजती है। उस दिन भी बजी थी। यह घण्टी तो जंगली देहाती भी पहचानते हैं। और फिर असीमेन्दु को तो उस दिन उस सर्किल में ड्यूटी भी नहीं थी। उस सर्किल में उस समय उसे कोई काम भी नहीं था। फिर भी कारखाने के रजिस्टर में लिखा गया—एक्सीडेन्ट। पुलिस के रेकार्ड में भी यही लिखा

गया था। पर सब-इन्सपेक्टर पाण्डे ने जाते-जाते कहा था, 'एक्सीडेन्ट नहीं है यह सुनीत बाबू, स्युसाइड है। अरुणिमा सान्याल नाम की किसी लड़की को जानते हैं आप? ओवरसियर बाबू की जेब में उसकी लिखी हुई चिट्ठी थी।'

पर अरुणिमा से मैं यह सब नहीं कहूंगा। कहने को मेरा जी ही नहीं चाहेगा। जीवन में किसी ने सभी कुछ पाया था, और एक साधारण-सी लड़की से प्यार करके उसने सभी कुछ गंवा दिया था। आज इस लड़की से दो बूंद आंसू छोड़कर क्या और कुछ भी पाने का उसका हक नहीं है? लड़कियों का मन भी विचित्र है। यह अरुणिमा भी कैसी अद्‌भुत लड़की है!

सूखे गले से कहूंगा, 'चलो अरुणिमा, शाम हो गई।'

पर अरुणिमा उठेगी नहीं। अचानक वह मेरा हाथ कसकर पकड़ लेगी। कहेगी, 'मुझे पता है सुनीत दा, एक्सीडेन्ट नहीं हुआ था। मुझे पता है, उसने आत्महत्या की थी।' जोरों से रो पड़ेगी अरुणिमा।

तीन वर्ष का गोरा-गुदगुदा मुन्ना भी मां को रोते देखकर रो पड़ेगा। मुन्ने को छाती से लगाकर, अरुणिमा रोती ही जायेगी, रोती ही जायेगी।

अरुणिमा का रोना रोकने के लिये मुन्ना चुप हो जायेगा, खिलखिलाकर हंसने लगेगा, कहेगा, 'मां, चिड़िया...मां, चिड़िया।' उड़ते हुए पंछियों के झुण्ड की ओर इशारा करेगा मुन्ना। अरुणिमा उसे कलेजे से सटा लेगी।

सन्ध्या के धुंधले-धुंधले अंधेरे में हम टिंगलीटडांग की ओर बढ़ेंगे। कुछ क्षण चुपचाप साथ-साथ आगे बढ़ने के बाद अरुणिमा धीरे से कहेगी, 'लड़कियां एक बार जिसे दुत्कार देती हैं, फिर उसी की कृपा पर आश्रित रहने से बढ़कर लज्जा की बात उनके लिये क्या होगी, सुनीत दा?'

मेरे शरीर में झुरझुरी-सी दौड़ जायेगी। ध्यान आयेगा, आत्महत्या नहीं, एक्सीडेन्ट भी नहीं, हत्या हुई है असीमेन्दु की, और यह हत्या मैंने की है—मैंने।

स्तब्ध, निःशब्द आंवले की झालरदार पत्तियों में से लुका-छिपी खेलते हुए उदास-से चांद की ओर मेरी नजर नहीं जायेगी। पास की चूना-पहाड़ी अंधेरे में खो जायेगी। महुआ की शाखाओं में किसी पक्षी के पंख फड़फड़ाने की आवाज भी नहीं सुनाई देगी। जहां तक दृष्टि जायेगी, 'तीतर-रुदन का मैदान' फैला दिखाई देगा। ध्यान आयेगा, दिन की कोलाहलमय व्यस्तता में, शोर-गुल में, जंगली तीतर का रुदन दब जाता है, पर पति के स्नेह-सुहाग की ओट में, नन्हें गोरे गुदगुदे मुन्ने की हंसी के पीछे, आनन्द और उद्दाम प्रगल्भता के अन्तर में भी, एक हताश पराजित तीतरी रोती रहती है—दिन-रात, निःशब्द रोती ही रहती है।

अरुणिमा को बात याद आयेगी, 'तबीयत ही अगर ठीक होती, तो यहां क्यों

आती, सुनीत दा ?'

यह आनन्द का अभिनय, उजली-उजली-सी हंसी, धीरे-धीरे उसके चेहरे से पुछ जायेगी। एक क्लान्त-पीला, सुन्दर पर रोगशीर्ण, पसीने से भीगा शरीर धीरे-धीरे विस्तर से लग जायेगा। एक दिन अरुणिमा का रोगजीर्ण दुर्बल शरीर बिछौने की सफेद चादर से ढंक जायेगा। असीमेन्दु के लगाये हुए पौधों में रजनीगन्धा फूल उठेंगी। उन्हीं फूलों को लाकर अरुणिमा को सजा दूंगा मैं, और हवाई शर्ट, कार्डराय की पतलून और मोटे फ्रेम के चश्मे के मन के खाते में लिखा जायेगा—बीमारी : टी० बी०।

पर मुझे पता होगा, यह क्या था—बीमारी नहीं, आत्मनि शेष।

समरेश बसु

रेत का तूफान

ट्रेन लगभग एक घंटे देर से पहुंची।

सूर्य अस्त होने ही वाला है, लेकिन चारों ओर फैली उसकी लहूलुहान जिह्वा अभी भी मिटी नहीं है। गरम हवा के झपाटे चल रहे हैं। पांव-तले की पथरीली भूमि अभी भी अंगारों की तरह जल रही है।

गाड़ी की खिड़की से जलते हुए, धूसर 'तीन पहाड़ों' की पीठ दिखाई दे रही है। पश्चिमगामी सूर्य के जलते हुए पंजों के प्रहार से कोई भीमकाय पशु मानो सिमट-कर, सिर छुपाकर, मृतप्रायः होकर पड़ा हो।

पर गाड़ी जैसे-जैसे आगे बढ़ती जा रही थी, एक उलझन सामने आ रही थी। दूर वह क्या दिखाई दे रहा है? वह धुएं-सी धूल धरती से उठकर सारे आकाश को अंधेरा किये दे रही है। लग रहा है, वह भीमकाय पशु मृत्यु-यन्त्रणा से छटपटाकर टांगें पछाड़ रहा हो। उसके पांवों की धमक से मानो यह रेत उड़ रही हो।

गाड़ी और आगे बढ़ी है। पता चला है, बालू ही है यह। मानो कोई कापालिक पागल होकर, दिग-दिगन्त में अंधेरा फैलाकर, विकराल अट्टहास करता हुआ घूम रहा हो, आदिम मानव के भीत-विश्वासी मन को कोई खेल दिखा रहा हो।

आगे जल है या स्थल, कुछ भी समझ में नहीं आता। शायद चरागाह है, उसके बाद शायद गंगा होगी, क्योंकि दूर वहां किसी स्टीमर की अस्पष्ट-सी छाया

दिखाई दे रही है। और भी कुछ दिखाई दे रहा है, मानो ढेर-सारी प्रेत-छायाएँ इसी ओर लपकती आ रही हैं। देखते-देखते वे छायाएं आकर डिब्बे-डिब्बे में चढ़ने लगीं। पहचाना ही नहीं जाता कि वे लोग कुली हैं। तभी खुले खिड़की-दरवाजों से गरम-गरम रेत डिब्बे में आकर भरने लगी।

पल-भर में ही एक वीभत्स ताण्डव-सा आरम्भ हो गया—तूफानी हवा, जलती हुई बालू, लोगों की चीख-पुकार, और उनसे भी बढ़कर, कुलियों की धक्का-मुक्की।

मुक्ता और शिवनाथ के डिब्बे में भी ताण्डव शुरू हो गया था। मुक्ता जल्दी समझ नहीं पाई। शायद ढलते दिन की अलसता और गाड़ी के हिलकोरों से उसकी पलकें मुंदने लगी थीं। इस अचानक आक्रमण से घबराकर उसने मुंह-आंखों पर रूमाल रख लिया था। अब उसने बम्बई मिल्क के पूरे पल्लू से ही मुंह और सिर को लपेटते हुए झुंझलाकर पूछा था, 'यह सब क्या है?'

शिवनाथ की दशा भी कोई बहुत अच्छी नहीं थी। किसी तरह सांस रोककर रुंधे गले से उत्तर दिया, 'रेत का तूफान है।'

प्रकृति के इस दुर्योग पर मानो क्रुद्ध हो उठी थी मुक्ता। नाराज होकर बोली, 'रेत का तूफान है? कैसी मुसीबत है।'

पश्चिमी गंगा के ढालू तट पर दूर-दूर तक फैले रेत के इस विशाल साम्राज्य को किस दिशा से यह तूफान उठ आया है, कौन जाने। मनुष्यों की सुविधा-असुविधा का ख्याल इसे नहीं है। इस पर किसी का भी वश नहीं है। गाड़ी लगभग थमकर धीरे-धीरे सरकने लगी थी, पर तूफान का उद्दाम वेग बढ़ता ही जा रहा था।

झुंझलाहट बढ़ गयी जब तकलीफ की तरफ मुक्ता का ध्यान गया, 'उफ्! जान जा रही है। यह कहां आ गये हम?'

न जाने कितनी दूर से जवाब दिया शिवनाथ ने, 'संकरी-गली-घाट।'

'अब?'

'यहीं उतरकर स्टीमर पर चढ़ना होगा।'

'बाप रे!'

मानो डरकर मुक्ता ने दोनों हाथों से शिवनाथ को पकड़कर उसकी पीठ में मुंह छिपा लिया। शिवनाथ की आंखें भी रेत के कणों से धुंधला गई थीं। वह स्नेह से बोला, 'घबराओ मत, मुक्ता। स्टीमर पर सब ठीक हो जायेगा।'

मुक्ता मुंह बिसूरती हुई बोली, 'कैसे नहीं घबराऊं? सब तो तहस-नहस हुआ जा रहा है।'

शिवनाथ मुस्कुरा दिया। चेहरा झुकाकर बोला, 'घूमने-फिरने में थोड़ी-बहुत

गलती कर जायें, तो अन्धानुकरण करती भेड़ों की तरह सभी को मुसीबत में पड़ना होगा।

पर इस मुसीबत में भी, बंधी-बंधाई जिन्दगी के अतिक्रम का उल्लास शिवनाथ में जाग रहा था। यह बेहाली जैसी भी हो, फाइलों के बोझ से दबे हुए सब-एडीटर जैसी तो नहीं ही है। पत्नी के साथ भ्रमण के रास्ते का यह एक खेल भर है। यह भी अपना जोर आजमा ले। कब तक चलेगा आखिर? कम-से-कम रेत के अंधड़ का अनुभव तो हुआ। रेगिस्तान में भी क्या ऐसा ही होता है? जाने कौन-सी एक कविता उसकी सुधि के द्वार खटखटाने लगी। ठीक से याद नहीं आ रही थी। तभी सुलता की रुंधी आवाज सुनाई दी, 'आंधी है कि आफत! और कितनी दूर है जी?'

'बस आ ही पहुंचे हैं।'

सुलता की हालत देखकर शिवनाथ को दुःख भी हुआ, हंसी भी आई। साड़ी में आपाद-मस्तक लिपटकर सुलता मानो बम्बई सिल्क की एक थैली ही बन गई थी। शिवनाथ के बलिष्ठ कन्धे के सहारे वह मानो झूल गई थी। शिवनाथ ने कहा, 'जरा सीधी हो जाओ। हम ढाल पर उतर रहे हैं।'

सुलता की संत्रस्त आवाज सुनाई दी, 'गिर तो नहीं जायेंगे?'

'नहीं।'

स्टीमर पर पांव रखते ही बालू का प्रकोप एकदम समाप्त हो गया। हवा शायद दक्खिन-पूरब की ओर चल रही थी। या फिर पागल स्वच्छन्द हवा होगी, जिसकी दिशा का कोई ठीक-ठिकाना नहीं रहता। नदी पर भी हवा बह रही है, पर इसमें जल-कण हैं, बालू नहीं।

दो-तल्ले की डेक पर आकर शिवनाथ कुलियों का किराया चुकाने और सामान संभालने में व्यस्त हो गया। सुलता शरीर से बालू और मिट्टी झाड़ने में व्यस्त थी। उसे कम-से-कम यह तसल्ली थी, कि औरों की हालत भी उससे अच्छी नहीं है।

दो-तल्ले में भी, पहले और दूसरे दर्जे में भी, कोई सुविधा नहीं है। बंगाल की गर्मी से जलते मैदानों से घबराकर पहाड़ों की ओर जाते सैलानी तो हैं ही, उत्तरी बंगाल और आसाम जानेवालों की भीड़ भी इसी स्टीमर में भरी है।

किसी तरह थोड़ी जगह बनाकर सुलता ने शिवनाथ को भी बुलाया। उसकी सफेद झक भौंहों को देखकर वह हंस पड़ी। फिर [illegible] रूमाल से उसका चेहरा साफ करने लगी।

शिवनाथ ने कहा, 'इतनी रेत आसानी से नहीं छूटेगी, सुलता। अभी रहने दो।'

मुक्ता ने भौंहें चढ़ाकर रोब जमाया, 'धूल-मिट्टी से तुम्हें तो जरा भी घिन नहीं है। कम-से-कम मुंह तो पोंछ लो।'

शिवनाथ ने देखा, मुक्ता मुंह पोंछ चुकी है, इसलिए उसे भी छुटकारा मिलने-वाला नहीं है। रूमाल निकालकर उसने भी मुंह पोंछ डाला। फिर मुक्ता ने हेण्डबैग खोलकर रूमाल निकालने-निकालने ढंग को एक बार फिर मुग्ध दृष्टि से देखा। बोली, 'कमाल है! गजब का हाथ है!'

फिर मुंह बिचकाकर व्यंग्य से बोली, 'रेल का सारा रास्ता तो पति-सेवा और किताब पढ़-पढ़कर ही बीत गया, मानो कितनी भोली और सीधी हो! पर बार-बार हमारी तरफ घूरे भी जा रही थी।'

शिवनाथ ने सहमकर चारों ओर देखा। जिसको लक्ष्य करके यह सब कहा जा रहा है, वह कहीं आस-पास ही न हो। वह हंसकर कुछ धीमे स्वर में बोला, 'हमें ही तो घूर रही थी, हमारे ढंग को तो नहीं?'

मुक्ता भी हंसी, पर सूखी हंसी, 'कौन जाने!'

शिवनाथ उठ खड़ा हुआ।

'कहां जा रहे हो?'

'कुछ खाने-पीने की व्यवस्था करता हूं। सुना है, उस पार कोई इन्तजाम नहीं है। बस फिर कल दोपहर को दार्जिलिंग पहुंचकर ही कुछ मिलेगा।'

स्टीमर चल पड़ा था। सभी डाइनिंग-रूम की ओर लपक रहे थे। मुक्ता भौंहें चढ़ाये, हैरान-सी, जाते हुए शिवनाथ की ओर देखती रही। ऐसे गन्दे हाथ-पांव लिये, इतनी भीड़ में कोई कुछ खा सकता है?

खा तो सकते ही हैं। नहीं तो इतनी दौड़-भाग क्यों करते? और शिवनाथ भी बैरे के हाथों खाने की प्लेट लाकर मुक्ता के सामने क्यों ला धरता?

आखिर गिलास के पानी से ही हाथ धोकर शुरू करना पड़ा। मुक्ता का जूड़ा कभी का खुल चुका था। अब साड़ी का आंचल भी नीचे लोटने लगा था। रेत के झपाटों से नायलान भी कभी का मुरझा चुका था। आखिर शिवनाथ से रहा नहीं गया। वह चुपके से कान में बोला, 'तुम्हारे ब्लाउज का बटन कब से खुला पड़ा है, कब बन्द करोगी?'

मुक्ता का चेहरा फक् पड़ गया। दबी नजर से देखा, तो बात सही थी। फुसफुसाकर बोली, 'असभ्य कहीं के! इतनी देर से क्यों नहीं कहा? बायें हाथ से पल्ला ठीक कर दो, जल्दी।'

पल्ला दुरुस्त करते-करते शिवनाथ ने कहा, 'कैसा अंधड़ चल रहा है!'

मुक्ता का शरीर भरा हुआ जरूर दिखाई देता है, पर यह कृत्रिम नहीं है।

'अरे नहीं, नहीं, कुछ नहीं खोयेगा। तुम निश्चिन्त रहो।' शिवनाथ ने हंसकर सान्त्वना दी।

सुलता बोली, 'निश्चिन्त कैसे रहूं? इन मुसीबतों की बात तुमने पहले क्यों नहीं कही?'

शिवनाथ ने कहा, 'मुझे क्या पता था?'

पास ही एक प्रौढ़ सज्जन बोल उठे, 'यह कोई रोज की बात थोड़े ही है। बीच-बीच में कभी-कभी ही ऐसा तूफान आता है। आज हम लोगों के ही नसीब में लिखा था, और क्या।'

स्टीमर मुड़कर जेटी से सट गया। अगले ही पल फिर प्रेत-छायाओं जैसे कुली डकैतों की तरह लपकने लगे। तूफान का शोर जितना है, लोगों का कोलाहल उससे भी ज्यादा। निचली डेक पर हो-हल्ला, मार-धाड़ चल रही थी। कुली लोग ऊपर आकर सामान के लिये खींचतान कर रहे थे। ऊपर के लोग भी धक्का-मुक्की करके जल्दी-से-जल्दी नीचे उतरने की कोशिश कर रहे थे। बच्चों का रोना, लड़कियों की चीखें और कुलियों का शोर-गुल, सब मिलकर घमासान मचा हुआ था।

अब लग रहा था मानो स्टीमर पर भी कोई मुट्ठी भर-भर बालू फेंककर मार रहा हो। लू जरूर बंद हो गई है, पर पश्चिम से आती इस उन्मुक्त रूखी हवा में अभी भी गर्मी का आभास है। तारों की बात तो दूर, आकाश तक नहीं दिखाई दे रहा है। दिखाई कुछ दे रहा है, तो एक धुंधली-सी रोशनी, जो जरा-सा भी प्रकाश नहीं दे रही है।

शिवनाथ छटपटा रहा है। उसके सामने ही इतने लोग उतर गये, अब उससे रुका नहीं जा रहा है। उसने कुली को सामान उठाने का आदेश दिया।

सुलता ने उसे कठिन बाहुपाश में जकड़ रखा है। शिवनाथ के आगे-पीछे, इधर-उधर लोगों की भीड़-ही-भीड़ है। कौन किसे धक्का दे रहा है, कुछ समझ में ही नहीं आता। सभी एक-दूसरे को धकेल रहे हैं। इसी धक्का-मुक्की में वह मानो सीढ़ियों पर पांव रखे बिना ही नीचे उतर आया। सुलता बार-बार कांप रही है, पर अभी इस ओर ध्यान देने से नहीं चलेगा। बल्कि शिवनाथ सोच रहा है, इतनी भीड़ में दुबके रहने पर बालू के आक्रमण से कुछ मुक्ति ही मिलेगी।

सीढ़ी से उतरते ही सुलता चीख उठी, 'उफ़! कुछ दिखाई नहीं देता।'

'देखने की जरूरत नहीं है। कुछ बोलो मत। मुंह में फिर से घुस जायेगा।'

अब लगा कि सुलता सचमुच ही रो देगी। बोली, 'अभी बाकी है क्या? बा!

तो भरी ही है मुह में।'
शिवनाथ सांस रोककर बोला, 'कसकर पकड़ना सुल्ता, लकड़ी की सीढियां हैं। भीड़ भी बहुत है यहां।'
'कम किस जगह है ?' शिवनाथ के शरीर के किसी अंश से ही मानो सुल्ता क्रोध और दुःख से भरकर बोली।
पर सीढ़ी पार करते-करते शिवनाथ को लगा कि सुलता का बन्धन शिथिल होता जा रहा है।
'क्या हुआ ?'
'कुछ नहीं', सुलता लगभग अस्फुट स्वर में बोली।
सीढ़ियां समाप्त होते-न-होते सुल्ता और शिवनाथ का साथ छूट गया। सीढ़ियो के पार आते ही रेत के प्रचण्ड झपाटो का आक्रमण हुआ—आंख, नाक, मुह, सब भर उठे। आखो मे मानो सैकड़ो चीटियो के विषैले डंक फूट पड़े। आंखें बन्दकर, हाथ बढ़ाकर शिवनाथ ने पुकारा, 'सुलता।'
पास की भीड से ही उत्तर आया, 'यहां हू।'
लोगो के धक्के से शिवनाथ एक ओर सरक गया। उसने आवाज दी, 'इधर आओ। ऐ कुली।'
कुली पहले ही रुक गया था। आखें मलकर शिवनाथ ने किसी तरह देखा। देखा, सामने ही सुल्ता का चूड़ियो भरा हाथ फैला था। शिवनाथ ने हाथ पकडकर एकबारगी उसे हृदय के नजदीक खींच लिया। मुह में रूमाल फसाकर किसी तरह बोला, 'बात मत करना।'
सुल्ता ने उत्तर दिया, सिर्फ, 'हू।'
वह शिवनाथ का सिर्फ कन्धा न पकडकर, दोनो हाथ फैलाकर, उससे लिपट गई। मनुष्य का मन ही विचित्र है। शिवनाथ को अचानक ही सुलता बड़ी अच्छी लगने लगी। सुल्ता ने मानो सिर्फ अपने प्राण बचाने के लिये नहीं, शिवनाथ को बचाने के लिये ही उसका दृढ आलिंगन किया है। अब वह सहारे पर भूल-भूल नहीं पड़ती, बल्कि लगता है, शिवनाथ के ठोकर खाने पर वह उसे भी सम्भाल लेगी।
शिवनाथ ने बाये हाथ से उसे और भी सटा लिया। इतना अच्छा लगा कि वह सोचने लगा, इस दुर्योग में उसने सुल्ता को फिर से, नये रूप में पाया है। शिवनाथ हैरान हो रहा था, तूफान के हिलकोरे, मानो उसके रक्त को ही आन्दोलित कर रहे थे। वह रेल की अस्पष्ट छाया को ओर द्रुतगति से बढ़ने लगा, पर रेत का अंधड़ बढ़ने ही नही दे रहा था। मिट्टी, बालू, सब छिटक-छिटककर

चेहरे पर लग रहे थे। हवा मानो धमकाती, फुफकार रही थी और अगले ही पल दूर जाकर ताली बजा-बजाकर खिलखिलाकर हंसने लगती थी।

गाड़ी कितनी दूर है? लोगों की धक्का-मुक्की, भाग-दौड़, चीख-पुकार! उसी बीच में, पछाड़ खाकर गिरे ऊंट-जैसी छायावाले कमरे में से आवाज आ रही थी, 'चाय गरम, गरम नाश्ता।'

शिवनाथ को लगा कि सुलता हंस रही है। उसने सिर झुकाकर लगभग बन्द स्वर में पूछा, 'हंस रही हो?'

चकित क्षण के एक झटके से सुलता मानो स्तब्ध हो गई। पर अगले ही पल सहज होकर बोली, 'हां। तुम्हारे शरीर में एकाएक इतनी शक्ति कहां से आ गई, यही सोच रही हूं। मुझे तो पीस डाला तुमने!'

हंसने की कोशिश करते ही शिवनाथ के शरीर में एक विद्युत तरंग-सी दौड़ गई। वह तब भी आगे की ओर बढ़ रहा था। सामने रोशनी की ओर देखने की चेष्टा की उसने, पर उसकी सारी अनुभूतियां उस समय उन दो हाथों के प्रगाढ़ आलिंगन के स्पर्श से बारूद की भांति विस्फोटक हो उठी थीं। उसकी प्रदीप्त आंखों में रेत घुसने लगी। उसने पुकारने की कोशिश की, पर तूफान ने उसके मुंह पर पंजा मारकर उसे चुप करा दिया। उसने फिर मुंह खोला। पुकारा 'सुलता!'

फिर एक चकित स्तब्ध पल आया। शिवनाथ की देह से लिपटी छाया मानो बिजली के झटके से छिटककर अलग हो गई। तूफान के गर्जन के बीच भी एक अस्फुट चीख सुनाई दे गई। शिवनाथ ने देखा, लाल बम्बई सिल्क की जगह हल्का आसमानी जार्जेट है। रंग भी गोरा नहीं, श्यामल सलोना है। और यह सुलता नहीं, लीला है—वही लीला!

अंधड़ भी मानो पल-भर के लिये थमकर रुक गया। [illegible] साफ हो गई। [illegible] और विस्मय से भरी [illegible] आवाज आई, 'आप? आप [illegible]? आप [illegible]?'

पीछे से ताली बजा-बजाकर अट्टहास कर रहा था। लकड़ी की सीढ़ियों के पास आकर उसने जोरों से पुकारा, 'सुलता ! सुलता !'
लोगों की भीड़ के बीच से सुलता का रुलाई से रुंधा कण्ठ-स्वर सुनाई दिया, 'आगये ? आगये तुम ? यह रही, यह रही मैं, यह रही !'
भीड़ को धकेलती हुई सुलता आकर तेजी से शिवनाथ से लिपट गई। मालूम पड़ा, सुलता की चीख-पुकार से ही यह भीड़ इकट्ठी हुई थी। चारों तरफ से आवाजें आने लगी, 'चलो, मिल गये !'
समुद्र के आतंक को पार कर आने पर अब सुलता को रुलाई रोके नहीं रुक रही है। शिवनाथ कुछ अन्यमनस्कता से ही उसे सान्त्वना देने लगा, 'रोओ मत सुलता, रोने की क्या बात है ? ऐसी जगह पर भी कभी कोई खो सकता है ? वह सामने तो स्टेशन है, वहीं पर मिल जाते हम। तुम्हें छोड़कर तो मैं चला जाता नहीं।'
रुदन के बीच भी सुलता मान कर बैठी, 'मुझे छोड़कर तुम गये कैसे ?'
शिवनाथ की दृष्टि के आगे छायाओं का रेला चला जा रहा था। कहा, 'जान-बूझकर थोड़े ही छोड़ गया था। मैं समझा था, तुम साथ-साथ ही हो।'
रेत घुसने की परवाह किये बगैर सुलता मुंह खोलकर बोली, 'कैसे समझे ? मैं तो तुमसे लिपटकर ही चल रही थी।'
शिवनाथ कुछ सभल गया। कुछ देर चुप रहकर कुछ कहने का उपक्रम किया, फिर रुक गया। सोचा, सुलता इसे अपने प्रति अन्याय मान बैठेगी। कहा, 'तुम भी खूब हो ! इस भीड़ में सभी तो सब के साथ लिपटे चल रहे हैं। अब...'
वह रुक गया। वही बिजली का खम्भा। आंखों पर से रूमाल कुछ खिसकाया शिवनाथ ने। देखा, वह महिला एक होल्डाल के ऊपर हाथों से मुह ढके बैठी है। पास ही उसके पति बैठे हैं। शिवनाथ वहां जाय ?
सुलता बोली, 'रुक क्यों गये ?'
'नहीं, कुली को खोज रहा हू। यहीं कहीं था।'
उसकी आवाज सुनकर ही महिला ने आंखें उठाई। बालू के तूफान में सभी लोग छाया-से दिखाई दे रहे थे। फिर भी शिवनाथ को लगा, महिला ने उसकी ओर देखा है। फिर नजर घुमा ली। उसी दृष्टि का अनुसरण करते हुए शिवनाथ की नजर कुली पर पड़ी। सुलता को लेकर वह आगे बढ़ गया।
अब रेल में चढ़ने की बारी थी। यहां भी वही धक्का-मुक्की, मार-पीट। रिजर्वेशन-क्लर्क बेचारा भला आदमी था, किसी तरह इन्हें चढ़ा दिया। पर सारे डिब्बे में सिर्फ रेत-ही-रेत भरी थी। हरे चमड़े की सीटों पर सफेद रेत फैली

थी। चारों तरफ फैले आदमी भी बालू के पुतले नजर आ रहे थे। न सुलता शिवनाथ को पहचान पा रही थी, न शिवनाथ सुलता को। सब लोग जल्दी-जल्दी खिड़कियों के शीशे गिरा रहे थे। शीशे गिरते-न-गिरते रेत के झपाटे आ-आकर खिड़कियों से टकराने लगे। तूफान मानो जिद्द किये बैठा था; जितनी भी बाधा पड़ेगी, उतनी ही तेजी पकड़ेगा। शीशों के नीचे जो बारीक-सी दरार रह गई थी, उसमें से भी हवा के झपट्टों के साथ बालू घुसी चली आ रही थी।

सुलता बैठ गयी। शिवनाथ से बैठा नहीं गया। बाहर जाने का इरादा करके दरवाजे की ओर बढ़ा, पर उसकी चाल सहज नहीं थी। अभी वह हत्-बुद्धि किंकर्तव्यविमूढ़-सा था। उसकी आंखों में एक विचित्र-सी शून्यता छाई थी।

शिवनाथ की यह दशा देखकर सुलता कुछ चिन्तित हो उठी। छोटे-से डिब्बे के सभी यात्रियों को चौंकाती हुई वह चीख उठी, 'सर्वनाश हो ही गया आखिर !'

शिवनाथ मुड़ा, पर उसकी आंखों का सूनापन ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। आवाज में भी उतार-चढ़ाव का नाम तक नहीं था, 'क्या हुआ ?'

सुलता ने शिवनाथ का कुर्ता पकड़ कर खींचते हुए कहा, 'मनीबैग चला गया न ?' कहते-कहते उसने जेब में हाथ भी डाल दिया। शिवनाथ ने कहा, 'नहीं तो। बटुआ तो है।' साथ ही सुलता के हाथ में बटुआ आ गया। उसके नयनों की चमक भी लौट आई। बोली, 'तब फिर तुम ऐसे क्यों हो रहे हो ?'

अपने को संभालकर शिवनाथ बोला, 'कैसे ?'

'जाने कैसे ! तुम्हें जैसे कुछ हो गया हो। अब भी डर लग रहा है तुम्हें ? क्यों ? मैं तो मिल गई हूं !'

ठीक ही तो है सब। कुछ भी तो नहीं खोया है।

कुछ खोया है या नहीं, यही देखने के लिये सुलता ने फिर एक बार सारे सामान पर निगाह दौड़ा ली।

शिवनाथ के पसीने से भीगे चेहरे पर बालू चिपक-चिपककर उखड़ते हुए पलस्तरवाले पुराने मकान का-सा दृश्य उपस्थित कर रहा था। सूखे ओठों पर भी रेत जम गई थी, बाल सारे सफेद हो गये थे, बिलकुल जोकर-सा दिखाई दे रहा था। उसी की तरह, मानो पेशे की मजबूरी से हंसकर, बोला, 'नहीं, कुछ खोया नहीं है। वही···मतलब···ये इतनी भीड़-भाड़···हल्ले-गुल्ले से···'

सुलता ने मुंह पोंछते-पोंछते कहा, 'झमेले की भी हद थी !'

गाड़ी सरकने लगी थी। साफ लग रहा था, तूफान अभी भी गाड़ी पर हमला कर रहा है। अभी भी इधर-इधर की दरारों में से सांय-सांय करता बालू घुसा

चला आ रहा है। अब भी उस पागल का अट्टाहास बदस्तूर जारी है। अब भी वह ताली बजा-बजा कर नाच रहा है।
शिवनाथ गुसलखाने में घुसा। दरवाजा बन्द करके घूमते ही शीशे से सामना हो गया। ठीक उसी समय उस आलिंगन की अनुभूति उसके रोम-रोम में रिसने लगी। शिवनाथ ने अपने-आपको धिक्कारा। अपनी प्रतिच्छाया की ओर से नजर फेर ली। फिर भी सारे शरीर में वह विस्मित-सी गूंगी अनुभूति धक्-धक् करके जल रही थी। उसकी आंखों का सूनापन किसी तरह से भरने में आ ही नहीं रहा था। उसने मानो भयभीत दृष्टि से देखा, कितने सहज भाव से हाथ बढ़ाकर बैग उठा लिया था उस लड़की ने। पर बैग उसने लिया नहीं। अन्त में जो चीज उसने ली, उसका इस संसार में कोई मूल्य नहीं है। समाज, नीति, युक्ति, किसी के सामने उसके लिये कोई कैफियत नहीं दी जा सकती। एक विवाहित पुरुष, एक साधारण सब-एडीटर की इस लज्जास्पद तृष्णा की ग्लानि मानो मधुमक्खी की तरह उसके अपने शरीर में डंक मारने लगी।
और वह ? देखकर लगा था कि पति को वह कह नहीं सकी थी। कहीं वह भी इसके, *पर-पुरुष के, आलिंगन की ग्लानि अनुभव न कर बैठी हो!* वे लोग भी दार्जिलिंग जा रहे हैं। शायद वहां मुलाकात भी हो। उन आयत नयनों में तीव्र सन्देह झलक उठेगा। पहाड़ी हवा में रुंधे हुए तीक्ष्ण स्वर से भर्त्सना करेगी, 'आप क्यों ? आप कैसे ?'
जवाब क्या देगा ? शिवनाथ की अनुभूति के पिंजरे में बन्द गूंगा तब घुट-घुटकर मरने लगेगा और एक भयकर विस्मय से असहाय होकर पत्नी सुलता के स्नेह से रचे संसार की ओर देखता रहेगा।
नल खोल दिया शिवनाथ ने। पानी गरम और रेत-मिला था। लगता है, इस बालू ने कोई भी जगह नहीं छोड़ी है। इसी रेत-मिले गरम पानी के छींटे अपने चेहरे पर देने लगा शिवनाथ।
जब बाहर आया, तब भी सारे कमरे में रेत उड़ रही थी।

सुलता ने पुकारा, 'ए, एजी, उठो ना!'
शिवनाथ तब भी रजाई लपेटे पड़ा था। सुलता मेकअप वगैरह करके ऊनी लबादा ओढ़े, बाहर जाने को तैयार हो चुकी थी। दार्जिलिंग आये दस दिन हो चुके थे।
शिवनाथ थके स्वर में बोला, 'उठने की तबीयत नहीं हो रही है। वह उत्तरवाली खिड़की जरा खोल दो न, सुलता।'

शिवनाथ ने देखा—सुनील आकाश की पृष्ठभूमि में रजत-मुकुट पहने कंचनजंघा को। खिड़की से सिर निकालकर झांककर उसने देखा, उत्तर से दक्षिण तक सब तरफ अर्द्धचन्द्राकार रूप में नीले नभ से तुषार-धवल खिलखिलाहट झरी पड़ रही थी। और भोटिया बस्ती से बैग-पाइप के स्वर में बहती आ रही थी—एक विचित्र-सी, आदिम पहाड़ी-रागिनी। बस्ती आज हमेशा की तरह गुड़ी-मुड़ी होकर नहीं पड़ी थी, झरने की भांति गति-चंचल हो उठी थी। छोटे-छोटे बच्चे शोर मचाते हुए दौड़-भाग कर रहे थे।

नीले आकाश, तुषार-शृङ्ग के उदय, और चमकीली धूप ने मिलकर आज न जाने किस उत्सव का आयोजन कर डाला था, जिसमें सभी मानव आमन्त्रित थे।

सुलता दरवाजे की ओर दौड़ गई। फिर रुककर बोली, 'मैं जा रही हूं बाहर! तुम आ जाना।'

वह चली गई। शिवनाथ बैठने जा रहा था, पर बैठ न सका। मुंह-हाथ धोना पड़ा। चाय पीकर कपड़े भी बदलने पड़े। माल पर आ पहुंचा वह। परिचित बेंच की ओर देखा। लीला नहीं है। उसके पति हैं, पर आज वे बैठे नहीं हैं। ऊनी कपड़े पहने चहलकदमी कर रहे हैं।

जाने कहां से सुलता दौड़ आई। पूछा, 'तुम कहीं जा रहे हो?'

'तुम जा रही हो?'

'नहीं। मैं बस बैठी-बैठी देखती रहूंगी। आज शायद कंचनजंघा छिपेगी नहीं। ना?'

'शायद। तो फिर तुम बैठो। मैं एक चक्कर काट आता हूं।'

शिवनाथ भोटिया बस्ती के पास से ही बर्च-हिल रोड के टेढ़े-मेढ़े ढलानदार रास्ते पर उतर गया। उस पथ पर कंचनजंघा अपना साथी लगता है। आज कोई भोटिया जवान शायद सुबह से ही नशे में मतवाला हो बैठा है। या फिर कोई धार्मिक उत्सव है शायद। आज बैग-पाइप उसके मुंह से नहीं हटेगा। वह अपनी आवाज उस तुषार-शृङ्ग तक पहुंचाकर ही रहेगा।

बर्च-हिल रोड के एक छोर पर, गवर्नर-हाउस के पश्चिमी द्वार के पास आ पहुंचा शिवनाथ। सामने ही आबजरवेटरी है, पास ही उत्तर की ओर वह निर्जन पथ।

उसी निर्जन पथ के मोड़ पर जा खड़ा हुआ वह। लीला! लीला दक्षिण की ओर के रास्ते से उत्तरी मोड़ पर आकर थमककर रुक गई। रुककर एक बार पीछे मुड़कर देखा। फिर शिवनाथ से कुछ हाथ दूर से ही, उत्तर के गुप्त पथ को जगाती हुई चलने लगी।

शिवनाथ का रास्ता मानो रुक गया। वह उसी तरह खड़ा रहा। लीला धीरे चल रही है—बहुत धीरे। न जाने कितने समय के व्यवधान से उसकी चप्पलों की धीमी-धीमी ध्वनि मानो रास्ते को धीरे-धीरे जगा रही है। शिवनाथ दो कदम हटकर सड़क की रेलिंग से टिककर खड़ा हो गया। लीला भी रुक गई है। उत्तर की ओर सरककर वह भी रेलिंग पकड़कर खड़ी हो गई। एक ही रेलिंग थामे दोनों छह-सात गज के फासले पर खड़े थे। पर शिवनाथ को लग रहा था मानो लीला का हाथ उसके हाथ के ऊपर ही आ टिका है।

अपने में ही मगन कोई आदमी उस रास्ते से गुजर गया। लेबोंग के पठार पर धूप झिलमिला रही है। निरभ्र, नीले आकाश पर कंचनजंघा की तुषार-शुभ्र बाहें फैली है। लाल, नीले, हरे, पीले जंगली फूल घास के मैदान में बिखरे पड़े हैं। गुलाब धूप में खिलखिला रहे हैं, और देवदारु के पत्ते सोने से नहाये खड़े हैं। फूलों के रंगों में तितलियां खो-सी गई है। मन्द पवन बह रहा है। बीच-बीच में एक-दो पत्ते झर जाते हैं। और उस पागल भोटिया युवक के बैग-पाइप का आदिम-स्वर अविश्रान्त बहा जा रहा है।

यह सब आज ही होना था। क्या करे शिवनाथ? उसे लगा, मन-पिंजर में कैद उस गूंगी अनुभूति को वाणी देने के लिये ही इतना समारोह हुआ है। तभी उसके हृदय का रक्त मानो नाच-नाच उठता है। मुड़कर लीला की ओर देखा। देखा, लीला ठीक उसे नहीं, उसकी ही दिशा में देख रही है। उसका सांवला सलोना चेहरा धूप में कोमल चिकने पत्तों-सा दिखाई दे रहा है। दीर्घायत नेत्रों में धूप से चमकते तुषार-शृङ्गों की छाया है। शिवनाथ रेलिंग के सहारे कुछ कदम आगे बढ़ा। लीला आंखें उठाकर सलज्ज भाव से हंसी।

शिवनाथ ने बड़ी कोशिश से कहा, 'आपके पति अच्छी तरह से हैं?'

'हां', लीला ने ललाट में रूखे बालों की एक लट हटाते हुए दबे स्वर में कहा। फिर कहा, 'अपनी पत्नी को साथ लेकर क्यों नहीं घूमते आप?'

शिवनाथ ने कहा, 'उसे ज्यादा चढ़ने-उतरने में दिक्कत होती है।'

फिर चुप्पी। फिर, 'आपके पति की तबीयत क्या ठीक नहीं है?'

लीला के ओठों की स्वाभाविक लाली एक मधुर-मन्द हास से उज्ज्वल हो उठी। कहा, 'नहीं, वे सोचते हैं कि उनकी तबीयत बहुत खराब है। दिन-रात फर्म का हिसाब-किताब करते-करते थक जाते हैं।'

सड़क पर से कुछ और लोग गुजर गये। वे दोनों कंचनजंघा को निहारते रहे। एक सूखा पत्ता झर गया। दोनों ने ही उस पत्ते को देखा। फिर नज़रें मिलीं। दोनों मुस्करा दिये। शिवनाथ और आगे बढ़ आया। कहा, 'देखिये, उस दिन

ऐसी बात है...अगर इस तरह उसे पहचान पाता मैं? अनसोफिस्टिकेटेड... माने, मुझे तो बाकायदे घृणा हो रही है, हमारे सामने जो रंगी हुई औरतें कटलेट चबा रही हैं, हो सकता है, उनके दांतों में पायरिया हो। क्या करूंगा उनके ब्लाउजों के बीच के अर्थहीन दो टुकड़े गोश्त लेकर? ओह!'

हवा जैसे घास के बीच से भी उंगलियां चला रही है। इतना आसान। तीन नवयौवना लड़कियां फुचके खा रही हैं। उनके टटके होठों और चिबुकों पर यौवन की थोड़ी-सी छाया है। समस्त समय-खंड विद्युत की गोद में पड़े बादल की तरह कांप रहा है।

रजत ने कुछ नहीं कहा। क्या होगा बोलकर? मैं सोचकर तो बोलता नहीं। और ठीक सोचता भी नहीं। अशोक इस बात पर विश्वास नहीं करेगा। यदि करेगा तो समझ जायेगा कि मैं किसे सोचकर यह बात कह रहा हूं। किसका शरीर, किसका मुख, किसका मन? क्या तुम मीनू के शरीर का किसी भाषा में अनुवाद कर सकते हो? सबसे अश्लील अथवा सबसे परिष्कृत भाषा में? मीनू कभी-कभी तुम्हारे पांवों पर मुंह रखकर सोती है, कभी-कभी, सोते-सोते तुम्हारे मुंह पर भी पैर रख देती है। तुम्हारे शरीर की गंध ले रही हूं', कहकर, मीनू तुम्हारे छोड़े हुए कपड़ों को अपने गालों से सटा लेती है। तुम अकेले-अकेले बहुत-से सिगरेट और ढेर-सारे चाय के प्याले सोख कर घर आते हो। मीनू के होठों पर तुम्हारे पैरों की धूल लग जाती है, उसकी जीभ पर तुम्हारे नमकीन, पसीने से भीगे गालों का स्वाद उतर आता है। मीनू कहती है, 'ओह! तुम्हारी सांस भुनी हुई मूंगफली की तरह सूखी है। आग और निकोटीन की तरह।' तुम्हारी नाक से अपनी छोटी-सी नाक सटाकर सांस खींचती है और कहती है कि वह तुम्हारी सब खांसी, तुम्हारे हृदय की गा...आ...री जलन को सोख लेगी।

'एक नई कहानी लिखी है, रजत।'

'अच्छा। तब तो...।'

'हां, बड़ा खुश हूं। सुनोगे? ना, इस रोशनी में पढ़ना संभव नहीं। कहानी तुमको ही लेकर लिखी गयी है, अद्भुत शिल्प बन पड़ा है।'

'और प्लाट?'

'एक लेखक है, जो अब लिख नहीं पा रहा है और उसी को लेकर [illegible] का [illegible] खड़ा हो रहा है उसके अन्दर में।'

'यही प्लाट है? बूढ़े हो गये हो तुम शर्मा। अरे बाबा, तुम [illegible] को [illegible] हो गया गया है? [illegible] शिल्प को लेकर [illegible]!'

'रजत, तू क्या पागल हो गया है ? जो सोचूंगा वही तो लिखूंगा, नहीं तो क्या तेरी बात सुनकर लिखूंगा ? इससे अच्छा है, तू लिख। जितना भी कूड़ा निरोगा, पढ़ूंगा, किन्तु समालोचना मत कर। तेरी यह समालोचकीय मुद्रा सचमुच असह्य है।'

अशोक उठ खड़ा हुआ है। उसकी आंखें कैसी काली हैं। सिर पर, सांप के फन की तरह, उसके बाल हवा में हिल रहे हैं और तीखी लम्बी नाक तथा गर्दन की सुन्दर भंगिमा पर जैसे किसी अन्य ग्रह का प्रकाश पड़ रहा है। उसकी नाड़ियों में बहती रक्त की प्रत्येक बूंद में जीवन की हंसी-खुशी, हीरा-पन्ना नाच रहे हैं। उसकी पीड़ा की अग्नि कभी स्निग्ध शुभ्र ज्योति के समान, तो कभी लालवर्ण प्रवहमान मरुदाह के समान हो जाती है। और बीच की खाली जगह दाह की फसल और सर्जना के दु:ख वासना तथा इच्छा से भरी हुई है।

अशोक के चले जाने के बाद भी रजत बहुत देर तक बैठा रहा। इसी पार्क में बैठकर, उसने अपनी पहली कहानी गढ़ी थी। 'मछली'—गगनेन्द्रनाथ ठाकुर के चित्रों की तरह 'ग्रोटेस्क शहर'। घूमते-घूमते मन की किसी अद्भुत लिफ्ट में चढ़ते-उतरते रहना। वह विचित्र प्रकार की एक आत्मरति है। तुम पानी में देखो। ऊपर से देखो। कान तक कमान खींचो। रंगीन मछली की ओर गौर से देखो। चोटे में नहीं, पंख में नहीं, कान की फांक में नहीं, आंखों में आंखें रखो। बींधो।

वह विचित्र प्रकार की एक आत्मरति है। लिखना। लिखना खत्म करके अद्भुत सुख से स्मर-स्वेद को पोंछ डालना। वह सुख अशोक पा रहा है, प्रदीप पा रहा है और निरोद भी। रजत क्या नहीं प्राप्त कर रहा वह सुख ? इतनी दुविधा क्यों ? अगर नहीं पाता, तो समझ में आने वाली बात थी। अगर नहीं पाता, तो क्या वह पागल नहीं हो जाता ? किन्तु आज उसे यह जानने की इच्छा हुई कि वह सुख कैसे पा रहा है रजत ? क्यों पा रहा है ? यूनिवर्सिटी की वह लड़की, अशोक की कहानी नहीं समझ पाती। मीनू भी रजत की 'मछली' कहानी नहीं समझ पाती, मगर मीनू की ही सारी बातें क्या रजत समझ पाता है ? गली के सामने दस बजे रात के बाद भी मीनू क्यों किवाड़ खोलकर बैठी रहती है ? मीनू के सामने बिछी हुई गली में चौकट ईंटों पर रोशनी एकदम पतली होकर पड़ती है। दीवाल की रोशनी मीनू की आंखों में हरे सितारे बनाती है। गली के दूकान के बगल से एक सफेद बिल्ली अपने खाने की तलाश में किसी के घर में घुसती है।

रजत लौट आता है, तो क्यों बड़ी देर तक मीनू स्तब्ध चुप रहती है ? क्यों मीनू की आंखों में पानी चमकता रहता है ? मीनू ऐसे अवाक् होकर उसे देखती है,

और हमारा', दीर्घ निःश्वास छोड़ती है मीनू, 'बच्चा आ रहा है।'

रजत को असहाय आशंका के बीच क्यों खोज रही है ? अपने आनन्द में क्यों खोज रही है ?

रक्त की फुहारों के बीच, घुटनों के बीच, एक चेहरा झलक उठता है। इत्ता-सा सफेद एक रक्त-पिण्ड।

मीनू जब खिल रही थी और उसकी पंखड़ियां सुबह-शाम रंग बदलती थीं, तब उसके नीचे की उस हरी प्याली की तरफ किसी की नजर नहीं जाती थी। इतने दिन बाद गयी। मीनू के बाल झड़ने लगे। हाथ-पैर काठ हो गये। वह हरी प्याली बड़ी होने लगी। पंखड़ियों से हीन कुम्हड़े के फूल की तरह, रजत ने इसका पेट देखा था। उसके बाद फल बढ़ आया। डंठल में कैसी तेज वेदना होने लगी। डंठल में पका हुआ फल हिल रहा है। फिर गिर पड़ना उसका अपने-आप। धीरे-धीरे मीनू की नाड़ी को काट दिया, उसने। मीनू अलग हो पड़ी, उससे। पतली नाड़ियां जैसे और अधिक जुड़ी हुई हैं। उसके रोम-रोम में मीनू की एक-एक नाड़ी है। केले का थम्ब काटते समय जैसे उसके अन्दर से अनगिनत पतले सूत निकलते हैं। सूत की गोली की तरह जितना चाहो, खींचते जाओ। मीनू ने पूछा था, रजत ने साफ-साफ सुना, सूखे होठों से निकला हुआ उसका प्रश्न, 'क्या हुआ है, क्या ?…'

झिमिर-झिमिर पानी पड़ रहा है। रास्ते के मौलश्री वृक्ष के नीचे रजत अकेला खड़ा है। रास्ते के पिच पर जल-ही-जल। उसकी पीठ पर से होती हुई बूंदें भागी जा रही हैं। टैक्सी के पीछे लाल रोशनी, तेल में भीगे सिन्दूर की तरह, रास्ते में बिखरी पड़ रही है। मीनू की सारी देह पसीने से तर है। पसीने की अनगिनत बूंदें। बूंदें बड़ी हो रही हैं। स्मर-जल। मीनू ऐसी आराम की नींद सो रही है, जैसे कि सपना भी नहीं देख रही है।

रजत एक बाजी खेलोगे मेरे साथ ?

रजत की बांयी आंख ने, दाहिनी की ओर ताककर, आंख मारी। रजत के बांये तरफ के होंठ का कोना टेढ़ा होकर हंस रहा है। कौन ? वह नहीं जानेगा। रजत के बायें पैर ने दाहिने को दूर हटाकर उस पर जोर दिया।

'इतनी बातें तो सोच डालीं। इतनी बातें सोच डालीं। फिर न, आज रात में ही लिख डाल न।'

रजत की सारी देह कांप रही है। उसका प्रत्येक टुकड़ा भिन्न-भिन्न ताल में हिल रहा है। लगता है, सब अलग हो जायेंगे। नीचे ऊपर [illegible]। [illegible] चक्कर आरम्भ करता है। [illegible]

की प्याली पकड़कर, वह चलना आरंभ करता है। यही मेरा पात्र है। मैं तृषित हूं, मैं वंचित हूं। मीनू, तुम मेरी सब-कुछ हो। मीनू, मैं तुम्हें प्यार करता हूं। मुझे छोड़कर तुम चली मत जाना। मेरे पात्र को भर दो। मेरी कहानी का प्रत्येक टुकड़ा यही है। मेरी कहानी कुछ नहीं है। इस पात्र में, इसके प्रत्येक दाग में, सिमट गयी है।

कोई नहीं जानता, कोई देखता भी नहीं, जब मैं मीनू के साथ एक ही तकिए पर सोया रहता हूं। उस समय जिस गैस की रोशनी मीनू की नाक की खील पर पड़ती है, उसका मैन्टल ही नहीं है। एकदम जल गया है। वही सांचे के आकार की गैस की हरी रोशनी जलती रहती है। सारी रात जलती रहती है। कितने निर्जन में, कितने अकेलेपन में, गर्म जल में फेंकने के एक क्षण पहले ही, जैसे जान-बूझकर, खूब चालाक एक छोटे-से फतिंगे के समान, मैं मीनू के भीतर उड़ गया हूं।

शँकर

हनीमून

'क्या हाल-चाल हैं, कावेरी ?'

'अच्छी ही हूं, महाश्वेता । अपने हाल सुना ।'

'हाल तो बहुत-कुछ हैं, तुझसे मिलना चाहती हूं एक बार ।'

'आ जा न । कहां से बात कर रही है ?'

'पब्लिक फोन से । घर पर सब बातें नहीं हो सकेंगी ।'

'तो फिर कहां आऊं ? बता ।'

'विक्टोरिया मेमोरियल चली आ । मैं भी एस्प्लेनेड से ट्राम पकड़ती हूं, क्यों ?'

'ठीक है ।' कहकर कावेरी ने फोन रख दिया । प्रिय सखी का आह्वान थ
सो रेकार्ड-टाइम में साज-सज्जा निबटाकर साड़ी बदली, फिर बाहर निकल गई
मां से कुछ भी नहीं कहा । सुन्दरी, युवा कन्याओं की तरफ से मां को ज
चिन्ता ही रहती है, पर एम० ए० पास लड़की को उस जमाने की अरक्षणी
की तरह घर में तो बांधकर रखा नहीं जा सकता ।

बिड़ला प्लैनेटेरियम के सामने ट्राम से उतरते ही कावेरी को महाश्वेता दि
पड़ गई । चेहरे को देखते ही पता चल जाता है, बेचारी चिन्ता-साग
डूब-उतरा रही है ।

'कब से खड़ी है री, श्वेता ?'

'ज्यादा देर नही हुई है।'
दोनो घास पर फैलकर बैठ गईं।
'मूंगफली खायेगी ?' कावेरी ने पूछा।
'नहीं री, कुछ खाने की इच्छा नही हो रही है। सुबह उल्टी भी हो गई थी।'
'क्यो री ?'
'चिन्ता के मारे।'
'देख श्वेता, तुझे तो पता है कि चिन्ता मुझे भी है। पर इसके लिये उल्टी करके शरीर गलाने से क्या फायदा ?'
'नही भई, अब तो मामला यहां तक आ पहुचा है कि इस पार या उस पार—बीच का कोई रास्ता नही है।'
'क्यो ? भौरा क्या अब दिन-रात गुनगुनाने लगा है ?' कावेरी ने पूछा।
'नही रे, घर पर मुसीबत छाई है। उसी दिन कौन तो देखने आये थे।'
'तो तू घबरा क्यों रही है ? उनके सामने गई ही क्यों ?'
'मैंने भी यही सोचा था, पर फिर रुक नही सकी। सोचा था, शायद पसन्द न आऊं, और बला छूट जाय।' श्वेता ने उत्तर दिया।
'पर बला टली नहीं, लडकेवालो ने लड़की को पसन्द कर लिया।' कावेरी ने बात पूरी कर दी।
'बिलकुल ठीक। तुझे कैसे पता चला ?' महाश्वेता ने पूछा।
'घायल की गति घायल जाने री। मेरा केस भी तो यही है। अक्षर-अक्षर मिलता है। मैं भी तो भौरे को लेकर तेरे-जैसी ही मुसीबत में पड़ गई हू।'
महाश्वेता ने पूछा, 'अच्छा, प्रेम-विवाह क्या सुखी ही होते हैं ?'
'मां कह रही थीं कि नहो होते।' दर्द-भरे स्वर में उत्तर दिया कावेरी ने।
'तो तेरा मतलब है, यह रोज-रोज जो चिट्ठियो-पर-चिट्ठियां आ रही हैं, सब झूठी हैं ?' महाश्वेता ने फिर पूछा।
'मुझे भी तो यह मानते हुए दु ख होता है री। पर मर्दों का मन ठहरा। कहीं अन्त समय में ही बदल जाय, तो हम न घर की रहेंगी, न घाट की।'
'अरी कावेरी, तुझे पसीना क्यों आ रहा है ? डरने की क्या बात है ? जब हम दोनों के सामने एक ही समस्या है, तो हम मिल-जुलकर कोई राह निकाल ही लेंगी।'
'श्वेता, तेरी नाक पर भी पसीना है।' कावेरी ने सूचना दी।
'हाय, न जाने क्यों इस मुसीबत में फंस गई! प्रेम-पथ पर पांव न बढ़ाना ही अच्छा होता। मुझे तो भई, बडी घबराहट हो रही है, न जाने क्या कर बैठूं!

फिर समाज में मुंह नहीं दिखा सकूंगी।'

कावेरी बोली, 'हमने क्या जान-बूझकर फन्दे में पांव फसाया है ? सब भाग्यचक्र है। प्रेम अपने-आप हो तो होता है।'

'पर कावेरी, लड़कों पर आंख मूंदकर विश्वास करना भी खतरे से खाली नहीं है। उस दिन मां कह रही थीं, जितनी लड़कियां खराब हो जाती हैं, उनमें से ज्यादातर ऐसी होती हैं, जो प्रेमियों के साथ घर से भाग आती हैं।'

'महाश्वेता, तेरी मां को कुछ सन्देह हुआ है क्या ?'

'हरगिज नहीं। जो चिट्ठियां आती हैं, मैं अपने बक्स की तली में रख देती हूं। यह देख चाभी, इसे हमेशा अपने ही पास रखती हूं।'

कावेरी ने पूछा, 'अच्छा, लड़के को देखा है तूने ?'

महाश्वेता बोली, 'आमने-सामने नहीं देखा, फोटो देखी है। घर पर सब कह रहे थे, बड़ा क्वालिफाइड है, घर भी अमीर है, तनख्वाह भी अच्छी मिलती है।'

'और तेरा भौंरा ?' कावेरी ने फिर प्रश्न किया।

'उसकी भी हैसियत अच्छी है। पर यह तो उसके अपने मुंह की बात है ना। हमारे मुहल्ले की एक लड़की इसी भरोसे में तो मारी गई। छोकरे ने कहा था, बैंक में अफसर है। शादी के बाद पता चला, बैंक का बेयरा है। और वह लड़की ऐसी थी कावेरी, मुझसे भी गोरा रंग था। शरीर से इतनी सुन्दर, कि क्या कहूं ! बहुत-कुछ तेरे-जैसी।'

'मेरी भी तो यही हालत है, सखी। फोटो तो मां मेज पर रख गई,' कावेरी ने बतलाया, 'मैं तो कुछ तय ही नहीं कर पा रही हूं।'

'और तेरा भौंरा शोर नहीं मचा रहा ?' महाश्वेता ने पूछा।

'वह तो पूछ ही मत। कहती हूं कि इतनी जल्दी क्या है, पर वह सुनना ही नहीं चाहता।' कावेरी ने गहरी सांस ली।

महाश्वेता बोली, 'फोटो के हिसाब से भौंरे से देखने में अच्छे चाहे न हों, बुरे भी नहीं हैं।'

'मेरा भी तो यही हाल है।' कावेरी ने बताया।

'मेरी सुन कावेरी, मां की ही बात मान ले।'

'मैं भी यही सोचती हूं, श्वेता। मां-बाप की अवज्ञा करने से कोई लाभ नहीं है। आखिर उन्हें भी तो हमसे कुछ उम्मीद है। उन्हें दुःख देने से फायदा क्या ? और फिर वे लोग जो भी करेंगे, हमारी भलाई के लिये ही तो करेंगे।'

'सच कहती है तू, कावेरी। यही ठीक है। जाने कहां तो पढ़ा था, लड़कों के प्रेम में देहाशक्ति ही ज्यादा रहती है।'

'सच ! तो अब समझ में आया, भौंरा मेरी सुन्दरता की इतनी प्रशंसा क्यों करता है ? मैं, सच कहूं, कोई ऐसी परी तो हूं नहीं ।' कावेरी मन-ही-मन गर्वित होती हुई बोली ।

महाश्वेता आखिरी बार अफसोस करती हुई बोली, 'समझ गई, प्रेम का कोई मूल्य नहीं होता ।'

'हो सकता है, मूल्य होता हो, पर उसके लिये हम-तुम संकट में क्यों पड़ें ?'

महाश्वेता बोली, 'आज शाम को 'मेट्रो' के सामने उनके लिए इन्तजार करने की बात थी । मैं नहीं जाऊंगी । जो हो चुका, सो हो चुका ।'

'मेरा भौंरा भी बोला था कि कल बण्डेल चर्च ले जायेगा । खड़ा रहे स्टेशन पर । मुझे अब इस सब में नहीं पड़ना है ।'

'हैलो कावेरी, मैं महाश्वेता बोल रही हूं ।'

'क्या हाल-चाल हैं ? कोई झंझट तो नहीं हुई ?'

'कुछ खास नहीं । मेट्रो के सामने राह देखते-देखते हारकर अगले दिन घर पर फोन किया था ।'

'हाय दैया !'

'मैंने तुरत फोन रख दिया । कह दिया, आगे से आपको फोन करने की कोई जरूरत नहीं है ।'

'मेरे साथ भी यही हुआ । हावड़ा स्टेशन से फोन किया । साफ कह दिया मैंने, ऐसे फोन वगैरह मेरे माता-पिता पसन्द नहीं करते ।'

'ठीक किया तूने, कावेरी । हम दोनों ही बाल-बाल बच गई हैं । ये लड़के तो आदमखोर-बाघ होते हैं, सच !'

'पता है श्वेता, लड़का खुद देखना चाहता है ? थोड़ी देर में आने ही वाला है ।'

'अच्छा ? बेस्ट आफ लक ! इच्छा थी कि शुभ-दृष्टि के समय मैं भी उपस्थित रहूं, पर मौसी ने चाय पर बुलाया है । और किसे बुलाया है, पता है ? लड़के को ।'

'अच्छा ? मौसी ही रिश्ता जमा रही हैं शायद ? अच्छा, मेरी हार्दिक 'शुभकामनाएं ।'

प्रिय श्वेता,

हनीमून पर आई हूं । अच्छा बता तो, हनीमून का आविष्कार किसने किया ? भई, गजब की चीज है ! चांद तो निकलता ही है । और मधु ? मधुमक्खियों के झुण्ड-के-झुण्ड तो शहद खोजते ही फिर रहे हैं । 'मधुवाता ऋतायते, मधु-

समझ ही गई होगी। बड़ी खुशमिजाज हैं, पर जबान पर लगाम नहीं है। मुझे क्या कहा, पता है? 'अपने मियां को सावधान रहने को कह देना, कहीं जल्दी ही मेरी जरूरत न पड़ जाय!' मैं तो शरम से मर गई।

हां, तो उन जिठानीजी को भी अफसोस था कि शादी के बाद हनीमून नहीं मना सकीं। सास भी उनके कहने में बहुत हैं, सो उन्होंने ही कह-सुनकर उन्हें राजी किया, और हमारे आने की सब व्यवस्था कर दी।

तो भई, हनीमून क्या होता है, सो अनुभव-हीन लोगों को समझाया नहीं जा सकता। तू ही कुछ-कुछ समझ सकेगी। कब से तुझे पत्र लिखने को छटपटा रही हूं, पर लिख सकूं तब तो? ऐसे नटखट हैं, कुछ करने ही नहीं देते। लिखने बैठूं, तो पीछे से आकर आंखें मूंद लेते हैं। फिर एक अजीब जिद्द—इन्हीं को पत्र लिखना पड़ेगा। सोच तो जरा। सामने बैठे हैं, पर पत्र लिखना होगा यह सोचकर, कि जाने कहां दूर बसे हैं। करना ही पड़ता है, भाई। (देख, यह पत्र किसी और के हाथ न पड़े!)

हम लोग मिसेज पैटरसन के बोर्डिंग-हाउस में ठहरे हैं। बुढ़िया बड़ी रसिक है। हमें बिलकुल भी परेशान नहीं करती। कहती है, हनीमून मनाने आये हो, तो सोच लो कि दुनिया में तुम्हारे सिवा और कोई है ही नहीं। जी चाहे, तो स्लीपिंग-बैग लेकर जंगल में चले जाओ। पर भई, मुझसे यह सब चलता नहीं है। कीड़े-मकोड़ों का डर लगता है। यह अंग्रेज लोग थैले में घुसकर कैसे सो जाते हैं, भगवान जाने!

पहले मेरी कुछ ऐसी धारणा थी कि लोग हनीमून मनाने समुद्र के किनारे जाते हैं। अपनी क्लास की चन्दना की याद है? उसका दूल्हा उसे गोपालपुर ले गया था। वहां समुद्र-तट पर खींची हुई उन दिनों की तस्वीरें भी दिखाई थीं हमें चन्दना ने। पर मेरे श्रीमानजी भी तो कम नहीं हैं। कविता में कहने लगते हैं, 'मधुयामिनी हेतु, ध्यान-गम्भीर भूधर ही उपयुक्त है। मैं ही तो तुम्हारे सुदूर उच्छल समुद्र की तरंग हूं, उच्छल-उच्छलकर तुम्हारे हृदय को तरंगित कर जाऊंगा।'

मैं तो भई, ऐसी साहित्यिक हूं नहीं। और, किसी तरह सोच-विचारकर कोई जवाब दे भी दूं, तो ऐसा मतलब निकाल लेते हैं कि शरम से मेरे कान तक लाल हो उठते हैं।

तेरे हाल-चाल क्या हैं, लिखना। मैं तो सोचती हूं बाबा, भगवान कृपालु हैं। क्या गलती करने जा रही थी मैं! उसकी और इनकी तुलना ही नहीं हो सकती। अच्छा, अब रुकती हूं।

तेरी,

—

खिलखिलाकर हंस उठी कावेरी, 'यह तेरी देखा क्यों लिखा है ? तू तो अब किसी और की अपनी देखा है।'
'तेरा भी तो सर्वाधिकार सुरक्षित हो गया है।' महाश्वेता ने उत्तर दिया।
कावेरी बोली, 'तो स्वत्वाधिकारी को देखेगी नहीं एक बार ? भाग्य से हनीमून में ही मुलाकात हो गई तुमसे।'
'और मैं जिसकी अपनी हूं, उसे नहीं देखेगी ?'
'जरूर देखूंगी। मेरी प्यारी सखी का जिसने गोत्रनाश किया है, उस काला पहाड़ को नहीं देखूंगी भला!' कावेरी ने महाश्वेता के केश व्यवस्थित करते हुए कहा।
'तेरा दूल्हा कहीं नाराज न हो जाय ! क्रौंच-मिथुन के कुंज-वन में व्याघ के प्रवेश से कहीं श्राप न दे बैठे—मा निषाद प्रतिष्ठां...'
'बकवास मत कर, कावेरी। यह कह ना, कि दूल्हे के पास लौटने के लिये मन छटपटा रहा है।'
'और तेरा ?'
सच ! कल सारी रात न खुद सोये, न मुझे सोने दिया। अभी जरा आंख लगी थी, तो मैं चुपके से यह चिट्ठी डालने चली आई। जागकर मुझे नहीं पायेंगे, तो जमीन-आसमान एक कर देंगे।'
कावेरी ने स्वीकार किया कि उसकी भी यही हालत है।
'तो फिर अकेले-अकेले न मिलकर जोड़ी में मिलना ही ठीक रहेगा। तुम लोग हमारे यहां चाय पर आ जाओ, फिर हम लोग आयेंगे, क्यों ?' महाश्वेता ने कहा।
'ठीक है, यही ठीक रहेगा', कहकर कावेरी तेजी से होटल की ओर लौट पड़ी। सड़क के दोनों ओर ढेरों फूल खिले थे। पति को देने के लिये कावेरी ने ट्यूलिप फूलों को तोड़कर एक गुलदस्ता तैयार कर लिया था।

कमरे में घुसकर कावेरी ने शान्ति की सांस ली। पतिदेव अभी भी घोर निद्रा में मग्न थे।
'ऐ, ऐजी, उठो ना', कावेरी ने पति को हलका-सा धक्का दिया। पर कोई लाभ नहीं हुआ। महाशय करवट बदलकर फिर सो गये।
'ऐ, उठो ना, नहीं तो रात को फिर नींद नहीं आयेगी।' कावेरी ने फिर झटका दिया।
'अच्छा ही तो है।' फिर करवट बदलकर सो गये पतिदेव।
'देखो, तुम्हारे लिये क्या लाई हूं, ये ट्यूलिप फूल !'

'देखूं।' आंखें खोलीं पति महोदय ने।

उठकर बैठ गये। कहा, 'एक बड़ा बुरा सपना देखा था, कि तुम मुझे छोड़कर भाग गई हो।'

'भाग तो गई ही थी'। बस, अभी लौटी हूं।' कावेरी ने उत्तर दिया।

'ऐ!' कहकर पति ने कावेरी को जबरदस्ती अपनी ओर खींच लिया और जोर से धकेलकर कम्बल तले दबाकर कैद कर दिया।

कावेरी मनाने लगी, 'यह क्या कर रहे हो? दरवाजा खुला है, अगर बेयरा घुस आये तो?'

पर पति पर कुछ भी असर नहीं हुआ। युद्ध-विराम का कोई चिन्ह भी नजर नहीं आया। 'मुझसे कहे बिना क्यों गई बाहर?'

सबल प्रतिपक्षी के आगे आत्म-समर्पण करना ही पड़ा कावेरी को। बोली, 'वो तो भाग्य से बाहर गई थी, सो मेरी सबसे प्यारी सहेली से भेंट हो गई। उसकी भी हमारी शादी के दिन ही शादी हुई थी। यहां हनीमून मनाने आई है।'

'हनीमून के लिये कोई और जगह नहीं मिली उसे? कावेरी के बेचारे पति के आनन्द में बाधा दिये बिना शायद उसका कोई काम अटका जा रहा था?'

'छि:, वे लोग भी तो हमारे बारे में यही कह सकते हैं। फिर, वह मेरी सबसे प्यारी सहेली है। जिन्दगी में तुम्हें छोड़कर और किसी को मैंने इतना ज्यादा प्यार नहीं किया है।'

'मतलब यह हुआ कि मेरे साथ शादी नहीं होती, तो अपनी सखी के साथ ही सुख-दु:ख की बातें करते हुए जीवन बिता देती, क्यों?'

विवाह के पहले की बात उठते ही कावेरी का कलेजा कांप गया, पर तुरन्त ही अपने को सम्भालकर बोली, 'मेरी सखी के बारे में ऐसी बातें मत कहो।'

'तुम्हारी सहेली से मीठी-मीठी बातें करेंगे उसके पति। मैं क्यों उसका लिहाज करूं?' दूल्हे ने कावेरी को नजदीक खींचने की चेष्टा की।

'शादी के पहले किसी और ने भी मीठी-मीठी बातें करके उसे लुभाने की कोशिश की थी। जूते की एड़ी घिस गई, पर सब बेकार।'

'कौन था वो बेवकूफ?' पति ने पूछा।

'मुझे नहीं पता। पता होता, तो सखी का पीछा करनेवाले के मुंह पर कालिख-चूना पोतकर छोड़ती।'

'अच्छा! वेरी गुड!' उत्तर मिला।

'पता है, वे लोग बहुत खुश हैं, हमारी ही तरह। उनके दिन भी मानो सपनों में ही कट रहे हैं।'

'इतनी जानकारी कैसे हासिल कर ली ?' पति ने कावेरी के पांव के ऊपर पांव रख दिया ।

'हमारे टिकट बेकार गये। पोस्ट-आफिस के सामने ही हमने चिट्ठियां बक्स डालीं।'

कावेरी ने लिफाफा पति की ओर ठेल दिया ।

'लिफाफे का आकार देखकर तो लगता है, बड़ी भारी चिट्ठी है । पोस्ट करने पर जरूर बेरंग हो जाती ।'

'पढ़ोगे ?' कावेरी ने पति की पीठ पर हाथ फेरा ।

'तुम्हारी चिट्ठी मैं क्यों पढ़ूं ?'

'अहा ! तुम और मैं क्या अलग हैं ? पर कल जब उनसे मिलो तो कह भी देना कि तुमने वह पत्र देखा है, नहीं तो वह घबराकर मनमुटाव कर लेंगी और फिर कभी पत्र नहीं लिखेंगी ।'

हिल-व्यू होटल के बेयरों की नजर से भी बात छुपी न रही । हनीमून काटेज के नये साहब और मेम साहब के जीवन में कोई आकस्मिक परिवर्तन आया है । कुछ दिन आनन्दोच्छ्वास के प्रबल ज्वार के बाद अब भाटा शुरू हुआ है । काटेज के सामने बैठे-बैठे राम सिंह ने अजगर सिंह से कहा, 'मामला क्या है ? मेम साहब ने दो बार सेरिडॉन क्यों मंगाई ?'

अजगर सिंह ने आश्चर्य से कहा, 'यह क्या ? साहब ने भी मुझसे सेरिडॉन मंगवाई है ।'

राम सिंह अनुभवी आदमी है । कई हनीमून देखे हैं उसने । कहा, 'इन मामलों में सिर जब दुखता है, दोनों का ही दुखता है । फिर भी कोई किसी को बताता नहीं । बाहर जाकर दोनों गोली निगलते हैं । जब सिर-दर्द मिटेगा, तो दोनों का ही एक साथ मिटेगा । फिर दरवाजा बन्द होगा, तो चाय लेकर आने पर पन्द्रह मिनट खटखटाने पर भी नहीं खुलेगा ।'

पर हनीमून काटेज का दरवाजा अचानक खुल गया । भीतर से मेम साहब को झांकते देखकर राम सिंह और अजगर सिंह दोनों चौंक उठे । और भी आश्चर्य हुआ तब, जब मेम साहब ने आने के बाद पहली बार राम सिंह को सीधे अन्दर बुला लिया ।

भीतर घुसने पर राम सिंह को साहब कहीं नहीं दिखाई दिये । बिस्तर भी यह सुबह जैसा जमा गया था, वैसा ही व्यवस्थित था—हमेशा की तरह युद्ध के मैदान-सा ऊबड़-खाबड़ नहीं बना था ।

मेम साहब की आंखें लाल थीं । कहा, 'थोड़ा पानी ला दोगे राम सिंह ?' एक

और टैबलेट लूंगी ।'
एक बार राम सिंह की कहने की इच्छा हुई कि सिर-दर्द की गोलियां इतनी मात्रा में लेना उचित नहीं, पर हिम्मत न हुई। बेयरे को बेयरे की तरह ही रहना चाहिये।
राम सिंह पानी लेने जा रहा था, कि कावेरी कुछ हिचकिचाती हुई बोली, 'अच्छा राम सिंह, कल जब मेरे लिये फोन आया था, तब साहब उस तरफ गये थे ?'
राम सिंह ने कहा, 'नहीं मेम साहब। और फिर हमारा टेलिफोन-बूथ कांच का है। दरवाजा बन्द करने पर बाहर कुछ भी सुनाई नहीं देता।'
राम सिंह के बाहर जाते ही, कावेरी को कल शाम की बात याद आ गई। राम सिंह ने ही फोन आने की खबर दी थी। तकदीर से पति उस समय सो रहा था। कपड़े संभालती हुई कावेरी टेलिफोन-बूथ तक पहुंची थी, तब तक उसे जरा भी सन्देह नहीं था कि यह फोन श्वेता के सिवा किसी और का हो सकता है। रानीखेत में उसके सिवा और कौन कावेरी बागची को पहचानता था, जो फोन करता ? आगे की बात सोचते ही कावेरी फिर सिहर उठी। फोन उठाते ही कावेरी ने कहा था, 'क्या बात है ?'
पर उस ओर का कण्ठ-स्वर सुनते ही चौंक उठी थी। झटपट बूथ का दरवाजा बन्द कर लिया था।
'कौन, कावेरी ? पहचाना ?'
कावेरी के हाथ कांपने लगे थे। किसी तरह साहस एकत्रित करके बोली, 'कहिये ?'
'हूं ! यही कुछ दिन पहले 'कहा' था। अब इतनी जल्दी 'कहिये' हो गया ?'
'कुछ दिनों में ही बहुत-कुछ हो सकता है।' कावेरी ने बड़ी निस्पृह तटस्थता से गम्भीर होकर उत्तर दिया।
'कावेरी, लगता है, तुम बहुत नाराज हो गई हो।'
कावेरी समझ गई थी कि सर्वनाश के मेघ घिरते आ रहे हैं। इसीलिये काफी चेष्टा करके, यथासम्भव भद्रता से बोली, 'मैं किसी की विवाहिता स्त्री हूं। मुझे 'आप' कहकर सम्बोधित करें, यही बेहतर होगा।'
उस आदमी ने अभिनय अच्छा किया। मानो कितना घबरा गया हो, ऐसी उखड़ी आवाज में बोला, 'कावेरी देवी आप, यानी तुम, मुझे गलत मत समझिये।'
'आप समझाना क्या चाहते हैं ? साफ-साफ कहिये ना कि मैं रानीखेत में हूं, यह पता लगाकर आपने मेरा पीछा करने की कोशिश की है ?'
'कावेरी, नाराज क्यों हो रही हो ? रानीखेत पर किसी एक का तो हक है नहीं।

जैसे तुम लोग आते हो, वैसे ही मैं भी आ गया।'
अगर वह सामने होता तो कावेरी जरूर हो उसे चप्पलों से पीट देती। किसी तरह क्रोध को सम्भालकर पूछा, 'आखिर आपने टेलिफोन क्यों किया? जल्दी से कह डालिये।'
'कावेरी, आइ-म सारी, पर चिट्ठियों की बात तुम्हें याद होगी?'
'चिट्ठियां?' कावेरी ने पूछा।
'इतनी जल्दी भूल गई? हम दोनो ने एक-दूसरे को कितने पत्र लिखे हैं।'
'उन सब पत्रों से मुझे कोई मतलब नहीं, आपको भी नही रखना चाहिये।'
'पर मेरी अपनी लिखी हुई चिट्ठियो से तो मुझे मतलब है ही। मुझे वे वापस चाहियें।'
उसके बाद जो बातें हुई थी, वे कावेरी को ठीक से याद नहीं आ रही हैं। एक दिन जो भ्रमर बनकर चारो ओर मंडराता था, आज वही हिंसक बाज बनकर बया के नीड़ को नष्ट करने के लिये झपट्टा मार रहा है।
कावेरी क्या करे, कुछ समझ नही पा रही थी। पति को सब बातें साफ-साफ बता दे? पर क्या यह निरापद होगा? जिस व्यक्ति ने उसे निष्पाप मानकर हृदय में ग्रहण किया है, उसके मन में इतनी जल्दी सन्देह का विष घुसा देना क्या उचित होगा? कावेरी सिहर उठी।
श्वेता उसकी एकमात्र सखी है। उसे तो सब पता है। कावेरी ने श्वेता को फोन किया।
'हैलो, मिसेज पैटरसन का बोर्डिंग-हाउस? श्वेता लाहिड़ी को बुला देंगी जरा?'
'हैलो, मैं महाश्वेता बोल रही हूं।'
'मैं कावेरी हू। हैलो, श्वेता, तेरा फोन कैसी जगह है? और लोग बातें सुन तो नहीं पाते है न?'
'नहीं, एक बूथ में है फोन।'
'हैलो, श्वेता, एक बात कह रही हू भई, बुरा मत मानना। तेरे पति तो नही हैं आस-पास? मुझे एक बड़ी गोपनीय बात कहनी है।'
'घबरा मत, जो जी में आये कह ले वे अभी कुछ देर पहले ही बाहर गये हैं।'
'श्वेता, सर्वनाश हो गया है!'
'अंय! क्या हुआ? कोई एक्सिडेण्ट तो नही हो गया?'
'एक्सिडेण्ट होता तो जान में जान आती। पहाड़ से गिरकर मर जाती, तो मेरी आत्मा को शान्ति मिलती।'
'क्या हुआ री कावेरी तुझे? ऐसी घबरा क्यो रही है? मियां के साथ लड़ाई

हो गई है क्या ? बेकार परेशान हो रही है, हनीमून में ऐसे झगड़े तो होते ही रहते हैं।'

'नहीं श्वेता, झगड़ा अभी तक तो नहीं हुआ है। पर तूफान घिर रहा है। लगता है, सब ध्वस्त होकर उड़ जायेगा। जहर कहां मिलता है, बता सकेगी ?'

'कावेरी, मेरी बहन, छिः ऐसी बातें मुंह से नहीं निकालते। मैं आऊं वहां ?'

'नहीं, तू मत आ। तुझे देखकर मैं रुलाई रोक नहीं सकूंगी, और उन्हें सन्देह हो जायेगा।'

'बात क्या है, कावेरी ?'

'क्या बताऊं ? वही छोकरा !'

'कौन छोकरा ? तेरा भौंरा ?'

'हां, वही स्काउण्ड्रल...'

'तुझे पत्र लिखा है ? वह पत्र तेरे पति के हाथ पड़ गया ?'

'नहीं रे ! पत्र से तो फिर भी खैरियत होती। वह तो सशरीर यहां आ पहुंचा है।'

'हाय, क्या कह रही है तू ? सर्वनाश हो गया ! तुझसे मिलने आया था ?'

'अभी तक तो नहीं आया, पर जिस ढंग से बात कर रहा था, आ भी पहुंचे तो कोई आश्चर्य नहीं। अभी-अभी फोन पर बात की थी।'

'क्या चाहता है वह ईडियट ?'

'चिट्ठियां।'

'अंय ! अब भी तेरे साथ प्रेम-पत्रों का आदान-प्रदान चाहता है ?'

'नहीं, नये पत्र नहीं, पुराने पत्र। कहता है, उसके सब पत्र वापस कर दूं।'

'तो कावेरी, तू बेकार झंझट मत मोल ले। वापस कर दे।'

'यही तो मुसीबत है। चिट्ठियां मेरे पास हैं कहां ?'

'कलकत्ते ही छोड़ आई ?'

'कलकत्ता से रवाना होने के दिन सब जला आई। पर वह विश्वास नहीं करता। मेरी सारी चिट्ठियां उसके पास हैं। किस मुसीबत में पड़ गई मैं ? इन्हें अगर पता चल जाय, तो ?'

'कावेरी, तू घबरा मत। उस ईडियट को जरा समझा-बुझाकर रास्ते पर ले आ। सब ठीक हो जायेगा।'

'कोशिश कर देखती हूं। पर मुझे बड़ा डर लग रहा है।'

'अगर चाहे, तो इनसे सलाह ले ले। बड़े इण्टेलिजेण्ट हैं, कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेंगे।'

'नहीं बहन, तेरे पाँव पड़ती हूँ। उस बदमाश ने कहा था कि बात किसी के कान तक न पहुँचे, नहीं तो वह बदला ले लेगा।'

'क्या कहते! क्या बदला लेगा?'

'क्या पता री! कैसा आदमी है, कौन जाने मेरी ही दो-एक चिट्ठियाँ इन तक पहुँचा दे। मुझे भी मैंने बड़ी सावधानी से बताया है। और कोई न जानने पाये।'

कावेरी के दाम्पत्य-जीवन में जाने कहाँ, एक दरार पड़ गई है। चार पहियों पर स्थिर गति से चलती गाड़ी का एक पहिया मानो टूट गया है। एक अँधेरे बादल ने आकर मधुचन्द्र को ढँक लिया है।

क्या पति कुछ समझ गये हैं? अचानक इतने गम्भीर क्यों हो उठे हैं? जो हर वक्त कुछ-न-कुछ बोलते रहते थे, वे अचानक स्वल्पभाषी क्यों हो गये? जो सारी रात सोने नहीं देते थे, वे अचानक पीठ फेरकर क्यों सोने लगे?

'अभी सो गये क्या?' कावेरी ने कन्धा हिलाकर पूछा।

'सोया नहीं हूँ, सोने की कोशिश कर रहा हूँ।' कण्ठ-स्वर कैसा कठोर था।

कावेरी ने फिर पूछा, 'तुम्हारा सिर दबा दूँ? नींद आ जायेगी।'

कावेरी ने सिर की ओर हाथ बढ़ा दिया था, पर पति ने एक ओर हटा दिया। क्या पता, प्रेम-प्रेम के बारे में इनका क्या मत है! क्या कावेरी को क्षमा कर देंगे? कुछ साहस से कावेरी ने पूछा, 'क्यों जी, प्रेम के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं?'

'किस प्रेम की बात कर रही हो?' पति ने पूछा।

'मान लो, विवाह के पहले का प्रेम।' कावेरी को अचानक लगा कि उसके पति के माथे पर पसीना आने लगा था। इस सर्दी में भी केश पसीने से गीले हो गये थे। लगता है, बहुत जोर का गुस्सा आ गया है। ब्लड-प्रेशर तो जरूर ही बढ़ गया है। बात न उठाना ही बेहतर होगा। 'अरे! तुम्हें इतना पसीना क्यों आ रहा है?'

'कुछ नहीं, यूँ ही। देखो कावेरी, मैं सोचता हूँ कि शादी से पहले प्रेम करना उचित नहीं है। तुम इसे अच्छा मानती हो?'

पति का विश्वास जीतने के लिये कावेरी को जरूरत से ज्यादा उत्तेजित होकर कहना पड़ा, 'हरगिज नहीं। एक से प्रेम करके, किसी और से विवाह करना बड़ा गलत काम है।'

इसके बाद आगे कुछ बोलने की शक्ति उसमें न रही। उसकी नब्ज बम्बई मेल की रफ्तार से भाग रही थी। करवट बदलकर वह सो गई।

सुबह जब नींद टूटी, देखा, पति महोदय जाग रहे हैं।

'तुम सोये नहीं ?' कावेरी ने पूछा।
'उंहुं।'
बात क्या थी, मानो ठण्डी बर्फ। नव-विवाहिता पत्नी के साथ कोई इस लहजे में बात नहीं करता। कोई और समय होता तो कावेरी रूठकर, रों-धोकर मजा चखा देती। पर अभी समय बड़ा खतरनाक था। उसकी अग्नि-परीक्षा निकट आती जा रही थी। इसीलिये वह बोली, 'मुझे जगा क्यों नहीं लिया ? पीठ सहला देती।'
पति ने कहा, 'तुम्हारी सहेली के यहां आज ही चाय पर जाना है ना ?'
'हां।'
'आज कैन्सिल नहीं हो सकता ? आज इतनी दूर जाने की तबियत नहीं कर रही है।'
और कोई समय होता, तो कावेरी हरगिज राजी न होती, पर आज उसने शान्ति की सांस ली। खुद वह भी जाना नहीं चाहती थी।
ब्रेकफास्ट-टेबिल पर एक-से-एक सुस्वादु चीजें थीं, पर कावेरी से कुछ भी नहीं खाया जा रहा था। क्या पता, वह आदमी अभी ही फोन कर बैठे ? अगर पति पूछ बैठे कि किसका फोन था, तो क्या उत्तर देगी कावेरी ?
आमलेट काटते-काटते पति ने पूछा, 'क्या सोच रही हो ?'
'कहां ? कुछ तो नहीं।' कावेरी ने टाल जाने की चेष्टा की।
पति के चेहरे पर उद्वेग की छाप थी। 'सहेली के साथ कोई बात-चीत हुई थी तुम्हारी ?'
फिर जबरदस्ती झूठ बोलना पड़ा कावेरी को, 'नहीं तो।'
हे ईश्वर ! पति से झूठ बोलना पाप है, पर मैं करूं क्या ? तुम तो मेरी हालत देख रहे हो। इस अभागिन को क्षमा कर दो।
साथ घूमने निकलने का प्रोग्राम बनने पर मुश्किल होती, पर ईश्वर शायद सदय थे, तभी उन्होंने पतिदेव का हृदय-परिवर्तन कर दिया। वे रेलवे-रिजर्वेशन के बारे में तलाश करने अकेले ही गये। कहा, 'तुम्हारी तबीयत खराब है, इतना पैदल चलना ठीक नहीं होगा। मैं जल्दी लौट आऊंगा।'
जितनी देर से लौटें, उतना ही अच्छा रहेगा। वह आदमी जाने कब फोन कर बैठे, क्या पता ?
राम सिंह पानी ले आया, और साथ ही खबर भी। 'मेम साहब, आपका फोन है।' सैरिडोन निगलकर कावेरी फोन-बूथ की ओर लपकी।
'हैलो, मैं कावेरी बोल रही हूं।'

'मैं कौन हूं, यह तो समझ ही गई होगी। मेरी चिट्ठियों के बारे में क्या तय किया ?'

'आपसे एक बार कह तो दिया।'

'कावेरी, तुम्हारे ही पत्र से कुछ पढ़कर सुनाता हूं : 'तुम्हारी हर पाती मानो मधु से लिखी होती है। बार-बार पढ़कर भी जी नहीं भरता। चन्दन के डिब्बे में उन्हें सहेज लेती हूं। तुम्हारी पोती को दूंगी।'

'प्लीज, मुझे बख्श दीजिये। मुझे इस तरह से सताइये मत।'

'कावेरी, मेरे पत्रों में भी ऐसी ही खतरनाक बातें लिखी हैं। वे पत्र मुझे हर हालत में वापस चाहियें।'

'आप कहां से बोल रहे हैं ?'

'यह मैं बताना नहीं चाहता। पहले पत्र लौटाने का वादा कीजिये। फिर किसी गुप्त स्थान पर मिलकर आप अपने पत्र ले लीजियेगा, और मेरे लौटा दीजियेगा।'

'और अगर न दूं ?'

'तब फिर मुझे आखिरी उपाय अपनाना होगा। आपको समय दे रहा हूं, सोच देखिये। फिर फोन करूंगा।'

'हैलो, मिसेज पैटरसन का बोर्डिंग-हाउस ? श्वेता लाहिड़ी को बुला देंगी जरा ?'

'जस्ट ए मिनिट प्लीज।'

'हैलो, मैं श्वेता बोल रही हूं। आपको आखिर हो क्या गया है ? एक बार बात करके जी नहीं भरा ? फिर परेशान कर रहे हैं ?'

'हैलो श्वेता, क्या बोले जा रही है ? मैं कावेरी हूं।'

'ओ लार्ड, कावेरी ! बुरा मत मानना, भई। अभी-अभी एक मुसीबत आ खड़ी हुई है।'

'क्या हो गया ?'

'वह जो आदमी था ना, जिसके साथ शादी के पहले……'

'तेरा भौंरा ?'

'हां रे, भौंरा कह ले या गुबरैला……उसने फोन किया था। लगता है, ब्लैक-मेल करना चाहता है।'

'ब्लैक-मेल ?'

'हां रे, कहता है, मेरी चिट्ठियां सब लौटा दो।'

'रुपये मांगे है ?'

'अभी नहीं, शायद बाद में मांगेगा। शायद रुपया नहीं दूंगी, तो इसके पास मेरी

चिट्ठियां भेज देगा।'

'सर्वनाश हो गया, श्वेता। बता तो, हम दोनों को यह क्या हो गया? क्यों री श्वेता, रो रही है?'

'रोऊं नहीं तो क्या करूं, बता? तूने भी रोना शुरू कर दिया?'

'रोऊं नहीं तो और क्या करूं, बता? उसने थोड़ी देर पहले मुझे फोन किया था। मेरी चिट्ठी से पढ़कर सुनाया था। उन्हें पता लग गया, तो सर्वनाश हो जायेगा। इन सब मामलों में यह बड़े कठोर हैं।'

'अच्छा? यह भी ऐसे ही हैं। क्या पता······'

'क्या पता—क्या?'

'क्या पता, तलाक दे बैठें।'

प्रख्यात विवाह-विच्छेद-विशारद एडवोकेट नीरद चौधरी रानीखेत डाक-बंगले के सामने बैठे प्रकृति के सौन्दर्य को निरखने में व्यस्त थे। कुछ दिन आबो-हवा बदलने के इरादे से आये हैं। पर अपनी मर्जी से आये हैं, यह कहना भूल होगी। उनकी पत्नी ही उन्हें यहां खींच लाई हैं।

मिसेज चौधरी नाराज होकर उन्हें नारद चौधरी कहती हैं। 'कितने घर तुमने तोड़े हैं, बताना तो?'

मिस्टर चौधरी पत्नी को समझाने की चेष्टा करते हैं, 'मैं भला क्यों किसी का घर तोड़ूंगा? पति-पत्नी में मनोमालिन्य हो जाता है, तो कानून में ही विच्छेद की व्यवस्था है। कोई एक पक्ष मेरी शरण में आता है, मैं केस करता हूं, गवाही होती है, और तलाक हो जाता है।'

मिसेज चौधरी का मत-परिवर्तन नहीं होता। डांट देती हैं, 'बेकार बात मत करो, घर नहीं तोड़ते तुम?'

'वे लोग पहले ही घर तोड़कर तब मेरे पास आते हैं, हेम।' एडवोकेट चौधरी दयनीय भाव से कहते हैं।

'उस टूटे को जोड़ने की कोशिश करने के बजाय, तुम और दो-चार हथौड़ी जमा देते हो।'

मिस्टर चौधरी बहुत व्यस्त रहते हैं। इस वर्ष ही कम-से-कम सौ तलाक के मुकदमे उन्होंने निबटाये हैं। बालीगंज का मकान और दो-दो मोटरें हैं जो इन तलाक के मुकदमों की बदौलत ही मिली हैं।

मिसेज चौधरी कहती हैं, 'मेरी बेटी बड़ी हो रही है। बड़ा डर लगता है। कितने लोगों की 'हाय' बटोरते हो तुम। तलाक के अलावा और मुकदमे भी तो

होते हैं ।: वह नहीं ले सकते ?'

एडवोकेट चौधरी निरुत्तर हो जाते हैं। जिन्दगी-भर में हजारों विवाह-विच्छेद करवाने के बावजूद, वे अपनी घरवाली से बहुत डरते हैं। कारण यह है कि गृहिणी के मायके की अवस्था काफी अच्छी है और वे अक्सर वहां जाने की धमकियां देती रहती हैं, और अगर एक बार वहां चली गई, तो एडवोकेट साहब को दाम्पत्य-अधिकारों की पुनर्प्रतिष्ठा में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। भले ही 'रेस्टीट्यूशन आफ कान्जुगल राइट्स' के मुकदमे के लिये वे लोगों से मोटी फीस वसूलते हों।

इधर कुछ वर्षों से अदालत में विवाह-सम्बन्धी मुकदमे बहुत बढ़ गये हैं। इन्हीं सब में नीरद चौधरी इतने व्यस्त रहे, कि काफी अर्से से कहीं घूमने नहीं जा सके। इसी से हालत इतनी खराब हो गई कि अपने घर में ही तलाक की नौबत आ खड़ी हुई थी। क्रुद्ध गृहिणी को शान्त करने के लिये नीरद चौधरी सीधे कुमाऊं के पहाड़ों में चले आये थे। गृहिणी को वचन दिया है कि इन पन्द्रह दिनों में प्रैक्टिस का नाम भी मुंह पर नहीं लायेंगे। बस, प्रकृति की शोभा का अवलोकन करते रहेंगे।

चीड़ की कतारों की तरफ देख रहे थे नीरद चौधरी। लग रहा था, मानो भगवान की बार-लाइब्रेरी हो। कैसे सुन्दर ढंग से सजा रखा है किताबों को!

हेम चौधरी इसी बीच बंगला में बातें करने को व्याकुल हो उठी हैं। माल पर सैर के दौरान कुछ-एक बंगाली-परिवारों से परिचय हुआ है। हेम ने कहा था, 'चलो ना, कारू से मिल आयें।'

नीरद चौधरी अड़े रहे, 'तुम ही चली जाओ। मैं कभी भी पति-पत्नी का संयुक्त-आतिथ्य ग्रहण करना पसन्द नहीं करता। क्या पता, दो दिन बाद ये ही तलाक का मुकदमा लेकर मेरे पास आयें।'

'जाने क्या-क्या कह देते हो! दुनिया-भर के पति-पत्नियों का तलाक करवाकर छोड़ोगे क्या?'

नीरद चौधरी ने कहा, 'एडवर्ड कार्सन का नाम सुना है? उन्होंने ही आस्कर वाइल्ड को जिरह करके जेल भेजा था। एक बार पहले कभी उन्होंने आस्कर वाइल्ड को खाने पर बुलाया था, पर वे गये नहीं। जाते तो बच जाते—क्योंकि कार्सन का नियम था कि एक बार किसी के मेहमान या मेजवान बन गये तो *उसके विरुद्ध कभी भी कोई केस नहीं लेते थे।'*

गृहिणी झुंझलाकर अकेली ही निकल गई।

और, कुछ देर बाद ही नीरद चौधरी ने देखा, एक युवती डाक-बंगले की तरफ आ

रही है। दूर से पता नहीं चलता था कि वह विवाहिता है, या नहीं।
लड़की कुछ-कुछ परिचित-सी लग रही थी। कुछ दिन पहले माल पर मुलाकात हुई थी।
कावेरी इतनी-सी दूर आने में ही हांफ उठी थी। उसने नीरद चौधरी को नमस्कार किया। प्रति-नमस्कार करके नीरद चौधरी बोले, 'मेरी पत्नी अभी-अभी बाहर गई हैं।'
'आपके पास ही आई हूं मिस्टर चौधरी, आपकी प्रोफेशनल एडवाइस के बिना मेरा बचना मुश्किल है।'
नीरद चौधरी बोले, 'तुम्हें देखकर तो लगता है कि हाल में ही शादी हुई है।'
'जी हां। हनीमून पर आई हूं।'
'तो इसी बीच डाइवोर्स के वकील के पास आने की क्या जरूरत पड़ गई है बेटी ? क्या मैरिज कनज्यूमेटेड नहीं हुई ?' नीरद चौधरी ने पूछा।
कावेरी का चेहरा लाल हो उठा, 'जी, वह सब नहीं।'
'तो फिर बेटी, वर ने अगर एक-दो कड़ी बातें कह ही दीं, तो इसके लिये वकील के पास दौड़ आना तो उचित नहीं है।' नीरद चौधरी ने भर्त्सना की।
कावेरी बोली, 'शादी के पहले एक व्यक्ति के साथ मेरी जान-पहचान थी।'
'उसे पत्र-वत्र लिख बैठी थी क्या ?'
'जी हां, अब वही पत्र लेकर वह मुझे दबा रहा है।'
नीरद चौधरी बोले, 'डर भी दो तरह का होता है। एक तो, मुझसे शादी नहीं करके तुमने अपना वचन भंग किया है—याने ब्रीच आफ प्रामिस। और दूसरा डर है, पति को सब कुछ बता देने का।'
'अगर मेरे पति को वह सब कुछ बता दे, तो क्या वे मेरा परित्याग कर सकते हैं ?'
एडवोकेट बोले, 'यह तो बड़ा पेचीदा मामला है। पत्रों की कापी पढ़े बिना कुछ कहा नहीं जा सकता। अभी उसी दिन एक केस आया था। गर्भवती होने की खबर छिपाकर शादी कर डाली थी। शादी 'नल एण्ड वायड' करार दे दी गई।'
'नहीं, नहीं, यह बात नहीं है।' कावेरी ने उत्तर दिया। वह डर गई थी।
'पति को उस अफेयर का पता है ?'
'जी, उनसे कहा नहीं है।'
'और वह आदमी अगर वचन-भंग का मुकदमा चला दे, तो ? तुमने पत्रों में शादी वगैरह का वचन दिया था क्या ?'
'याद नहीं आ रहा है।'
'याद करके देखो। रात-भर सोच-साचकर कल मुझे बता जाना। डरने को

कोई बात नहीं है। मैं कोर्ट में तुम्हारे पक्ष से अपीयर होऊंगा। दूसरे पक्ष को, भले वह तुम्हारे पति हो, या वह दूसरा आदमी—खूब मजा चखा दूंगा। रोओ मत, बेटी। जब नीरद चौधरी खुद तुम्हारा केस ले रहा है, तो फिर रोने की क्या बात है?'

'अभी मैं क्या करूं?' कावेरी ने पूछा।

नीरद चौधरी ने समझाया, 'कुछ खास नहीं करना है, पर जानने की कोशिश करना कि तुम्हारे पति के अतीत में कोई गडबड है या नहीं। इससे तुम्हारा केस मजबूत होगा।'

नीरद चौधरी भले ही केस छोड दें, केस नीरद चौधरी को क्यों कर छोडेंगे? कावेरी के जाते ही एक और सज्जन आ पहुचे। उनके दाम्पत्य-जीवन में भी झंझट आ पड़ी थी। भूतपूर्व प्रेमिका उनके पत्रों को लेकर झमेला खड़ा कर सकती है। नीरद चौधरी ने उन्हे भी तसल्ली दी। केस जब कलकत्ता में ही होगा, तो मैं भी जरूर अपीयर होऊंगा। अगर वह लड़की ज्यादा शोरगुल मचाये, तो उसे सुना दीजियेगा कि केस नीरद चौधरी के हाथ में है।

होटल से कावेरी ने महाश्वेता को फोन किया, 'मेरी सुन, तू भी नीरद चौधरी से मिल आ। बडे अच्छे आदमी है।'

श्वेता ने रोते-रोते पूछा, 'हाय कावेरी, अगर वह मुझे त्याग दें, तो क्या होगा? दुनिया में क्या मुह दिखाऊंगी? जैसा बदमाश आदमी है, हो सकता है, आज ही दो-एक चिट्ठिया इनके पास भेज दे।'

कावेरी ने कहा, 'तू मिस्टर चौधरी को सारी बातें बता आ।'

नीरद चौधरी ने रोती हुई महाश्वेता को धीरज बधाया, 'डरो मत बेटी, तुम्हारा केस मैं लडूगा।'

'क्या मेरे पति मुझे छोड़ सकते हैं?' महाश्वेता ने पूछा।

'यह सब तो बेटी, पति के मिजाज पर निर्भर करता है। पर आसानी से नहीं छोड़ सकेंगे। मैं सीधे दाम्पत्य-अधिकार की पुनर्प्रतिष्ठा का मामला ठोक दूंगा। फिर खुली अदालत में ऐसी जिरह करूंगा कि पतिदेव को 'हाऊ-हाऊ' करके रोते ही बन पड़ेगा।'

'हैलो कावेरी, मैं श्वेता बोल रही हू। नीरद चौधरी से मैं मिली थी।'

'तेरे उनका क्या हाल है ?'

'वड़े गम्भीर नजर आ रहे हैं। हर समय मानो कतराते रहते हैं।'

'मेरा भी तो यही हाल है। नीरद चौधरी ने क्या कहा ?'

'उन्होंने कहा कि अदालत में देख लेंगे। पर तभी उनकी पत्नी, मिसेज चौधरी अचानक आ पहुंचीं। कहने लगीं, 'छिः एक कुलवधू अदालत में जायेगी ?' फिर मुझसे कहा कि वह आदमी अगर फिर फोन करे, तो उसे समझाने की आखिरी कोशिश कर देखना। टेलिफोन से पूरी बात नहीं हो सकती, कहीं छिपकर मिलने को कहा है। हो सकता है, आंखों से हमारी हालत देखकर उसका दिल पिघल जाये।'

'मिसेज चौधरी से मेरी मुलाकात नहीं हुई। होती तो शायद मुझसे भी यही कहतीं। छुट्टियां विताने आई हैं ना लगता है, पति को काम करने देना नहीं चाहतीं। तेरा क्या ख्याल है, श्वेता ? चौधरी की सलाह से कुछ होगा ? और फिर, उन्हें पता चल गया तो ? कहीं यह न सोच वैठें कि हम शादी के वाद भी अपने पूर्व-प्रेमियों से छिप-छिपकर मिलती हैं।' कावेरी ने जरा रुककर फिर कहा, 'और फिर श्वेता, वह इस तरह मिलने को तैयार थोड़े ही हो जायेगा !'

'हां, तू ठीक ही कह रही है, कावेरी। मेरा ख्याल है, चिट्ठियां साथ लाने को कहेगा। मैं तो अपनी चिट्ठियां ले जाऊंगी।'

'ठीक है, पर श्वेता, अकेले मिलने का साहस नहीं हो रहा है। तू साथ रहेगी न ? फिर अगर कोई गड़वड़ हुई, तो तू उन्हें समझा सकेगी।'

'आइडिया तो बुरा नहीं है, कावेरी। तू भी मेरी मीटिंग में रहेगी ना ? पर किसी और को पता न चले।'

'हां, हां, वह तो है ही।'

श्वेता ने घड़ी की ओर देखा। पौने चार वजे थे। साढ़े तीन वजे से वह कावेरी के साथ इस झुरमुट में खड़ी थी। इस सर्दी में भी दोनों को पसीना आ रहा था।

'जगह ठीक से समझा दी थी न ?' कावेरी ने पूछा।

'हां, कह दिया था, चर्च के पास से जो ब्राइडल-पथ वड़ी सड़क से निकलकर नीचे वाजार में मिल जाता है, वहीं चार वजे मिलूंगी।'

'एक वार कहने से ही राजी हो गया था ?' कावेरी ने पूछा।

'ज्यादा वहस नहीं करनी पड़ी। शायद पत्र वापस पाने के लालच में, कहते हों, तैयार हो गया। मुझसे कहा था, पत्र जरूर लेती आऊं।' महाश्वेता ने जवाब दिया।

कावेरी ने बताया, 'मेरे साथ भी यही हुआ। वह चार के बजाय पांच बजे आने को कह रहा था, पर मैं ही राजी नहीं हुई। तब तक लोग घूमने निकल पड़ते हैं ना। मैं भी तो उसी समय इनके साथ घूमने जाती हू।'
'आज कैसे भागकर आ पाई ?' महाश्वेता ने जानना चाहा।
'अपने-आपको तैयार कर रही थी। पर इनके कोई अफसर यहां आये हुए हैं, सो ये साढे ग्यारह बजे से ही उनसे मिलने निकल गये थे। वहां से फोन किया कि लंच वही लेंगे। बार-बार माफी मांग रहे थे। मैं कुछ बोली नहीं, पर सन्देह न करें, इसलिये खूब रौब से हुक्म दे दिया कि पांच बजे के पहले-पहले आ जाना होगा।'
'मुझे भी पांच बजे के पहले ही लौटना होगा। इनके भी इंजीनियरिंग कालेज के कोई प्रोफेसर आये हुए हैं—होटल में ठहरे हैं। वहीं मिलने गये है। ये प्रोफेसर साहब चाहें, तो इन्हें अमेरिका भी भिजवा सकते हैं।'
'अकेले ? या दोनों को ?' कावेरी ने पूछा।
'अकेला इन्हें कौन छोड़ेगा, भाई ? इधर इस मामले की वजह से जरा दब गई हूं—एक बार सब ठीक-ठीक हो जाये, फिर देखना।'
'भई श्वेता, मेरा तो दिल धड़क रहा है। लगता है, ठीक से बात भी नहीं कर सकूंगी। पहले उसके साथ कितनी बहसें कर चुकी हूं, फिर भी··· ।'
'कावेरी, ऐसी बातें मत कर। मेरी हिम्मत भी टूटने लगती है।'
'अच्छा श्वेता, जब वह देखेगा कि मैं पत्र नहीं लाई हूं, तो सोचेगा कि मैं उसे ठग रही हू।'
'मैं तो भई उससे कहूंगी, पराई स्त्री हूं···नहीं तो, तुम्हारा शरीर छूकर सौगन्ध खाती कि मेरे पास कोई पत्र नहीं है। फिर मैं रो दूगी। शायद आंसू देखकर पिघल जाये। तू दूर से सब देखती रहना। जरूरत पड़े, तो आकर मेरा पक्ष लेकर उसे समझाना।'
कहते-कहते श्वेता अचानक रुक गई, मानो डर गई हो। वह झुरमुट में छिपने की कोशिश करने लगी।
'क्या हो गया तुझे ?' कावेरी ने पूछा।
'सर्वनाश हो गया ! मैं भागती हू।'
'कहां भागेगी ?'
श्वेता बोली, 'दिखाई नहीं पड़ता तुझे, इस तरफ एक आदमी आ रहा है ? तू नाटी है ना, इसीलिये अब तक नजर नहीं पड़ी। मेरे पति-जैसा दिखाई दे रहा है। इस तरफ वे क्यो आये ? क्या मैं उन्हें पुकारूं, इस तरह मानो अचानक मुलाकात हो गई हो ? फिर उनके साथ ही लौट जाऊंगी। कहीं वह आदमी भी अभी हो

न आ पहुंचे··· हाय, मैं क्या करूं, कावेरी ?'

श्वेता को शान्त करने में कावेरी ने अभी तक दूसरी ओर देखा ही नहीं था। ब्राइडल-वे की दूसरी ओर से एक सज्जन दबे पांव चढ़ते आ रहे थे। 'गजब हो गया श्वेता, मेरे पति !'

'कावेरी, मैं भागती हूं। नीचे की तरफ से जो आदमी आ रहा है, वह वही शैतान है—मेरा भौंरा !'

'नहीं श्वेता, तुझसे गलती हुई है। वह मेरे पति हैं। तेरा दिमाग खराब हो गया है। पर भागना मुझे भी पड़ेगा। यह लो, गये काम से··· मेरी चिट्ठियां लेकर वह काला नाग भी आ पहुंचा !'

'नहीं रे कावेरी, तू गलत देख रही है। यह तो मेरे पति विमन लाहिड़ी हैं।'

'क्या कहा ? तेरे पति का नाम विमन लाहिड़ी है ? और तेरे भौंरे का नाम ?'

'रमेन बागची।' महाश्वेता ने किसी प्रकार उत्तर दिया।

'ऐं ! रमेन बागची तो मेरे पति का नाम है। इतने दिन क्यों नहीं कहा तूने ? मेरे भौंरे का नाम विमन लाहिड़ी था।'

अचानक ही सारी बात दोनों के आगे स्पष्ट हो गई।

'ऐसी हिम्मत ! ठहरो, मजा चखाती हूं।' दोनों सखियां हुंकार उठीं।

'कावेरी, तुझे डरने की कोई जरूरत नहीं है।' श्वेता ने कहा।

'श्वेता, तू निश्चिन्त रह।' कावेरी ने धीरज बंधाया।

अचानक ही दिखाई दिया कि दोनों पुरुष चौंककर अबाउट-टर्न होकर तेजी से भागने लगे। स्त्रियों को देख लिया था उन्होंने। पर दोनों सहेलियों ने तत्काल निश्चय कर लिया कि दोनों अपने-अपने पति को जा पकड़ेंगी।

बेचारे विमन लाहिड़ी कुछ गज ही दौड़ पाये थे कि श्वेता लाहिड़ी के द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। रमेन बागची को जब कावेरी बागची ने जा पकड़ा, तो वे थर-थर कांप रहे थे।

'क्यों, इसी को अफसर के साथ मिलना कहते हैं ना ?' कावेरी ने दांत भींचकर पूछा।

'अ··· अ··· मेरा मतलब है, अभी-अभी बातें खतम हुई हैं।'

अब तक महाश्वेता भी अपने पति को खींचती हुई वहां ले आई थी। कावेरी ने बिना कुछ कहे पति की जेबों की तलाशी शुरू कर दी, और पत्रों का बण्डल खोज निकाला, 'यह ले श्वेता, तेरी चिट्ठियां।'

श्वेता ने भी तब तक खाना-तलाशी पूरी कर ली थी, 'यह ले, कावेरी, तेरी।'

बेचारे रमेन बागची और विमन लाहिड़ी ! लग रहा था, दोनों संसार का कोई

जघन्यतम अपराध कर बैठे हैं। महाश्वेता लाहिड़ी और कावेरी बागची ही वादी बन बैठी थी। दोनों सहेलियों ने आपस में तय कर लिया था कि वे स्वयं निरपराध हैं।

असली बात सामने आई। रमेन और विमन का इरादा ब्लैक-मेलिंग का हरगिज नहीं था। अपनी पत्नियों के भय से ही दोनों ने अपने पत्र वापस चाहे थे।

चूंकि आसामियों ने अपराध स्वीकार कर लिया, इसलिये उन्हें कोई भारी सजा नहीं दी गई। विजयिनी सखियां जरूर खूब हंस-हंसकर चहक रही थी। होटल में आकर चाय की मेज पर शान्ति की पुनः स्थापना हुई। दोनों सहेलियों ने अपने-अपने पतियों को चेतावनी दे डाली, 'खबरदार, अब कभी भी किसी लड़की की ओर मत देखना।'

भीतर-भीतर दोनों ही सखियों ने अफसोस प्रकट किया, 'हाय रे, जिसे पाने की साध इन्हें थी, उसी से ब्याह कर लेते!'

दोनों में एक और गुप्त-सन्धि हुई है। दोनों सहेलियों के पुत्र-पुत्री में यथासमय विवाह होगा, ताकि कावेरी अपने वचन के अनुसार विमन लाहिड़ी की पोती को वे पत्र दे सके।

कावेरी की कुछ आदत ही है, बेकार चिन्तित होने की। वह बोली, 'अगर तेरे बेटा और मेरे बेटी नहीं हुई तो? अगर दोनों के ही बेटा, या दोनों के ही बेटियां हो जायें, तो?'

पर महाश्वेता आशावादिनी है। उसने कहा, 'बेकार डर रही है! कहीं एक सावन में ही मेह रीत जाता है?'

बंगला-कथाकार : संक्षिप्त-परिचय

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जन्म १८६८ को वीरभूम जिले के लामपुर ग्राम में। छात्र-जीवन में ही राजनैतिक आन्दोलन से सम्पृक्त। १९३० के असहयोग-आन्दोलन में कारावास।
साहित्य-साधना का आरंभ कविता और नाटकों से। प्रथम प्रकाशित पुस्तक 'त्रिनेत्र'। प्रथम प्रकाशित उपन्यास 'दीनार दान' धारावाहिक रूप से 'शिशिर' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। 'हासुली बांकेर उपकथा' पर शरत्चन्द्र स्वर्णपदक मिला। 'आरोग्य निकेतन' पर रवीन्द्र पुरस्कार एवं साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। कुछ समय तक बंगाल राज्य-सभा के मनोनीत सदस्य। १९३३ में मतिलाल पुरस्कार प्राप्त हुआ। समकालीन कथाकारों में वैविध्य तथा वैशिष्ट्य की दृष्टि से अन्यतम।
विशिष्ठ रचनायें—जलसाघर, राइकमल, गणदेवता, पंचग्राम, कालिन्दी, आगुन, बेदेनी, रसकलि, धात्रिदेवता, दुइ पुरुष, हारानोमुर, स्थलपद्म, आरोग्य निकेतन, छलनामयी, माटी, सप्तपदी, डाक हरकारा, हीरा पान्ना, कान्ना।
दर्जनों उपन्यासों और कहानियों पर बंगला में तो अच्छी फिल्में बनी ही है, इधर हिन्दी में भी बनने लगी हैं। कई उपन्यास और कहानियां हिन्दी में अनूदित। पूर्णतया लेखनजीवी।
पता : पी १७१, टाला पार्क, कलकत्ता-२

मनोज वसु

जशोहर जिले के 'डोड़ाघाटा' ग्राम में, जो इस समय पाकिस्तान में है, २४ जुलाई १९०१ को जन्म। पिता रामलाल वसु। वागेरहाट और कलकत्ता में शिक्षा-ग्रहण। १९२४ में वी० ए० पास करके अध्यापकी आरंभ की। वचपन से ही साहित्य से प्रेम। 'प्रवासी' और 'विचित्रा' में प्रथम वार इनकी 'वाघ' और 'नतुन मानुष' नामक कहानियां एक साथ प्रकाशित हुईं। कहानी, उपन्यास, भ्रमण-कथा, नाटक सभी कुछ लिखा। चीन और रूस यात्रा पर भी गये। १९५४ में 'चीन देखे एलाम' पुस्तक पर 'नरसिंहदास पुरस्कार' प्राप्त हुआ। १९६४ में मतिलाल पुरस्कार प्राप्त हुआ।
प्रसिद्ध रचनायें—भूलि नाइ, प्लावन, जलकल्लोल, कांचेर आकाश, गल्प पंचाशत, ओ गो वधु सुन्दरी, रूपवती इत्यादि। कुछ कृतियों पर फिल्मों का निर्माण।
मुख्यत: लेखनजीवी, निज का एक प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान भी है।
पता : पी ५६०, लेक रोड, कलकत्ता-२९

प्रेमेन्द्र मित्र

जन्म १९०४, काशी में। शिक्षा और जीवन कलकत्ता और ढाका में। पहली कहानी 'शुधु किरानी' प्रकाशित हुई 'प्रवासी' में। वाद में कल्लोल-गोष्ठी के साथ घनिष्ठता। 'कालि कलम' पत्रिका का प्रकाशन शैलजानन्द मुखोपाध्याय और मुरलीधर वसु के सहयोग से। वाद में 'संवाद' और 'नवशक्ति' का संपादन। फिर वुद्धदेव वसु और समर सेन के साथ 'कविता' पत्रिका का प्रकाशन। 'रंगशाला' पत्रिका में भी काम किया। मास्टरी भी की। चलचित्रों का निर्देशन और प्रस्तुतिकरण भी किया। आकाशवाणी कलकत्ता से भी संयुक्त रहे।
इनका प्रथम प्रकाशित उपन्यास 'पांक' है। प्रथम प्रकाशित कविता संग्रह 'प्रथमा'। कई कहानियों और उपन्यासों पर चलचित्र वने जिनमें सत्यजित राय द्वारा निर्देशित महानगर, कापुरुष, आदि भी शामिल हैं।
प्रमुख रचनायें—पांक, मिछिल, वेनामी वन्दर, कुयाशा, सागर थेके फेरा, श्रेष्ठ गल्प, सप्तपदी, घनादार गल्प, छायातोरण, महानगर इत्यादि।
'सागर थेके फेरा' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार। इस कविता-पुस्तक की अव तक ३३५०० प्रतियां विक चुकी हैं।
पूर्णतया लेखनजीवी।
पता : ५७, हरीश मुखर्जी रोड, कलकत्ता-२५

शिवराम चक्रवर्ती

जन्म दिसम्बर १९०५, ग्राम चांचड़, जिला मालदह। पिता शिवप्रसाद चक्रवर्ती। स्कूल में जब अध्ययन कर रहे थे तभी असहयोग-आन्दोलन के स्वयंसेवक बने। उसी समय देशबन्धु चित्तरंजन दास, सुभाषचन्द्र और काजी नजरुल इस्लाम जैसी विभूतियों के सहवास का अवसर मिला।
'आत्मशक्ति' साप्ताहिक का संपादन किया और इनके संपादकीयों ने इन्हें कई बार ब्रिटिश जेलों में रखा। 'मास्को बनाम पांडिचेरी' और 'अचल टाका' ने इनको समालोचक सिद्ध कर दिया। शरत्चन्द्र की 'षोडषी' का नाट्य-रूपान्तर किया। 'मौचाक पुरस्कार' और 'भुवनेश्वरी पदक' नामक दो साहित्यिक पुरस्कार भी प्राप्त हुए।
प्रमुख रचनायें—बाड़ी थेके पालिये (इस पुस्तक पर चलचित्र भी बना), अद्वितीय पुरस्कार (कहानी संग्रह), अचल टाका आदि।
बंगला में हास्य-व्यंग्य के प्रमुख लेखक। 'आनन्द बाजार पत्रिका' में नियमित स्तम्भ-लेखन।
पूर्णतया लेखनजीवी।
पता १३४, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता

आशापूर्णा देवी

जन्म ८ जनवरी १९०९। पिता चित्रकार हरेन्द्रनाथ गुप्त। १९२४ में कृष्णनगर के कालिदास गुप्त के साथ विवाह। अल्प आयु से ही साहित्य के प्रति प्रबल आकर्षण के फलस्वरूप गृह-कार्य के साथ-साथ साहित्य-साधना में रत।
पहले कवितायें लिखी, फिर कहानियां। बाल-साहित्य में भी महत्वपूर्ण योगदान। बंगला कथा-साहित्य की समकालीन लेखिकाओं में अन्यतम।
रचनाओं की लोकप्रियता बहुत अधिक है। कई उपन्यासों पर चलचित्र भी बन चुके हैं। १९५४ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से 'लीला पुरस्कार' और १९५९ में 'मतिलाल पुरस्कार' प्राप्त हुआ।
प्रमुख ग्रंथ—अनिर्वाण, वलय ग्रास, प्रेम-ओ-प्रयोजन, दिनान्तेर रंग, उत्तर-लिपि, सोनार हरिण, सोनाली सन्ध्या, प्रथम प्रतिश्रुति, मायाजाल दोलना इत्यादि।
स्वतंत्र रूप से लेखन-कार्य।
पता : २८।१ ए, गड़ियाहाट रोड, कलकत्ता-१९

सुबोध घोष

जन्म हजारीबाग, १९०९। पिता सतीशचन्द्र घोष। स्कूल और कालेज की शिक्षा हजारीबाग में ही। पहली कहानी 'अयांत्रिक' आनन्द बाजार पत्रिका में प्रकाशित हुई। 'फसिल' कहानी लिखकर इन्होंने साहित्य-जगत को आन्दोलित कर दिया। आरंभिक जीवन में दार्शनिक महेशचन्द्र घोष के सम्पर्क में आये। फिर एक सर्कस में नौकरी करके सारे भारत में घूमते फिरे। कुछ दिनों तक जहाज के स्वास्थ्य-परीक्षक भी रहे। तेल कम्पनी की नौकरी में भी रहे। बस-कंडक्टरी की, चाय और मक्खन का व्यवसाय भी किया।

प्रमुख रचनायें—फसिल, जतुगृह, त्रियामा, भारतीय फौजेर इतिहास, सुजाता, छायावृता इत्यादि।

कुछ कृतियों पर अच्छी फिल्में भी बनी हैं।

सम्प्रति बंगला दैनिक 'आनन्द बाजार पत्रिका' से संयुक्त।

पता : ३८।४३, एस० के० देव रोड, कलकत्ता-४८

गजेन्द्रकुमार मित्र

जन्म १९०९, कलकत्ता में। तीन वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु। उसके बाद परिवार के साथ काशी-निवास। आरंभिक जीवन और छठी कक्षा तक अध्ययन काशी में ही। मां की अस्वस्थता के कारण फिर कलकत्ता आगमन।

प्रथम रचना 'ऋत्विक' पत्रिका में १९२८ में।

कुछ समय तक स्कूलों में कमीशन पर किताबें बेचने का काम किया। फिर १९३४ में अपना प्रकाशन खोला। १९३६ में अपने एक मित्र के साथ साझेदारी में उसी संस्था का नाम 'मित्र और घोष' कर दिया, जो बंगला में आज काफी प्रतिष्ठित प्रकाशन-संस्था है।

प्रमुख रचनायें—स्त्रियाश्चरित्रम् (कहानी-संग्रह), रजनीगंधा (इसी पर आधारित हिन्दी की प्रसिद्ध फिल्म 'कंगन' बनी), रात्रिर तपस्या, कलकत्तार काछेइ, वह्निवन्या, नारी ओ नियति इत्यादि।

'कलकत्तार काछेइ' पर साहित्य-अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ।

ऐतिहासिक थीम पर उपन्यास लिखने में विशेष सफलता।

स्वतन्त्र लेखन और प्रकाशन से जीविकोपार्जन।

पता : मित्र एण्ड घोष, ८४ ए, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता

लीला मजुमदार

जन्म २६ फरवरी १६०६, कलकत्ता में। पिता प्रसिद्ध गणितज्ञ प्रमदारजन राय। आरंभिक शिक्षा लोरेटो कान्वेन्ट, शिलांग। कलकत्ता विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा। १६३० में एम० ए० (अंग्रेजी) में सर्वप्रथम। चौदह वर्ष की अवस्था में प्रथम कहानी 'लक्ष्मी छाडा' बाल-पत्रिका 'संदेश' में छपी। १६३३ में डाक्टर सुधीर-कुमार मजुमदार से विवाह।

१६५६ में 'हलदे पांखीर पालक' पर 'लीला पुरस्कार' मिला। शिशु-साहित्य के लिये भारत सरकार का राष्ट्रीय पुरस्कार दो बार मिला।

प्रमुख रचनायें—झांपताल, हलदे पांखीर पालक, एइ जा देखा, बक-धार्मिक, टंगलिंग, हट्टमालार देशे, लंकादहन पाला इत्यादि।

अधुना पूर्णतया साहित्य-सेवा।

पता : सूट न० ८, ३० चौरंगी स्क्वायर, कलकत्ता-१६

विमल मित्र

जन्म १८ मार्च १६१२। कलकत्ता विश्वविद्यालय से बंगला-साहित्य में एम० ए०। प्रथम रचना मासिक 'वसुमती' में प्रकाशित हुई।

१६४५ में 'दिनेर-पर-दिन' नामक प्रथम कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ। १६४५ से ४७ तक 'देश' साप्ताहिक में 'छाई' उपन्यास का धारावाहिक प्रकाशन। १६६२ मे मतिलाल पुरस्कार और १६६४ में रवीन्द्र पुरस्कार प्राप्त किया।

प्रमुख रचनायें—साहब-बीबी-गुलाम, कड़ी-दिये-किनलाम, एकक-दशक-शतक, मिथुन-लग्न, श्रेष्ठ-गल्प, गुलमोहर, तोमरा दूजन मिले, पुतुल दीदी, बेनारसी, सरस्वतिया, स्त्री, एक राजार छयरानी, मने रइलो इत्यादि।

प्रथम तीनों उपन्यास हिन्दी में भी अनूदित। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र के बाद हिन्दी-पाठकों में सर्वाधिक लोकप्रिय आप ही हैं। अनेक उपन्यास और कहानियों [illegible] में [illegible] है। 'साहब-

बी'

ज्योतिरिन्द्र नन्दी

जन्म १९१२, त्रिपुरा जिले के ब्राह्मणबाड़िया में। पिता अपूर्वचन्द्र नन्दी। ब्राह्मणबाड़िया और कुमिल्ला में स्कूली और उच्च शिक्षा।
कालेज जीवन से ही राजनैतिक आन्दोलनों से सम्पृक्त रहने के कारण कुछ दिनों तक जेल और कुछ दिनों तक घर में नजरबन्द। जे० वाल्टर टामसन कम्पनी, दमदम एयरपोर्ट के अतिरिक्त, 'दैनिक आजाद', 'युगान्तर' और 'जनसेवक' पत्रों में नौकरी।
प्रथम कहानी 'अन्तराल'। १९४६ में प्रथम कहानी-संग्रह 'खेलना'।
प्रमुख रचनायें—सूर्यमुखी, शालिक कि चड़ूइ, बन्धु-पत्नी, मीरार दुपुर, टैक्सी ड्राइवर, बारो घर एक उठोन, पासेर फ्लैटेर मेये इत्यादि।
पूर्णतया लेखन पर आश्रित।
पता : १४३, बागमारी रोड, कलकत्ता-११

नरेन्द्रनाथ मित्र

जन्म १९१६, फरीदपुर जिले के सदरदी ग्राम में। शिक्षा फरीदपुर और कलकत्ता में। छात्र-जीवन से ही साहित्य के प्रति प्रेम।
प्रथम रचना 'कविता' साप्ताहिक 'देश' में प्रकाशित। विभिन्न कार्यालयों और बैंक में नौकरी। १९६२ में 'आनन्द पुरस्कार' प्राप्त किया।
प्रमुख रचनायें—असमतल, उल्टोरथ, हलदे बाड़ी, पागल, अक्षरे-अक्षरे, देह-मन (हिन्दी में अनूदित), चेना-महल, श्रेष्ठ-गल्प, स्वर-संधि, मयूरी, उपनगर, मिसेस ग्रीन इत्यादि।
'आनन्द बाजार पत्रिका' में सहकारी-सम्पादक।
पता : २०।१ए, राजा मणिन्द्र रोड, कलकत्ता-३७

नवेन्दु घोष

जन्म १९१७। बाल्यकाल पटना में बीता। आरंभिक शिक्षा भी वहीं हुई। फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० किया।
कई साल मिलिट्री एकाउण्ट्स में क्लर्की भी की। इसके बाद नौकरी छोड़कर कुछ समय तक पूर्णरूप से लेखनाश्रयी। फिर बंगला चलचित्र-निर्माता अर्धेन्दु मुखोपाध्याय के साथ कार्य आरम्भ किया।

कहानी-लेखन तथा निर्देशन से लेकर फिल्मों में अभिनय तक किया। 'लुका-चोरी' नामक चलचित्र में इन्होंने अच्छा अभिनय किया था।
प्रथम उपन्यास 'भग्नस्तूप' पटना से निकलने वाली एक बङ्गला पत्रिका में धारावाहिक रूप से छपा। बाद में यही 'डाक दिए जाइ' नाम से पुस्तकाकार छपा और बहुत लोकप्रिय हुआ।
प्रसिद्ध रचनायें—सुख नामे शुकपांखी (कहानी-संग्रह), आगुनेर उक्ति, भालो बासार अनेक नाम, फीयर्स लेन, डाक दिए जाइ इत्यादि।
आज-कल विमल राय प्रोडक्शन्स, बम्बई में कहानी-लेखक और संवाद-लेखक के रूप में कार्य कर रहे हैं, और कई प्रसिद्ध हिन्दी-फिल्मों की कहानी और संवाद-लेखन का श्रेय इन्हें है।
पता : पुष्प नगर कालोनी, मलाड, बम्बई

नारायण गंगोपाध्याय

जन्म १९१८, दिनाजपुर जिले के बलियाडाङ्गि ग्राम में। मूल निवासी बरिशाल जिले के। शिक्षा दिनाजपुर, फरीदपुर, बरिशाल और कलकत्ता में।
१९४१ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० (बंगला) में सर्वप्रथम।
साहित्य-साधना में बाल्यकाल से ही रुचि। 'मास पयला' नामक बाल-पत्रिका में सर्वप्रथम रचनायें प्रकाशित। फिर 'देश', 'आनन्द बाजार पत्रिका' और 'शनिवारेर चिठि' में रचनाएं प्रकाशित।
लेखन का आरम्भ कविता से। फिर कहानी की ओर झुकाव। प्रथम उपन्यास 'भारतवर्ष' पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित। फिर १९४३ में ग्रन्थाकार प्रकाशित। १९६४ में 'आनन्द पुरस्कार' प्राप्त हुआ।
प्रसिद्ध रचनायें—उपनिवेश, एक तल्ला, काला बन्दर, तिमिर तीर्थ, शिला-लिपि, हासिर गल्प, लीलावती इत्यादि।
बंगला में कई कहानी-संग्रहों का सम्पादन भी किया।
सम्प्रति कलकत्ता विश्वविद्यालय में बंगला साहित्य के प्राध्यापक।
पता : ९।१।१, बैठकखाना रोड, कलकत्ता

वाणी राय

जन्म १९१९, पाबना (अब पाकिस्तान में)। पिता पूर्णचन्द्र राय, जमीन्दार और व्यवसायी। माता बंगला की प्रसिद्ध लेखिका गिरिबाला देवी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम० ए० । कुछ समय तक शौकिया नौकरी और अध्यापन किया । 'वूमेन डाइजेस्ट' और 'ईस्टर्न पोस्ट' नामक अंग्रेजी पत्रिकाओं का सम्पादन ।
प्रथम प्रकाशित कहानी 'लुक्रेशिया' है जो 'शनिवारेर चिठि' में छपी । सर्वप्रथम प्रकाशित ग्रन्थ 'जुपिटर' (कविता-संग्रह) ।
अधुना पूर्णतया लेखन पर आश्रित ।
प्रसिद्ध रचनायें—पुनरावृत्ति, प्रेम, निस्संग विहंग, नरसिंह, चोखे आमार तृष्णा (हिन्दी में अनूदित), सकाल सन्ध्या रात्रि, सातटि रात्रि इत्यादि ।
पता : ७३ साउथ एवेन्यू, कलकत्ता-२९

विमल मित्र

जन्म १९२१, टाकी, चौबीस परगना । प्रारम्भिक जीवन धनबाद, आसनसोल और कलकत्ता में बीता । इन्हीं स्थानों पर अध्ययन भी किया ।
विश्वविद्यालय छोड़ने पर तीन वर्षों तक रेलवे एकाउण्ट आफिस में क्लर्की । फिर 'सत्य युग' और 'पश्चिम बंगाल पत्रिका' का संपादन किया ।
प्रसिद्ध रचनायें—देवाल, ग्रहण, खड़कूटो, सूर्यमय, ह्रद, और बालिका वधू । अन्तिम दो उपन्यासों पर चलचित्र भी बन चुके हैं ।
बंगला के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'देश' से पिछले बारह-तेरह वर्षों से संयुक्त ।
पता : ६ सूटरकिन स्ट्रीट, कलकत्ता-१

रमापद चौधुरी

जन्म १९२२, खड़गपुर में । पिता ताराप्रसन्न चौधुरी । प्रेसीडेन्सी कालेज से बी० ए० और कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम० ए० किया । विभिन्न प्रान्तों में काफी दिनों तक भ्रमण करते रहे । मछली, लकड़ी तथा अन्य वस्तुओं का असफल व्यवसाय किया । 'इदानीं' नामक पत्रिका का संपादन-प्रकाशन । 'रमापद चौधुरी पत्रिका' का भी प्रकाशन कुछ दिनों तक किया । प्रथम प्रकाशित उपन्यास 'अन्वेषण' और कहानी-संग्रह 'दरबारी' । १९६३ में 'आनन्द पुरस्कार' मिला ।
प्रसिद्ध रचनायें—अन्वेषण, लालबाई ('धर्मयुग' में धारावाहिक प्रकाशन), प्रथम प्रहार, शुभदृष्टि, दरबारी, दीपेर नाम टियारंग (हिन्दी पत्रिका 'लहर' में धारावाहिक प्रकाशन) और गल्पसमग्र आदि ।
सम्प्रति 'आनन्द बाजार पत्रिका' के साहित्य-विभाग से सम्बन्धित ।
पता : ६ सूटरकिन स्ट्रीट, कलकत्ता-१

समरेश बसु

जन्म १९२३। प्रथम कहानी 'आदाब' प्रकाशित हुई 'परिचय' में। अपनी रचनाओं के विषय में उनका कथन है : 'जीवन के स्थूल आवरण के नीचे जो कल-पुर्जे निरन्तर घूमते रहते हैं, उन्हें हम साधारणतया देख नहीं पाते। किन्तु उसीके अनुसार जीवन के खेल होते रहते हैं। और इसीलिये हम उसे खोजते-खोजते मरे जा रहे हैं। इसी खोज और मरने का नाम है : 'कलाकार की साधना, उसका अध्यवसाय, उसका अविश्रान्त अनुसन्धान'। हमें तो लगता है, हमारे उपन्यास और कहानियां इसी अविश्रान्त अनुसन्धान के फल हैं।'

१९५८ में 'आनन्द पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

प्रसिद्ध ग्रंथ—उत्तरंग, बी० टी० रोडेर धारे, श्रीमती काफे, अचिन पुरेर कथकता, छोटो-छोटो ढेउ, गंगा, अमनान्त, बाघिनी इत्यादि।

हाल में प्रकाशित 'विवर' उपन्यास बंगला-कथा-साहित्य में चर्चा और वाद-विवाद का एकान्त विषय रहा है। इसके अलावा, पिछले दिनों एक विशेष थीम पर आधारित 'सात भुवनेर पार' उपन्यास 'उल्टोरथ' में प्रकाशित हुआ है।

कई उपन्यासों पर बंगला में बहु-चर्चित फिल्में बनी हैं, और बन रही हैं। हिन्दी में भी कुछ फिल्में निर्माणाधीन हैं।

पूर्णतया लेखनजीवी।

पता : नारिकेल बागान, नैहट्टी, २४ परगना

कविता सिंह

जन्म १६ अक्टूबर १९३१। जन्म से आजतक का पूरा जीवन कलकत्ता में बीता। स्काटिश-चर्च और प्रेसिडेंसी कालेज में बी० ए० तक अध्ययन। १९५३ में बंगला के उदीयमान आलोचक और कहानीकार विमल रायचौधुरी से विवाह।

समान रूप से कवितायें, कहानियां और उपन्यास लिखती हैं। बंगला के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी लिखती हैं।

१९६२ में राष्ट्रीय-कवि-सम्मेलन में बंगला की एकमात्र महिला-प्रतिनिधि। कई रचनाओं का हिन्दी, अंग्रेजी और मराठी में अनुवाद हो चुका है।

प्रसिद्ध रचनायें—सोनाल्पार काठी, पाप-पुण्य पेरिए, सलिल-सीता, अथवा इत्यादि।

सम्प्रति आकाशवाणी कलकत्ता से सम्बद्ध।

पता : १६ बी, गोविन्द घोषाल लेन, कलकत्ता-२५

शंकर

जन्म ७ दिसम्बर १९३३। चौबीस परगना के बनगांव नामक स्थान में। प्रसिद्ध बंगला-लेखक विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय का जन्म भी इसी जगह हुआ था।

प्रथम उपन्यास 'कतो अजाना रे' १९५५ में प्रकाशित। हिन्दी में भी इसके दो संस्करण निकल चुके हैं। इस पुस्तक पर दिल्ली विश्वविद्यालय का 'नरसिंहदास अगरवाला पारितोषिक' १९५६ में प्राप्त हुआ। १९५८ में 'जा बोलो ताइ बोलो' नाम से एक रम्य-रचना पुस्तकाकार छपी। १९५९ में 'पद्म-पाताय जल' नामक लघु-उपन्यास प्रकाशित हुआ जो अनूदित होकर धर्मयुग में छपा। १९६० में 'एक दुइ तीन' नाम से तीन लम्बी कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसके अब तक १२ संस्करण हो चुके हैं। १९६२ में इनकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'चौरंगो' निकली जिसके बंगला में १७ और हिन्दी में तीन संस्करण हो चुके हैं। इस पर बंगला चलचित्र भी बन रहा है। १९६३ में 'योग-वियोग' (लघु-उपन्यास) छपा जो अब हिन्दी में भी अनूदित हो चुका है। १९६४ में 'पात्र-पात्री' (व्यंग्य-उपन्यास), १९६५ में 'मानचित्र' (कहानी-संग्रह) और १९६६ में 'निवेदिता रिसर्च लेबोरेटरी' नामक लघु-उपन्यास 'देश' में प्रकाशित हुआ। १९६३ में विवेकानन्द शताब्दी के अवसर पर शंकरीप्रसाद बोस के साथ 'विश्व-विवेक' का संपादन किया।

युवक-लेखकों में अभूतपूर्व लोकप्रियता इन्हें मिली है।

फिलिप्स इण्डिया लि० के प्रचार-विभाग से संयुक्त।

पता : १८ एल, बिहारीलाल चक्रवर्ती लेन, हावड़ा
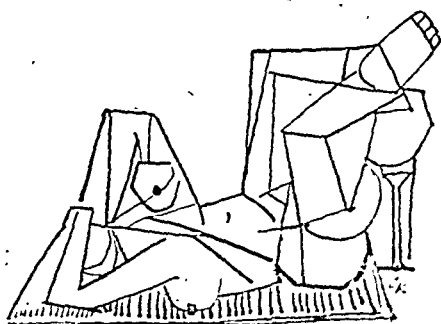
राय ? नहीं, सायिन को लेकर शराबखाने में बैठकर मस्ती करने लायक पैसा उसके पास नहीं था। कई हाथों में होकर भी रमा वहां किसी के पास आई थी।

उसके बाद बहुत दिनों तक किसी ने मुझे बीवी के बारे में कोई खबर नहीं दी। तीन साल बाद खबर मिली कि देहरादून के अस्पताल में घाव से पीड़ित ढाई-तीन महीने से पड़ी हुई रमा ने आखिरी सांस ली है।
सुनकर मैंने भी सन्तोष की सांस ली।
उसके बाद मैं नारकेलडांगा से सर्कुलर रोड और सियालदह के आस-पास आ गया। किराये पर टाइल शेड में गाड़ी लेकर रहने लगा। अब मेरी आमदनी बढ़ गई थी, यानी अच्छी-खासी आमदनी हो जाती थी।
पूर्व-परिचय मैंने इसलिये दिया है, कि मेरे ऊपर से कितने तूफान गुजरे हैं। आप लोग सुनकर हंसेंगे ही। हंसेंगे और दुखी भी होंगे। और यह बहुत ही सच है, जैसा कि लोग कहते हैं, कि ईश्वर एक तरफ से लेता है, तो दूसरी तरफ से देता भी है।
पत्नी गई, जमींदारी गई, अपना देश छूटा। जमाने को देखते हुए किसी बुरी दशा में मुझे यहां जीवन बिताना नहीं पड़ता, इसका कोई भरोसा था क्या ? हां, मैं रुपये-पैसों की बात ही कर रहा हूं। मजे में हूं, सुखी ही कह सकते हैं। देखिये, मैं चाहूं तो रोज एक बोतल 'बियर' पी सकता हूं।
अपने ठिकाने पर जाकर दोपहर को सासपैन में चावल और आलू उबालकर खाना मैंने छोड़ दिया है। अब सियालदह या धर्मतल्ला के किसी होटल में तीन-साढ़े तीन रुपये खर्च करके मांस-भात उड़ाता हूं। शराब को अमल में अभ्यास में नहीं लाना चाहता, मेरे पेट की खराबी बचपन से ही थोड़ी-बहुत है, 'लिवर' कमजोर है। इससे सुविधा ही हुई है कि फिजूल-खर्ची से बच गया। इसलिये दो-चार हजार रुपये मैं जब-तब निकाल सकता हूं। एक बैंक एकाउन्ट खोल लिया है मैंने। खाने-पीने पर व्यय करने के बाद जो बचता है, वह मैं बैंक में डाल देता हूं।

अब तक आप समझ गये होंगे, मैं लोलुप दृष्टि से उस लड़की को क्यों देख रहा हूं। देख रहा था कि कब वह खाकर चुके और बाहर निकल कर मेरी गाड़ी में बैठे। और थोड़े रुपये मिल जायेंगे। ड्राइवर लोग जो टैक्सी चलाते हैं, उन्हें बस यही चिन्ता रहती है।
इसके अतिरिक्त मैं छुपाऊंगा नहीं, उस लड़की को जब देख रहा था, तब उसके हाथ-पैर, पीठ, कंधे, बाल तथा उसका रंग, यहां तक कि उसकी कमर कितनी पतली

चाय का कप हाथ में लिए एक तरुणी को देख रहा होऊं, वनानी को। उसकी सफेद सुगठित बांहें, कसा हुआ जूड़ा, कटार-जैसी भुकी हुई और तीखी उद्धत नाक। कालेज में पढ़ती है वनानी सेन। वनानी की तरह सभी लड़कियां देखने में सुन्दर होती हैं। जी हां, मेरी गाड़ी में जो सवार होती हैं, वे सब लड़कियां, सब बहुयें, सभी सुन्दरी होती हैं।

टैक्सी का दरवाजा खोलकर जब मैं चुपचाप एक ओर खड़ा होता हूं, तब मैं उन्हें देखता हूं। उनके केश देखता हूं, आंखों की पलकें देखता हूं, गर्दन के नीचे बांकी पीठ, कमर आदि सब देखता हूं। टैक्सी में चढ़ते या उतरते समय यदि किसी लड़की की साड़ी या साया थोड़ा ऊपर उठ जाता है, तो मैं पैर का रंग, पुष्ट पिंडलिया, यहां तक कि रोओं को भी सूक्ष्म दृष्टि से एक नजर देख लेता हूं। आप पूछ सकते हैं—क्यों? आदत। लेकिन बस यहीं तक। ऊपर-ऊपर देखना। नख-शिख, उंगलियां, पलकें एवं मांसलता के अलावा और कुछ देखने की मेरी इच्छा भी नहीं होती और फुर्सत भी नहीं रहती।

मन? तभी तो कह रहा था, इन लोगों के मन की तरफ मैं नहीं फटकता। जहां तक सम्भव हो, आंखें मूंदे रहता हूं, कटने की सोचता हूं। वरना, वनानी के दरवाजे के सामने यथा-समय मेरी टैक्सी न पहुंचे तो वह क्यों गुस्सा होती है, बालीगंज की वह बहू क्यों बेहोश हो जाती है, टालीगज की लड़की की आंखों में अंधेरा छा जाता है और वह आत्महत्या के लिये तैयार रहती है। इन सब बातों को मैं जानता हूं। लेकिन जानकर करूंगा क्या? मैं तो पहले से ही एक से धोखा खा चुका हूं। इसीलिए चुप रहता हूं। आंखें मूंदकर घूमता हूं। मीटर मिलाकर एक सेकन्ड के लिए भी कहीं नहीं रुकता, किसी दूसरे पड़ोस का चक्कर लगाने के लिये शहर की तेज धूप में निकल पड़ता हूं। बल्कि मन की ओर न देखकर, अन्य दस टैक्सीवालों की तरह, निस्पृह आंखों से उनकी तरफ घूरना ही निरापद समझता हूं। सोचता हूं, इस दुनिया में शायद एकमात्र टैक्सीवाले ही इतने निकट आकर भी इतने अनासक्त रूप से, नारी के रूप को निहारते हैं। इसीलिये तो एकटक देखने पर भी घर की बहू-बेटियां कभी आपत्ति नहीं करतीं।

हम टैक्सीवाले मुंह में सिगरेट दाबे उस अगाध सौन्दर्य के उतराव-चढ़ाव को देखने के नशे में बुत होकर चौबीस घन्टे 'स्टीयरिंग-व्हील' घुमाते रहते हैं, इससे अधिक हमें कुछ जरूरत नहीं होती।

इस समय मैं जिस प्रकार बदतमीजी से टेबिल के पास कुर्सी को सटाकर बार-बार प्लेट से मुंह ऊंचा किये उस बहू को खाते हुए देख रहा था, ऐसा सुयोग आप लोगों को वहां नहीं मिलता। रेस्टोरेन्ट वाला ही एतराज करता हुआ कहता, 'साहब,

आप बाहर जाइये। यह भले आदमियों की जगह है। इस तरह घूरना......।'
यह स्वाधीनता मुझे है।

अब आपको समझने में असुविधा नहीं हो रही होगी कि यही मेरा सुख है। रोज कम-से-कम डेढ़ दर्जन लड़कियों की रंगीन साड़ियां और पेटीकोट, ब्लाउज, नाना प्रकार के सुन्दर जूड़े, वेणी, आंखें, आंखों के रंग और हंसी, रोना आदि देख-देखकर ही मैं अपने पत्नी-वियोग को एकदम भूल सका हूं, और टैक्सीवाले का जीवन मन-प्राण से जकड़े बैठा हूं। मजे में हूं।

हां तो, मैं क्या कह रहा था?......बाकायदा उस बहू को देख रहा हूं। निश्चिन्त मन से। अभी-अभी भीड़ का एक रेला आया और अब फिर रेस्टोरेन्ट खाली हो गया है, जैसा कि कलकत्ता शहर के होटल, रेस्टोरेन्ट का दस्तूर है। न जाने कहां से इतने आदमी आ जाते हैं और फिर अदृश्य हो जाते हैं। एक भी नहीं रहता।

मैं दृश्य का उपभोग करना चाहता था, इसलिये कुर्सी पर पैर उठाकर बैठ गया। उसको देखता रहा। जरा-जरा-सा मुंह खोल रही थी, छोटे-छोटे कौर के लायक। गोरा चिट्टा रंग, सफेद ब्लाउज, बिना किनारी की सफेद साड़ी। श्वेत पत्थर की गुड़िया की तरह लग रही थी वह। जैसे गुड़िया ही खाना खा रही हो।

उसके पीछे की ओर दीवार का रंग गहरा हरा था, जिस पर दिन के समय में भी सर के ऊपर कई बल्ब जल रहे थे। उसकी देह की एक सफेद छाया टेबुल के कांच से झांक रही थी। छोटी-सी देह। झुककर खाते समय उसकी छोटी पर-छाई कभी-कभी सफेद 'डिश' में एकाकार हो विलीन हो जा रही थी।

पैरों की ओर नजर जाते ही मैंने देखा, साड़ी कुछ सरक गई है। लहंगे का कुछ हिस्सा दिख रहा है, सुर्ख लाल रंग का। अब समझ में आया, हाथ की तरह पैर भी खूब गोरे थे। लहंगे के रंग की आभा पड़ने के कारण पिंडलियां बादामी रंग की लग रही थी। उम्र का रंग नहीं था।

यानी अब मैं उसके हाथ, पैर, उंगलियों, नाक, आंखें, भौंहें और बालों को देखकर निश्चित हो गया कि ये सब नये हैं। एकदम टटका, ताजा। मानो अभी बक्स में से (या घर में, जो भी कहें) निकल कर सड़क पर आई है और एक रेस्टोरेन्ट में बैठकर खा रही है।

लड़के को एक गिलास पानी लाने के लिये बुलाया।

पानी पीकर तन कर सीधा बैठ गया।

वह लड़की भी अब सीधी होकर बैठ गई है, पानी पी रही है, मुंह उसका कुछ ऊपर को है। पल्ला अब जूड़े या कन्धे पर नहीं था, बगल के पास आकर उड़ रहा

क्या मेरा काम चलेगा ? होटल में पहुंचा देने के साथ ही दस का पत्ता हाजिर। मीटर के पांच और पांच रुपये मेरी बख्शीस के।
रुपये जेब में डालकर लम्बा सलाम ठोका था मैंने। एक नजर फिर से उमा के मधुमक्खी के छत्तेनुमा जूड़े को और लम्बे सुन्दर हाथों को देखते हुए होटल की सीढियां उतर आया था। बस, यह देखना भर ही जैसे मेरी ऊपरी आमदनी हो।
यह सारी बातें मैं इसलिए बता रहा हूं, कि इस समय भी उसकी पीठ को छूने की मेरी जो तीव्र इच्छा हो रही है, वह नितान्त ही साधारण-सी इच्छा है। जमुहाई के साथ उठती है और चली जाती है। इस इच्छा को मैं किसी भी दिन कार्य में परिणित नहीं करूंगा। कोई भी टैक्सीवाला नहीं करता।
पिटाई, पुलिस का मामला-मुकदमा आदि बातों को सोचकर वे बिल्कुल निष्क्रिय भाव से सिगरेट पीते रहते हैं।
मुंह में सिगरेट दाबे घड़ी देखते हैं, कि कब समय होगा और कब वह गाड़ी में विराजेगी और कहेगी, 'चलाओ।'
मैं भी उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। एक सिगरेट और खत्म की। मैंने हिसाब लगाया, खाने में और यहां बैठकर आराम करने में मुझे पूरे पच्चीस मिनट लग गये हैं।
'वह आपकी टैक्सी है ?'
मैंने सर हिलाया।
मैं तो दंग रह गया, उस बहू को देख कर। सुन्दर ही नहीं, अति सुन्दर। सिन्दूर की रेखा को अगर वह बारीक नहीं लगाती तो वह उसकी महीन मांग में जंचती नहीं। इतनी सुन्दर आंखें मानो लम्बी पलकों से घिरी झीलें हों। देह में तरुणाई छलक रही थी। स्लीवलेस ब्लाउज और महीन जरी की किनारी वाली साड़ी, जो दूर से बिना पाड़ की लग रही थी, वह पहने हुए थी।
'बंगाली टैक्सीवाला ही मुझे पसन्द है।' लड़की ने कहा।
मैं चुप मुस्कराता रहा।
लम्बी स्वर्ण-चम्पा-सी दो उंगलियों से उसने काउन्टर पर बिल चुकाया और दूसरे हाथ से छोटे-से मनीबैग को सीने के पास ब्लाउज में खोंस लिया।
मैंने तब तक सिगरेट सुलगा ली थी। लपक कर मैंने गाड़ी का दरवाजा खोल दिया। यूं ही खड़े रहना असभ्यता होती, इसलिए।
'बड़ी सुन्दर गाड़ी है आपकी !' टैक्सी में बैठते ही उसने कहा। मैंने मन-ही-मन में कहा, तुम जैसी सुन्दर लड़कियां ही इस सुन्दर गाड़ी में बैठती हैं, रोज घूमने जाती हैं। तुमने अपने-आपको भी कभी देखा है ?

'ए टैक्सीवाले !'

मैंने गर्दन घुमायी।

'मुझे वहां जाना है, तुमने पूछा नहीं ?'

वाह, कितने सुन्दर दांत हैं ! मुझे तो लगा, यदि वह इन दांतों से काट भी लेना चाहे तो शायद रास्ते चलते पुरुष ठहर जायेंगे और अपना हाथ, गर्दन, या उंगलियां बढ़ा देंगे, कहेंगे कि ले, काट कर अलग कर दे। मैं उसके गालों को देख रहा था।

हैरिसन रोड की ओर से जाती हुई धूप की तीखी किरणें उसके गालों और गर्दन पर पड़ रही थीं। पतली त्वचा के नीचे से झलकती हुई लालिमा को देख रहा था। उस समय वह गर्दन बाहर किये, सिनेमा के पोस्टरों को देख रही थी।

रेड सिगनल के कारण रुकना पड़ा। बातें करने का सुयोग मिला।

'लोअर सर्कुलर रोड बताया था न आपने ? वह रहा दक्षिण की ओर।'

'हां, उसके बाद बायें, मिडल रोड।'

'अभी दस मिनट में पहुंचाता हूं।'

'वहां से मुझे फिर इसी गाड़ी में लौटना है। चार बजे के अन्दर मानिकतल्ला लौट आना है, हरितकी बगान लेन।'

हां, खूब अच्छी तरह, बाकायदा लौट आऊंगा। ज्यादा-से-ज्यादा बीस मीनट लगेंगे वापस लौटने में। गर्दन घुमाकर मैंने एक बार फिर उसकी सुन्दर आंखों को देखा। जरा यह जताने के लिहाज से, कि जरूरत पड़े तो टैक्सीवाले भी तमीज से महिलाओं से बोलना जानते हैं। मैंने उसकी आंखों में झांकते हुए पूछा, 'सियालदह रिफ्यूजी होटल में खाना खाते हुए, आप जिस तरह बाहर रास्ते की ओर देख रही थीं, मैं तभी समझ गया था, कि आप टैक्सी लेंगी।' वह जरा हंसी। उसका निःश्वास मेरी गर्दन और कंधे से छू गया। मुझे अच्छा लगा। हालांकि यह सब हमारी ऊपरी आमदनी है। गाड़ी जैसे ही सामने को झुकती है, लड़कियों की देह की सुगन्ध हमें छू जाती है।

रास्ता क्लीयर होते ही मैंने झट से टैक्सी स्टार्ट की।

'चार बजे के अन्दर लौट सकूं, बस। वहां मुझे ज्यादा देर नहीं लगेगी। बस एक बात बताने ही तो जा रही हूं।'

'वहां शायद आपकी मां रहती होंगी। मिडल रोड, कितने नम्बर ?

उसने पांच बाई पी कहा या सी, समझ नहीं पाया। किन्तु फिर भी वह किसके पास जा रही है, मैं इस प्रश्न का एक तीर फेंक कर ही जान गया, और इससे मुझे बड़ी खुशी हुई। हम टैक्सीवाले, लड़की किससे मिलने जा रही है, यह पहले से

अगर जान लेते हैं, तो टैक्सी बड़ी तबियत से चलाते हैं।

'और वहां शायद आपकी ससुराल यानी पति का घर है, हरितकी बगान लेन में ?'

उत्तर न देकर वह जरा मुस्कुराई। इन्द्रधनुषी भौंहें चढ़ाकर वह आहिस्ते से बोली, 'वह मेरे पति का पता है। तुम टैक्सीवाले इतनी आसानी से कैसे जान जाते हो ?'

'यह जानना क्या मुश्किल है ? इस लाइन में, मैं नया थोड़े ही हूं। आप लोगों में कौन कहां रहती हैं, कहां आया-जाया करती हैं, इससे ही पता चल जाता है। कभी-कभी तो पता भूल जाने पर, हम अन्दाज से ही गाड़ी चलाते हुए गन्तव्य-स्थान पर पहुंच जाते हैं।'

'हां, मैंने सोचा था, सियालदह से ही टैक्सी पकड़ूंगी। पर ट्रेन से उतर कर बड़ी भूख लगी। कुछ खा लिया। सारे दिन कुछ खाया नहीं था। उफ्, कैसा बोगस खाना था !'

'कहीं बाहर घूमने गई होंगी ?'

'हां, कांचड़ापाड़ा। वहां मेरा छोटा भाई रहता है। टी० बी० है उसे।'

'आज-कल इस टी० बी० ने नाक में दम कर रक्खा है। जहां देखो वहां बस यही।'

उसने क्या कहा, मेरी समझ में नहीं आया। क्योंकि रास्ता क्लीयर मिल गया था। तेज गाड़ी चला रहा था और हवा भी उल्टी चल रही थी।

थोड़ी दूर चल कर एक मोड़ पर गाड़ी घुमाते वक्त सामने भेड़ों का झुण्ड आ पड़ा, जिनके शरीर के रोयें रंगे हुए थे। हाथ में अभी काफी समय था। रास्ता पाने के लिये खामख्वाह हार्न बजा-बजा कर भेड़ों को परेशान करना मैंने उचित नहीं समझा। बल्कि यथासम्भव गाड़ी को आस्ते-आस्ते चलाते हुए, मैंने गर्दन घुमाकर उसकी तरफ देखा।

'टैक्सीवाले, तुम्हारी सिगरेट पीने की तबीयत नहीं हो रही है क्या ? तो फिर गाड़ी रोककर अभी ही सिगरेट सुलगा लो। अभी तो हाथ में समय है।' उसने हाथ की घड़ी देखते हुए कहा।

मैं रुक गया। स्टीयरिंग से हाथ हटाकर मैंने सिगरेट सुलगा ली। सच्चे पहले इस तरह की सहानुभूति हम लोगों को बड़ी अच्छी लगती है।

सिगरेट सुलगाकर मैंने पूछा, 'तो आज रात मां के घर रहेंगी ?'

'अरे, मैं क्या कह रही थी तुम्हें ? इसी गाड़ी में मुझे मानिकतल्ला लौटना है न ? चार बजे मुझे हरितकी बगान लेन उतार देना है।'

मैं यह बात बिल्कुल भूल ही गया था। झेंप की हंसी हंसकर बोला, 'ठीक है, ठीक है।'

'मेरे पतिदेव बड़े सख्त आदमी हैं, कहीं भी अकेले नहीं निकलने देते। आज वह जरा आफिस के काम से बाहर गये हुए हैं। शाम को लौटने की बात है। इस बीच में इन लोगों से मिल ले रही हूं, जरा घूम-घाम रही हूं।'

'बाप रे, तब तो आप अजीब आदमी के पल्ले पड़ी हैं। सारे समय घर में ?'

'सारे समय।' लड़की की आंखें फीकी पड़ गईं। उसने गमगीन आवाज में फिर कहा, 'मैं किस तरह के आदमी के पल्ले पड़ी हूं, काश, यह तुम बाहर वाले लोग जान पाते। अजीब आदमी के साथ जीवन बिता रही हूं।'

फिर से स्टार्ट करने के कारण मेरी टैक्सी धक्-धक् कर रही थी। मैं भी कुछ ऐसी ही यन्त्रणा अनुभव करने लगा।

इस गाड़ी में बैठकर हवा खाती हुई रोजाना शहर की न जाने कितनी लड़कियां मजा लूटती हैं। यह तुम क्या जानो बहूरानी ? मगर हां, वे तुमसे बहुत चालाक और होशियार होती हैं।

ये बातें मैंने उससे कही नहीं। हम टैक्सीवालों को इन सब बातों में दखलंदाजी देने से क्या मतलब ?

दीर्घ निःश्वास छोड़ते समय उसकी छाती के उतार-चढ़ाव को छुपी नजर से देखकर मैं अपने काम में लग गया। दोनों हाथों से मैंने स्टीयरिंग कसकर पकड़ रखा था। भेड़ों का झुण्ड हट चुका था। रास्ता अब साफ था।

'आपसे जब परिचय हो ही गया है, तो कभी-कभार दोपहर को आध घन्टे के लिये मेरी टैक्सी में घूम-घाम आ सकती हैं। कब आपको घुमा लाऊंगा, और शाम को नल में पानी आने के पहले हरितकी बगान लेन छोड़ आऊंगा, आफिस में बैठे आपके पति को कतई पता नहीं चलेगा।'

'अच्छी बात है, देखा जायेगा।' उसने कहा, और मैं चुराकर कनखियों से उसके श्वास-प्रश्वास को देखकर पता लगा रहा था कि उसका हृदय कांप रहा है या नहीं।

'यही मकान है ?'

'नहीं, थोड़ा और आगे।'

'यदि मन बहुत उदास हो, तो आज रात को मां के पास ही रह जाइये। बस एक पत्र भेज दीजिए, मां बीमार है।' मैंने कहा।

'अरे नहीं टैक्सीवाले, तुम लोग जितना सहज समझते हो, उतना सहज नहीं है। बहू को घर के बाहर जाने के लिये, या पति के घर के सिवाय किसी और जगह

रात बिताने के लिये, अनेक तथ्यों और प्रमाणों की जरूरत होती है। जो आदमी सात जन्म भी ससुराल नहीं जाता, वह भी उसी समय दौड़ता हुआ आयेगा। क्या बीमारी है सास को, यह जानने के लिए।'

'समझ गया।' मैंने मुस्कराते हुए सर हिलाया, 'आपकी देह आपके पति के लिए एक तरह की शराब है, एक कीमती नशा है। आपकी अनुपस्थिति उन्हें किसी तरह गवारा नहीं।' मैं मुस्कराता हुआ कह रहा था, और जब वह बार-बार मेरी ओर पलटती तो उसके गले की नरम मांसपेशियों की हरकतों को गौर से देख रहा था।

सचमुच, उसकी लाजवाब देह के कारण मुझे उस लड़की पर लोभ हो रहा था, लेकिन क्या करूं, उपाय क्या था? एक जवान लड़की को लेकर जो टैक्सीवाले अकेले शहर में घूमते हैं, वे कर ही क्या सकते हैं।

एक मकान के पास जोर से ब्रेक कसकर मैं बोला, 'यह मकान है?'

'रोक दो।'

हाथ बढ़ाकर मैंने दरवाजा खोला। वह उतरी।

'तुम ठहरो, मैं बात करके अभी आई।'

मैंने गर्दन बाहर निकाल कर फिर उसकी पिण्डलियों की बनावट को देखा। पता नहीं, क्यों मुझे उस समय गरम-गरम 'फाउल करी' की याद आ गई। उसका मुंह दूसरी तरफ था। चिबुक का जितना भाग दिख रहा था, उसे देखकर मुझे सेब की फांक और फिर रस भरे अंगूर की याद आयी।

लेकिन यह सोचकर मैं टैक्सी से कूद कर आत्महत्या थोड़े ही कर लेता? निन्यानवे प्रतिशत टैक्सीवालों की तरह ही मैंने भी एक सिगरेट सुलगा ली और गाड़ी को जरा बैक किया, और उल्टी तरफ मुंह करके एक पेड़ की छाया में खड़ी कर दी।

हां, उसकी देह को देखकर ललचा रहा था? अन्त में जाकर......

देखिये न, किस तरह की घटनायें हमारे जीवन में घटती हैं? मैं तो समझ रहा था, कि वह मां के साथ मुलाकात करके उस मकान से आ रही है। आंखों में पानी। नीले रूमाल से आंखें पोंछ रही है।

किन्तु बात यह नहीं है। लड़की के सफेद रंग के पीछे खड़े होकर एक सज्जन जोर-जोर से चिल्ला रहे थे। बाबू हैट पहने हुए थे, जैसे अभी बाहर से लौटे हों या अभी बाहर जायेंगे।

तब चिन्ता करने की फुर्सत ही कहां थी? मैं बस दोनों की बातें सुन रहा था, जैसे टैक्सीवाले को खड़ा छोड़कर आप लोग बात-चीत में लग जाते हैं।

'इस घर में फिर कभी तुम्हें देखा तो...तो 'शूट' कर दूंगा, चित्रा।'

'जब तक मेरे खाने-पीने का कोई इन्तजाम नहीं होता, तब तक मुझे आना ही पड़ेगा।'

'नहीं, बदचलन औरत के खाने-पीने की व्यवस्था करने के लिये मैं नहीं हूं।'

'ठीक है। फिर मैं अदालत में जाऊंगी।'

'हां, जाओ। मैं भी यही चाहता हूं। एक प्रास्टीच्यूट मुकदमा करके महीतोष राय से प्रतिशोध लेगी! ठीक है। कोशिश करो।'

कहकर हैट-कोट पहने महीतोष राय लकड़ी के गेट में ताला लगाकर दनदनाते हुए अन्दर चले गये।

चित्रा लौटकर टैक्सी के पास आ खड़ी हुई। मैंने दरवाजा खोल दिया। वह अन्दर बैठ गई, बोली, 'चलो।'

ऐसे वक्त पर हम लोग ज्यादा बोलते नहीं हैं। लेकिन फिर भी गाड़ी स्टार्ट करने के बाद मेरी तीव्र इच्छा हो रही थी कि एक बार देखूं। अभी भी नीले रूमाल से आंखें ढंकी हैं या नहीं।

कुछ दूर जाने के बाद उसने धीरे से कहा, 'ए टैक्सीवाले!'

मैंने मुड़कर उसकी तरफ देखा। न आंखों पर रूमाल था न कोरों में आंसू।

'तुम तो वहां खड़े थे, बातें सुनीं तुमने?'

मैंने उत्तर नहीं दिया। सामने भैंसों के झुण्ड से रास्ता मानो काला हो गया था।

'वह मुझे गोली से मारेगा!'

जैसे कुछ भी नहीं हुआ था। इन बातों का कोई मूल्य नहीं है। कभी-कभी इस तरह का नाटक हम लोगों को करना पड़ता है। मैंने गाड़ी बिल्कुल रोक दी, एक और सिगरेट सुलगायी, फिर मुस्कराकर बोला, 'अरे, यह सब कुछ नहीं। मियां बीबी का झगड़ा है। दो दिन में मिट जायेगा।'

यह सब कहना चाहिये इसलिए कहा, लेकिन मैंने गौर किया, वह इन बातों में कोई कान नहीं दे रही है। रास्ते में पड़े पेड़ के तने को कुछ सोचती हुई एकटक देखे जा रही है। निर्जन जगह थी।

भैंसें काफी आगे निकल चुकी थीं।

'नहीं, झगड़ा नहीं मिटेगा। यह झगड़ा मिटनेवाला नहीं है। यह वह भी जानता है, और मैं भी जानती हूं।' उसी तरह बाहर देखती हुई वह रुंधे गले से बड़बड़ाई, फिर हठात् उसने मुड़कर मेरी ओर देखा, 'टैक्सीवाले!'

'जी, बोलिये।'

'वह मुझसे घृणा करता है, लेकिन मैं भी जो उससे घृणा करती हूं, क्या यह वह

नरेन्द्रनाथ मित्र

श्वेत-मयूर

गहरे नीले रंग की एक दो-तल्ला बस के पश्चिम से पूरब की ओर जाते-न-जाते ही, एक दूसरी नीलवर्णी बस पूरब से पश्चिम की ओर भागती आयी और शीला के मकान के सामने वाले स्टाप पर खड़ी हो गई। पोस्ट की लाल रंगी तख्ती पर गोल घेरे में 'स्टाप' लिखा है, तो भी बहुत-सी बसें यहां नहीं रुकतीं। यात्री खड़े हों, तब भी नहीं। 'रोको-रोको' होता रहता है, फिर भी विशालकाय बसों को ड्राइवर स्कूल के सामने वाले अगले स्टाप की तरफ बढ़ा ले जाते हैं। अपने घर के सामने बसों को न रुकते देखकर कभी-कभी शीला को गुस्सा आता है। कभी-कभी ड्राइवरों के साथ सहानुभूति भी हो जाती है। बस चला देने पर उसे फिर रोकने की इच्छा ड्राइवर की नहीं होती, शायद। जी चाहता है, चलाता ही चला जाय। जैसे बस के दो-तल्ले पर बैठी शीला का जी चाहता है कि बस भागती ही चली जाय। उतरने की इच्छा नहीं होती है उसकी।

किन्तु हर समय तो चलते रहा नहीं जा सकता। आज-कल शीला घर से बहुत कम बाहर निकलती है। घर का बहुत-सा काम रहता है और फिर वह काफी बड़ी भी तो हो गई है! अब क्या जब-तब बाहर निकलने से काम चलेगा? मगर सीढ़ी तक जाने में हर्ज भी क्या है? बैठक की खिड़की बन्द कर के या सदर दरवाजे को उठंगा कर आदमियों का आना-जाना, टैक्सी, कार और बसों की भाग-

दौड देखने में तो कोई दोष नहीं। चलती बस में बैठे लोगों को देखना शीला को बहुत अच्छा लगता है। अपने मोहल्ले के लोग भी अचीन्हें लगते हैं। मां जरूर उसका सदर दरवाजे के पास खड़ा रहना अधिक पसन्द नही करती। अक्सर डांटती हैं, 'क्या जब देखो सब सडक के सामने खड़ी रहती है? लाज नही लगती? सोलह पार करके सत्रहवें में आ गयी, अभी क्या छोटी-सी मुन्नी ही बनी हुई है?' किन्तु सत्रहवां लग जाने से क्या होता है। क्या इसीलिए शीला की देखने की इच्छा ही मर गयी? पेड़-पत्ते, स्त्री-पुरुष, धूप-वर्षा, पृथ्वी का सब कुछ कितना सुन्दर है, मां क्या जानें?

'क्यों शीलारानी, एकदम दरवाजे से सटी खड़ी हैं? हम लोगों का स्वागत करने के लिए क्या?'

बस स्टाप पर उतरकर, सड़क पारकर के दो आदमी ठीक उसके मकान के सामने आ खडे हुए हैं, यह तो शीला ने देखा ही नहीं। नीले बादलो की तरह भागती हुई बसों ने ही उसका ध्यान बंटा रखा था।

जीभ काट कर लज्जित भाव से शीला पीछे सरक आई। 'यह क्या, भाग क्यो रही हो?'

भागने वाली बात नहीं है। छोटी दीदी के पति अनिन्द्य भैया हैं। आत्मीय। अपने खास आदमी। किन्तु उनके बगल में वे कौन हैं? अनिन्द्य भैया से करीब एक बालिश्त ऊंचे। दूध की तरह गोरा चेहरा। हरे रंग का कपडा शरीर पर, और आंखें दोनों नीली-नीली। कौन हैं वे?

शीला ने फुसफुसाकर पूछा, 'अनिन्द्य भैया, वे कौन हैं? वे क्या, साहब हैं?'

अनिन्द्य जोर से हंस पडा। 'एंग्लो इण्डियन नही, एकदम खास साहेब। द्वीप-वासी अंग्रेज साहेब नही, महाद्वीपवासी जर्मन।'

फिर अतिथि की ओर ताक कर कहा, 'मैक्स, शी इज माइ स्वीट सिस्टर-इन-ला। दी यंगेस्ट, दी स्वीटेस्ट एण्ड दी बेस्ट।'

शीला ने धीरे से भर्त्सना के स्वर में कहा, 'अनिन्द्य भैया, यह क्या हो रहा है? मैं छोटी दीदी को सब बता दूंगी।'

किन्तु इसी बीच साहेब ने 'हैण्ड-शेक' के लिये हाथ बढा दिया था। दूसरे ही क्षण उसे कुछ याद पड गया। दोनो हाथ सिर से लगा कर बोला, 'नोमोस्कार।' उसका उच्चारण और नमस्कार करने का भाव देख कर शीला के लिए हंसी रोकना कठिन हो गया। उच्छ्वसित हंसी को रोकने की चेष्टा में नमस्कार करने की बात उसके ध्यान में ही न रही। अनिन्द्य की ओर घूम कर बोली, 'उनको लेकर भीतर आइये।'

'नीलाद्रि मुंह-हाथ धोकर, चाय-वाय पीकर, तख्त पर बैठा सितार का खोल उतार रहा था, कि शीला उसके कमरे की ओर मुंह करके बोली, 'फूल भैया, देखो कौन आये हैं ?'

'कौन है रे ?' हंस कर नीलाद्रि ने पूछा।

'अनिन्द्य भैया और जाने एक कौन हैं ? वाहर निकल कर देखो न ! बैठक में हैं।'

किसी प्रकार उसे सूचित कर के शीला पास के कमरे में चली गयी। इस कमरे में भी एक तख्त पड़ा हुआ है। उस पर मुंह के वल लेट गयी। डोरीदार साड़ी में ढंकी हुई उसकी सुन्दर देह किसी तीव्र आवेग से कांप-कांप उठने लगी। आलमारी से रुपया निकालने के लिए सरोजिनी कमरे में घुसीं, किन्तु आंचल में बंधी चाभी को आलमारी के ताले में लगाने के पहले ही वह थमक कर खड़ी हो गईं।

'क्या बात है ? क्या हुआ तुझे ?' मृदु, किन्तु उद्विग्न स्वर में उन्होंने प्रश्न किया। फिर झुककर लड़की का मुंह देखा और आश्वस्त होकर बोलीं, 'ओह, हंस रही है। मैंने सोचा, क्या हो गया। इतने सवेरे-सवेरे किसने तुझे डांट-डपट दिया ?'

शीला ने मुंह ऊपर करके कहा, 'वाह, डांटेगा कौन मुझे ? मां, जानती हो, अनिन्द्य भैया जाने कहां से एक जर्मन साहेव ले आये हैं। कितना सुन्दर उसका वंगला उच्चारण है, और उसका नमस्कार करने का ढंग भी। जाओ, देख आओ। सभी बैठक में हैं।'

'अनिन्द्य आया है क्या ? कहां है ?' आलमारी से पांच का नोट निकाला उन्होंने। फिर सिर पर आंचल रखकर जल्दी से बैठक की ओर वढ़ गयीं। हंसी की कुछ उच्छल तरंगों को तख्त पर विखेरकर शीला भी मां के पीछे-पीछे चली। जब देखो तब खिल-खिल करके हंसने से फूल भैया चिढ़ते हैं। जिस-तिस के सामने ही डांट देते हैं। किन्तु हंसी आने पर क्या कोई रोक पाता है ? फिर भी, पहले से कितना कम हंसती है वह। पहले तो हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाती थी। लोटते-लोटते तख्त पर से नीचे गिर पड़ती। आंखों में आंसू जब तक नहीं आ जाते, उसकी हंसी नहीं रुकती।

'हंसी शीला का एक रोग है।' फूल भैया कहते। 'वह तो एकदम पागल है।'

'आहाहा, पागल इस दुनिया में जैसे और कोई है ही नहीं। तुम्हें भी तो लोग पागल कहते हैं। गान-पागल, सुर-पागल।'

मिनटों में बैठक का कमरा एकदम सर-गर्मी का केन्द्र बन गया। फूल भैया, मां,

रही थी कि दो-तल्ले से अखबार लिये हुए बाबूजी भी उतर आये। साहेब आया है, सुन्दर पैन्ट लटकाते हुए मुहल्ले के कोठरी लड़के भी खिड़की के पास जमा हो गये।

शीला भीतर चली आयी। आड़ से ही उसकी बातचीत सुनने लगी। और देखने लगी। देखने लायक ही तो था। आह! कितना सुन्दर! गोरा और लम्बा। सुनहरे बाल, गुलाबी होंठ और नीली-नीली आँखें। शीला ने अब तक जितने पुरुष देखे थे, अपने आँगन लोगों के और भाइयों के जितने भी मित्र देखे थे, उनमें से किसी के साथ तुलना नहीं। कैसे होगी? यह तो इस देश का आदमी ही नहीं। बहुत दूर यूरोप में जर्मनी है। जाने कहाँ है वह देश? यूरोप का पूरा नक्शा शीला को याद नहीं आ रहा है। उत्तर-पश्चिम में नीले समुद्र से घिरा इङ्गलैण्ड और उसकी गोद में छोटे-से द्वीप आयर्लैण्ड को वह देख पा रही है। किन्तु मुख्य भूभाग में फ्रांस, जर्मनी आदि की स्थिति जैसे धुंधली पड़ गयी है। सीनियर कक्षा में उसने यूरोप का भूगोल पढ़ा था, परन्तु ठीक से कहां पढ़ा था। उसे भूगोल पसन्द नहीं था। भूगोल के विषय में दीदी का मजाक सुन कर उसके शरीर में आग लग जाती थी। क्या होगा भूगोल पढ़कर? हरे रङ्ग का जर्मनी उसकी बैठक में आ उपस्थित हुआ था। गुड्डे की तरह लाल होंठों से हंसी भर रही थी। अपने इतने समीप रक्त-मांस के किसी साहेब को शीला ने कभी नहीं देखा था। कुछ भैया के साथ अंग्रेजी चल-चित्रों में एकाध साहेबों को उसने भाग-दौड़, कूद-फांद करते देखा था सही, किन्तु उसके जीवन में यह पहला साहेब था। फिर यह तो कोरा साहेब नहीं है, परी-कथा के राजपुत्र के समान अत्यन्त रूपवान साहेब है।

बैठक में से निकलते हुए सरोजिनी ने कहा, 'चल, मुंह फाड़कर देखने से काम नहीं चलेगा। चाय-नाश्ता चलकर बना हमारे साथ। अनिन्द्य शायद अभी चला जायेगा।'

शीला चौंक पड़ी, 'अभी चले जायेंगे? उनको भी ले जायेंगे क्या?'

'नहीं, इन्हें नहीं ले जायेंगे। मीनू ने उन्हें पकड़ रखा है। इस वक्त हमारे यहां खायेंगे। मीनू को तो यह खूब आता है। थोड़ी देर में ही अपरिचित व्यक्ति के साथ ऐसा मेल कर लेता है, जैसे बहुत दिनों का परिचय हो।'

गृह-स्वामी के साथ नौकर को बाजार भेज कर सरोजिनी पूड़ी बेलने बैठी रसोई-घर में। बैठक के बीच-बीच में हंसी तथा बातचीत की आवाज आ रही है। लड़की की ओर देख कर कोमल स्वर में सरोजिनी ने कहा, 'तेरा मन तो वहीं है। अच्छा तू जा। मैं अकेली सब कर लूंगी।'

शीला ने तुरन्त विरोध किया, 'किसने कहा, मेरा मन वहां है ? मेरे बिना क्या तुम्हारा कोई काम हो पाता है ?'

'यह तो है। आज-कल तेरे सिवा और किसी के हाथ की चाय उन लोगों को पसन्द ही नहीं आती। तू पान बनाकर न दे तो······'

बात पूरी नहीं हो पाई थी कि अनिन्द्य नये जूते मचमचाता हुआ आ पहुंचा।

'मैक्स को तो फूल भैया ने इस समय रोक लिया। मैं फिर जाऊं, मां। होस्टल में बहुत-सा काम करने को है।'

'यह कैसे होगा, भैया ? बिना चाय-वाय के मैं क्या तुम्हें जाने दूंगी ? शीला, अपने जीजा के लिए एक मोढ़ा ला दे, तो बैठें।'

अनिन्द्य साली द्वारा लाये गये मोढ़े पर बैठ गया। समय के साथ आदमी के कान बदलते हैं, भाषा बदलती है और सम्बन्ध का आधार भी बदल जाता है। पिछले दो वर्षों में ससुराल के लिये वह घर के लड़के के समान हो गया है। दामाद की औपचारिकता नहीं रही तो, सम्बोधन क्यों नहीं बदलता ?

सरोजिनी अपनी लड़की—इला—की बात पूछने लगी। इला सुसराल में बड़ी प्रिय हो गयी है। कृष्णनगर निकट ही है। यह पहला नाती है। एकाध दिन में ही इला को सरोजिनी बुलाने वाली है।

शीला किसी और प्रसंग के लिये उत्सुक हो रही थी। इन सब पुरानी घरेलू चर्चाओं में उसकी कोई रुचि न थी। मौका पाते ही उसने पूछा, 'अच्छा अनिन्द्य भैया, आपने उन्हें कहां पाया ?'

'किन्हें ?'

शीला थोड़ा हंस कर बोली, 'अपने इन्हीं मित्र को।'

अनिन्द्य भी हंसा, 'ओह ! मैक्स की बात पूछ रही हो। मित्र ही हैं। दो दिनों में ही वह हमारा परम मित्र बन गया है। जर्मन कान्सुलेट में हमारा एक मित्र है। वही उसको हमारे होस्टल पहुंचा गये थे। इस देश के विद्यार्थियों से मिलना चाहता था, बात-चीत करना चाहता था। टूरिस्ट होकर भारत-भ्रमण के लिये आया था। इसी प्रसंग में बंगाल देखने आया। मैंने उससे कहा कि अगर वह बंगाल को देखना चाहता है तो बड़े-बड़े होटलों में बैठकर नहीं देख पायेगा। कालेजों और होस्टलों में भी नहीं। चलो, मैं तुम्हें कलकत्ता के एक आदर्श परिवार में ले चलता हूं। वहां दो-चार दिन तुम रहो। एक ही परिवार से तुम पूरे बंगाल का परिचय पा जाओगे। ऐसा-वैसा परिवार नहीं है। जैसा······।'

सरोजिनी पूड़ी छानने के लिये रसोई-घर में चली गयी।

पी० वसु हंसने लगे, 'मैं पी० वसु हूं—तुम्हारा पति।'
'क्या कह रहे हो ?'
'मैंने कल खाना-वाना खाया था क्या ?'
कमरे में अंधेरा फैला है। इसीलिये वोटेनिस्ट पी० वसु के निर्वोध चेहरे पर व्यथा है या विस्मय, कुछ पता नहीं चलता। पर तकिये में मुंह दवा कर रुलाई रोकने की चेष्टा करने लगी करुणा।
पी० वसु जल्दी से वोले, 'क्या कहना है, जल्दी कहो ना ? मुझे काम है।'
करुणा चीख उठी, 'हां, खाया है।'
'तो वही कहो ना।' आश्वस्त भाव से वाहर निकल गये पी० वसु।
इतने वड़े झूठ को कितनी जोर से चीख कर सुनाया है करुणा ने। कल दिन भर जिस आदमी के पेट में दाना भी नहीं गया, वह करुणा की चीख कर कही गई इस वात से ही आश्वस्त होकर कितनी खुशी-खुशी चला गया।

इसके वाद...एक वदली घिरी सन्ध्या। मेघ गरज नहीं रहे हैं, पर विजली चमक रही है। गुणाकर आया है। आज मन में कोई कुण्ठा नहीं रखेगी करुणा। कहने में देर भी नहीं करेगी।
'मुझे कुछ रुपयों की जरूरत है।'
'कितने रुपयों की ?'
'आप ही सोच देखिये।'
'पांच हजार से काम चलेगा ?'
'चलेगा।'
'कव चाहिये ?'
'आज ही।'
'कल देने से नहीं चलेगा ?'
'चलेगा।'
'तो फिर चलूं, आज ?'
'कल कव आ रहे हैं ?'
'आप ही वताइये, कव आऊं ?'
'सुवह।'
'ठीक है।'
ठीक ही रहा। आने में देर नहीं की गुणाकर ने। चारों तरफ की धूप खिलखिला रही है। गुणाकर आज इस घर की सभी चिन्ताओं को मिटा देने के लिये ही

आया है।

गुणाकर के जूतों की मचमचाहट आज आखिर इतनी उतावली क्यों न हो? आज तो करुणा के चेहरे पर स्वागत की मुस्कान और भी सुन्दर हो उठेगी।

बस कंघी से बालों को ऊपर-ही-ऊपर संवार कर, जूड़ा कुछ कस कर बांधने से ही काम चल जायेगा। फिर कमरे के दरवाजे पर खड़े हो कर बरामदे में घूमते गुणाकर को पुकारना होगा, 'आइये।'

पर यह क्या हुआ? करुणा के चेहरे की हंसी मानो एक धधकती हुई अग्निशिखा की हंसी हो उठी है। दर्पण के सामने खड़ी हो कर अपनी इस अद्भुत हंसी को पागलों-जैसे अनुराग से निहारने लगी करुणा। उसके कान लाल हो उठे। उसे मानो सुनाई देने लगा, एक वीभत्स दुस्साहसी बाहर बरामदे में जूते मचमचाता हुआ टहल रहा है।

ना, उस तरफ नहीं, भीतर के बरामदे की तरफ दौड़ गई करुणा। ना, यहां भी नहीं। भीतर के बरामदे के एक कोने में चुपचाप खड़े रहने पर भी बाहर के बरामदे की मचमच की आवाज सुनाई दे रही है। एक हिंसक भय की काली छाया करुणा की साड़ी का आंचल नोच डालने के लिये लोभी की तरह बार-बार उसके कमरे में ताक-झांक कर रही है। करुणा असहाय की तरह अपनी रक्षा के लिये कोई दृढ़ आश्रय खोज रही है। दौड़ती हुई वह पी० बसु के ग्रीन हाउस के द्वार पर जा खड़ी हुई।

पी० बसु चौंक उठे, 'तुम यहां?'

करुणा हांफ रही थी, 'और कहां जाऊं?'

पी० बसु बोले, 'देखा?'

'क्या?'

'कैलन्थिस करुणाइना।'

'तुम्हारा प्यारा आर्किड?'

'हां।'

'बहुत सुन्दर है।'

चौंक कर पी० बसु बहुत देर तक करुणा के चेहरे की ओर देखते रहे। उनकी आंखों में जाने कैसा एक विस्मय छलक आया, 'एं? इतने दिन क्यों नहीं कही यह बात?'

'कह कर फायदा क्या था?'

'मुझे तो था फायदा।'

'तुम्हें?'

'हां, मैं समझ जाता कि तुम मुझे पागल नहीं समझती हो।'
'सच मानो, तुम्हें पागल नहीं समझती मैं।'
पी० वसु और करुणा के बीच हरी घास से ढंकी हुई थोड़ी-सी जमीन का ही व्यवधान है। पीछे से आकर एक छाया मानो उसी पर पछाड़ खा कर लौट गई। करुणा चौंक उठी। गुणाकर ग्रीन हाउस के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ था।
गुणाकर ने कहा, 'मामला क्या है? आप यहां कैसे?'
गुणाकर के प्रश्न की भाषा सुनकर करुणा हंस पड़ी। कैसी अद्भुत हंसी है! सुन्दर-से आर्किड की पंखुड़ियों की तरह करुणा के कोमल ओंठ रह-रह कर हंसी से कांप रहे थे।
'आप यहां क्यों आये?'
'भूल गई?'
'नहीं, भूली नहीं। पर अब जरूरत नहीं है।'
'रुपयों की जरूरत नहीं है?' गुणाकर की भौंहें मानो एक कठिन विस्मय के धक्के से थर-थर कांप रही थीं।
करुणा बोली, 'नहीं, जरूरत नहीं है।'
गुणाकर का सिर अचानक अलसा कर झुक गया। पर उसकी सहृदयता मानो पूरी शक्ति लगाकर बुदबुदाई, 'आप लोगों का काम कैसे चलेगा?'
करुणा बोली, 'चल जायेगा किसी तरह। और नहीं तो कुम्हड़ा-बैगन-कद्दू उगाने का ही काम करना पड़ेगा।'
कैसे आश्चर्य की बात है! पी० वसु भी अचानक बोल उठे, 'हां, कोई नौकरी-औकरी तो करनी ही पड़ेगी।'
गुणाकर बोला, 'तो फिर मैं चलूं?'
करुणा बोली, 'अच्छा।'
'आप भी एक विचित्र आर्किड हैं!'
'क्या कहा?'
गुणाकर हंसा, 'वह क्या नाम है? कैलेन्थिस करुणाइना, है ना?'
करुणा भी हंस पड़ी, 'जी हां।'

गजेन्द्रकुमार मित्र

समर्पण

अरुण अपने प्रकाशक के यहां से लौटा तो नौ बज चुके थे। थके कदमों से जब तीन तल्ला चढ़ कर वह अपने फ्लैट में पहुंचा, तब शरीर में बत्ती जलाने जितनी शक्ति भी शेष नहीं थी। वैसे बत्ती जलाने की खास जरूरत थी भी नहीं। पूरब की खुली खिड़की से ढेर-सी चांदनी कमरे में आ रही थी, जिसके प्रकाश में हर चीज अंधेरे के बावजूद धुंधली-धुंधली दिखाई दे रही थी। उसने कुरता और बनियाईन उतार कर टांग दी और कमरे की बाकी सब खिड़कियां खोल कर बेंत की आराम-कुर्सी पर निढाल हो कर पड़ गया।

नीचे तब भी कलकत्ता का व्यस्त जीवन शान्त नहीं हुआ था। ट्राम-बसें पूरे जोश से चल रही थीं। दूकानें भी खुली थीं। शहर की व्यस्तता का यह मिला-जुला कोलाहल इतना ऊपर आकर कैसा मधुर-मधुर-सा लगने लगता है! नीचे की तेज रोशनी यहां फैली चांदनी को म्लान नहीं कर सकती, पर उसकी कुछ किरणें यहां तक पहुंचती जरूर हैं। अरुण को यह बड़ा अच्छा लगता है। उसे अपने एकान्त में हलचल का आना पसन्द नहीं, पर निपट नीरवता से भी उसकी तबीयत घबराती है। इसीलिये बाहर के किसी ग्रामांचल में न बस कर शहर के इस मुखरित राजपथ पर ही उसने यह फ्लैट किराये पर लिया है।

कहने को फ्लैट है। कुल डेढ़ कमरे हैं। वैसे कमरा तो सिर्फ इसी को कहा जा

गये। वीच-वीच में छोटी-मोटी दो-एक ट्यूशनें मिल जाती थीं, पर उन पांच सात रुपयों से खाना-पीना, मकान का किराया आदि सारा खर्च कैसे चल पाता मकान छोड़ कर फ्लैट लिया, फ्लैट से किराये के मकान में नीचे का अंधेरा सीलन भरा एक कमरा। फिर भी किराया नहीं चुकाया जाता था, अपमान के डर से ज्यादा उधार भी नहीं ले पाता था। जो कुछ मिलता था, उससे किसी तरह किराया चुका कर पति-पत्नी उपवास कर लेते थे।

उफ्! उन दिनों की वातें याद आते ही, आज भी कलेजे का रक्त जम जाता है। चारों तरफ निराशा और कड़वाहट। आशा की, आनन्द की नन्हीं-सी भी किरण कहीं दिखाई नहीं देती थी। दिन भर काम की तलाश में घूमता था। शाम को जव क्लान्त शरीर और मन लिये घर लौटता तो पाता कि नीलिमा तव भी सूखे चेहरे से उसकी प्रतीक्षा में खड़ी है। शुरू-शुरू में वह कुछ प्रश्न वगैरह किया करती थी, या म्लान-सी हंसी ही हंस देती थी। इधर यह भी उसके लिए कठिन हो उठा। लगातार उपवासों ने उसकी प्राण-शक्ति को सोख लिया था। इसी तरह से दिन-पर-दिन वीतते गये, पर वीस रुपये मासिक की एक नौकरी भी न जुट सकी थी।

दरिद्रता का प्रकोप देख कर अरुण के आत्मीय स्वजन वहुत पहले ही किनारा कर गये थे। नीलिमा का भी अपना कहने को निकट का कोई था नहीं। उसका असामान्य रूप देख कर ही अरुण के पिता उसे एक बड़े ही गरीब घर से ब्याह लाये थे। इसलिये एक शाम आश्रय दे सके, भोजन दे सके, ऐसा भी कोई न रहा था। उधार या सहायता पाने की चेष्टा भी अरुण छोड़ चुका था, इसलिए दोनों समय उपवास ही चलने लगा। दो-दो, तीन-तीन दिन के अन्तर से भात जुटता था, सो भी एक समय।

आखिर नीलिमा और न सह सकी। आश्रय देने के लिये भले ही कोई आत्मीय न था, पर इतनी रूपवती होने के कारण, सर्वनाश करने वालों की कमी थोड़े ही थी। अरुण के चरम दुर्दिनों में अपने दायित्व के भार से उसे मुक्त करके नीलिमा एक दिन चली गई। जाते समय केवल एक पत्र छोड़ गई:

'और सहा नहीं जाता। मुझे क्षमा कर दो। मेरा वोझ कम होगा, तो तुम्हें भी खाने को एक समय ज्यादा मिलेगा।'

अरुण अचानक सतर्क हो कर खड़ा हो गया। उसके दिमाग से मानो लपटें निकल रही थीं। उसने स्नान-घर में जाकर सिर पर पानी डाला, फिर हाथ-मुंह पोंछ कर, जी कड़ा करके वत्ती जलायी और प्रूफ देखने वैठ गया। काम तो पूरा

करना ही होगा। बेकार सोचने-विचारने का समय नहीं है।
पर प्रूफ था थोड़ा-सा, जल्दी ही समाप्त हो गया। फिर वही 'समर्पण' का प्रश्न। सामने कागज खुले ही पड़े रहे, टेबिल-लैम्प की रोशनी चुपचाप फैली रही, और वह चुपचाप बैठा सड़क के पार एक मकान के बरामदे में फैली चांदनी को ताकता रहा। मन उसका उड़ कर चला गया है सुदूर अतीत में—अतीत की एक डरावनी अंधेरी गुफा में। प्रकाश की एक किरण भी वहां नहीं पहुंचती। उन दिनों की याद आते ही आज भी आत्महत्या करने को जी चाहने लगता है।
उन दिन शायद उसे मर ही जाना चाहिये था। अपनी पत्नी ही भरण-पोषण की असमर्थता के कारण जिसे छोड़ जाय, वह जिन्दा किस मुंह से रहे? पर वह मर नहीं सका। शायद प्राकृतिक मृत्यु आने पर वह उसका स्वागत ही करता, पर अपने हाथों मरना उसके लिये सम्भव न हो सका। इतने दुखों के बाद भी नहीं। बल्कि गृहस्थी में जो दो-चार चीजें बची थीं, उन्हें बेच कर वह एक मेस में जाकर रहने लगा, और यह याद करके उसे खुद लज्जा आती है कि दोनों समय भात मिलने पर उसने शान्ति की ही सांस ली थी। तभी से वह निश्चिन्त, निस्संग जीवन व्यतीत करता आ रहा है।
उसके बाद धीरे-धीरे उसने अपनी जीविका की व्यवस्था भी कर डाली। बल्कि आज उसकी आर्थिक स्थिति साधारण से अच्छी ही है। पर इस स्थिति की एक दिन, जिसके लिये सब से ज्यादा जरूरत थी, वही उसकी जीवन-सगिनी ही आज खो गई है। आज इस सम्पन्नता का मूल्य ही क्या रह गया है? कौन जाने, वह आज कहां है? सुखी है या दुखी है? किसे पता है, वह किसके, कैसे आदमी के आश्रय में है? हो सकता है, वह आज हो ही नहीं। दु:ख-दारिद्र्य की मार क्या कम थी? हो सकता है, उसने इस पृथ्वी से अकाल-विदा ही ले ली हो।
सोच कर ही अरुण की आंखें छलछला आईं। बेचारी ने कितने दु:ख सहे! और कुछ दिन धीरज रख लेती तो शायद इस सब की जरूरत ही न होती। वह भी इस सम्पन्नता का सुख भोग सकती। आज वह अपना प्रथम उपन्यास किसे समर्पित करे, यह प्रश्न ही न उठता तब। हो सकता है, वह आज भी जीवित हो, पर अरुण इस समस्या का हल किसी प्रकार नहीं पा रहा है।
क्या वह नीलिमा को ही समर्पित करे फिर? कुलत्यागिनी पत्नी को?
हर्ज क्या है?
ख्याल आते ही वह अस्थिर-सा हो उठा। बैठे रहना असम्भव हो गया तो छोटे-से कमरे में ही चहलकदमी करने लगा वह।
बेचारी नीलिमा, उसका भी अपराध क्या था? लगातार निर्जल उपवास किये है

उसने। लज्जा निवारण को कपड़े तक नहीं जुटते थे। हमेशा ही तो उसे एक गमछा लपेट कर एकमात्र फटी साड़ी को सुखाना पड़ता था। फिर भी, फिर भी, उसने कभी मुंह से एक शब्द भी नहीं निकाला। किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं किया। पहले हंस-हंस कर ही सब सहा था, इधर हंसने की शक्ति चुक जाने पर भी सहती जा रही थी—नीरव, निःशब्द। भात मिलने पर भी वह पूरा न खा कर पति के लिये बचा कर रख देती थी। इतना सब सहते-सहते वह अन्त में टूट ही गयी। तो यह उसका अपराध तो नहीं कहा जा सकता।

अरुण ने अपने अन्तर्मन में झांक कर आज शायद पहली बार गौर किया कि नीलिमा के प्रति कोई शिकवा, कोई शिकायत उसके मन में नहीं बची है। शायद वेदना-बोध अब भी है, पर उसके लिये उसका अपना भाग्य ही उत्तरदायी है। नीलिमा को जितने दिन उसने पाया है, कभी भी कोई भी अभियोग का कारण नहीं मिला। स्नेह, प्रेम, सेवा, लीला, चांचल्य से परिपूर्ण उस किशोरी नववधू की याद आते ही आज भी सारी देह में रोमांच हो आता है। ना, जितने दिन उसने पाया है, जी भर कर पाया है। ऐसा दुर्भाग्य कम लोगों का ही होता है, पर ऐसा सौभाग्य भी किसको मिलता है? प्रथम यौवन की उस निश्चिन्त जीवन-यात्रा की एक-एक विनिद्र रजनी की जो मधुर स्मृति उसके हृदय में संचित है, उसी का सहारा लेकर वह पूरा जीवन काट सकता है। उनका क्या कुछ भी मूल्य नहीं है? उनके लिये क्या उनके मन में कोई कृतज्ञता नहीं है? अरुण के अपने दोष के फलस्वरूप, या असहनीय दुख के कारण, अगर उसका पांव चूक ही गया तो क्या अरुण उसी की रट लगा कर उसका प्रेम, उसकी निष्ठा, सब को भुला बैठेगा?

नहीं, मन की इस दुर्बलता, इस अन्याय को वह प्रश्रय नहीं देगा। अपनी पहली पुस्तक वह नीलिमा को ही समर्पित करेगा।

नीचे राजपथ जन-विरल हो चला था। दूकानें बन्द होने के साथ-साथ सड़क का प्रकाश भी मलिन हो गया था। शहर की अशान्त विक्षुब्धता के ऊपर सुषुप्ति की चादर फैलती जा रही थी। सब मिला कर एक करुण, मधुर-सी शांति छाने लगी थी। वह कुछ क्षण तक जाने क्या सुनने की आशा में निश्चल खड़ा रहा। पास के फ्लैट में पति-पत्नी के वार्तालाप का गुंजन बीच-बीच में सुनाई दे जाता था। नीचे कहीं एक बच्चा एक स्वर में रोये चला जा रहा था। और सब शान्त था, स्तब्ध था।

वह एक दीर्घ श्वास छोड़ कर वापस कुर्सी पर बैठ गया। फिर दृढ़ हाथों से प्रूफ वाले कागज अपनी ओर खींच कर समर्पण वाले पृष्ठ पर उसने लिख दिया—अधिक कुछ नहीं, सिर्फ 'श्रीमती नीलिमा देवी को'।

अगले दिन शाम को ही पुस्तक प्रकाशित हो गई। प्रकाशक मोहित बाबू एक प्रति हाथ में लेकर उस रात आये अपनी रक्षिता के घर। ऊपर जाकर उसके सामने पुस्तक फेंक कर बोले, 'यह लो, तुम्हारी वह किताब निकल गई है।'

वह बैठी हुई कुछ बुन रही थी। झट् से बुनाई नीचे रख कर उसने साग्रह वह पुस्तक उठा ली। बड़ी सुन्दर बंधाई हुई थी किताब की। रंगीन कवर पर पुस्तक और लेखक का नाम चमक रहा था। कुछ उलट-पलट कर उसने वह पुस्तक बिछौने के पास पड़ी एक तिपाई पर सावधानी से रख दी और उठ कर मोहित बाबू के आराम का प्रबन्ध करने लगी। चादर और कुरता उतार कर उसे पकड़ाते-पकड़ाते मोहित बाबू बोले, 'बाबा, जान बची! क्या पीछे पड़ी थी तुम इस किताब के लिये!'

फिर विस्तर पर पसर कर बोले, 'रामटहल कहां गया? कहो, थोड़ी तमाखू दे जाय। निकल तो गई यह किताब, अब खर्चा भी निकल जाये तो खैरियत है। तुम्हारे ही आग्रह पर इतने रुपये देकर किताब ली थी, इसके आधे भी कोई और नहीं देता।'

वह उस समय किसी कार्य में व्यस्त थी। मुंह फिराये बिना ही बोली, 'खर्च निकलेगा क्यों नहीं? इतनी अच्छी किताब है, लोग खरीदेंगे नहीं?'

मुंह बिचका कर मोहित बाबू बोले, 'क्या पता, क्या लिखा है? मैं कोई पढ़ता हूं यह सब? बस तुम्ही हो कि उसका नाम सुनते ही दीवानी हो जाती हो।'

'हां जी, मैं ही होती हू न सिर्फ? अगर अच्छी रचनाएं नही होती, तो इतनी पत्र-पत्रिकाएं उन्हे छापती क्यो?'

मोहित बाबू कुछ विरक्त होकर बोले, 'बड़ी बुद्धि भरी है ना उन अखबारो में? जो मिलता है, वही छाप देते हैं।...तुम्हे भी, काम-धाम तो कुछ है नहीं, देखता हू, जिन अखबारों में अरुण बाबू की रचनाएं छपती हैं, सभी तुमने खरीदना शुरू कर दिया है।'

'और क्या करूं? अकेले-अकेले मेरा समय कैसे कटे? तुम घबराओ मत। इस किताब की बिक्री जरूर होगी। सब पत्रिकाओं में भेज दो। देखना, अच्छी समालोचना निकलते ही बिक्री शुरू हो जायेगी।'

'हो, तो जान बचे। एकदम नया लेखक है ना, बड़ा डर लगता है।'

मोहित बाबू कुछ देर आंख मूद कर लेटे रहे। रामटहल हुक्का भर कर रख गया, तो उठ कर निगाली हाथ में लेते हुए बोले, 'हां, एक मजेदार बात कहना तो भूल ही गया। पता है, उनकी पत्नी का नाम भी नीलिमा है?'

नीलिमा नाश्ते की तश्तरी ला रही थी। अचानक उसके हाथ कांप उठे। पूछा, 'किसने कहा ?'

मोहित बाबू ने उत्तर दिया, 'वह देखो न किताब खोल कर, उसी को पुस्तक समर्पित की है।'

नीलिमा ने जल्दी से किताब खोल कर समर्पण वाला पृष्ठ निकाला। एकाध मिनट चुपचाप उसकी ओर देखने के बाद पूछा, 'पर यह कैसे पता कि यह उनकी स्त्री का नाम है ?'

मोहित बाबू मुंह से निगाली निकाल कर बोले, 'खुद उन्होंने ही कहा। नाम देख कर मुझे बड़ी दिलचस्पी हुई। बोल तो कुछ सकता नहीं हूं, उन्हीं से पूछा, यह कौन है जी ? अरुण बाबू ने जवाब दिया, मेरी पत्नी। कैसा संयोग है !'

नीलिमा ने कोई उत्तर न दिया। समर्पण वाला पृष्ठ अब भी खुला था, पर अक्षर उसे दिखाई नहीं दे रहे थे, सब मानो धुल-पुंछ कर साफ हो गये हों।

मिनट-दो-मिनट बाद पुस्तक बन्द कर के कुछ रुंधे गले से बोली, 'तुम्हारे लिए चाय ले आऊं।'

पर वह तुरन्त नीचे नहीं गई। उस ओर के बरामदे में खड़ी हो कर गली के ऊपर फैले अंधेरे आकाश को निर्निमेष दृष्टि से ताकती रही। फिर न जाने किसे याद कर के उसने माथे तक हाथ उठा कर नमस्कार किया।

मोहित बाबू तब तक सो चुके थे।

लीला मजुमदार

स्थल-पद्म

मेरे छोटे बाबा जिन दिनों विलायत से बैरिस्टरी पढ़ कर आए और कलकत्ता में कामयाब होकर रहने लगे, उन दिनों किसी का अधिक दिनों तक अविवाहित रहना असंभव था। लड़कियों के लिए नौकरी के दरवाजे बंद थे, इसलिए विवाह की जनप्रियता बढ़ी हुई थी। इसके साथ ही, लड़कियों की माताओं में ऐसी तत्परता देखी जाती, कि शायद पात्र लड़कियों की दृष्टि से रक्षा पा भी लेते, लेकिन उनकी माताओं की दृष्टि से बच निकलना मुश्किल था।

हमारे छोटे बाबा के मन में विदेशों की स्वर्णकेशी, सुन्दर युवतियों की छवि बसी हुई थी, इसलिए स्वदेश आकर वे किसी को पसंद ही नहीं कर पा रहे थे। लेकिन सुना जाता है, कि रूप के ज्वालामयी आकर्षण से अधिक प्रभावशाली किसी का सान्निध्य होता है। इसी कारण, बेथुन-कालेज से पास हुई लड़कियों में किसी प्रकार की निराशा न आ सकी। सभी अभिजात, सुशिक्षित और सुदर्शन पात्र को अपने कब्जे में लाना चाहती थीं। उफ्, लड़कियां भी क्या होती हैं ? इतने दिनों तक पढ़-लिख कर अगर किसी पुरुष को अपने कब्जे में न कर सकीं, तो फिर क्या किया ?

अन्ततः दो लड़कियां शेष रहीं। ललिता और नलिनी। ललिता भी स्वामी थी और नलिनी भी। ललिता लता की तरह लम्बी, पतली, छरहरी थी। हाथी के दांत की तरह उज्ज्वल रंग, रेशम की तरह चिकने केश जो तेल के अभाव में जरा-सी ललिमा लिये हुए थे। चम्पाकली की तरह उगलियां। दांत मोतियों से और ओंठ

गुलावी। कहीं कृत्रिमता का चिन्ह नहीं, दूध के सत से वह मुंह धोती है और फिर पांच-दस मिनटों तक कोमल-कोमल खीरे के टुकड़ों से चेहरा मलती है। विना इन प्रयोगों के शरीर का सुनहरा रंग कैसे वचाया जा सकता है? ललिता की मां निर्लज्ज होकर यह सव वतातीं।

ललिता जैसी लड़कियां अव खोजने पर भी नहीं मिलतीं। उसके गले का स्वर गजव का था। समुद्र के वीच जैसे धीरे-धीरे लहरें उठती हैं, कुछ वैसा ही था उसका स्वर। जो एक वार सुने वह भूल न सके। हिरणी की तरह अपनी आंखें घुमाकर जिसे देखती, उसकी आत्महत्या की इच्छा होने लगती।

और मन भी क्या नरम था? विल्ली मर जाती तो आंखों से आंसू वहने लगते। दवे गले से रविठाकुर की कविता की आवृत्ति करती, गुन-गुन कर गीत गाती। तितली की भांति फुदक-फुदक कर चलती-फिरती और अन्त में जव थक कर वैठ जाती, तो कपाल पर पसीने की वूंदे चमकने लगतीं। ठीक मुक्त-कणों की तरह, कि कोई पास पहुंचे तो उसका हृदय भी उदास हो जाए।

नलिनी लेकिन दूसरे किस्म की लड़की है। ललिता के कद से कुछ छोटी, कुछ सांवली और गले का स्वर जरा भारी। पर लड़की काम की थी। वी० ए० पास कर लिया है। सिलाई-कढ़ाई के कई नमूने जानती है। रसोई के काम में कुशल है। कितने विदेशी खाद्य-पदार्थ उसने किसी इटालियन-स्त्री से सीखे थे। जैसे 'एग्स इन स्नो' आदि और भी न जाने क्या-क्या, जिनका नाम तक आजकल कोई नहीं जानता। इसके अलावा, पालक की झाड़ू से घर झाड़ना, रीठे से रेशमी कपड़े धोना और चाय के प्यालों पर अण्डे की जर्दी और रंग लगाकर जापानी फूल आंक लेना भी जानती है। लेकिन उसके केश ललिता की तरह चिकने न थे, और न ही पोशाक वैसी थी। फिर भी ऐसी लड़कियां कम देखने को मिलती हैं। कोई उनके पास चला जाता, तो उसका क्लान्त मन उमंग जाता और रोगी की व्यथा कम हो जाती, लेकिन मिजाज ऐसा था कि कभी-कभी वह रूखी हो जाती और वात-चीत में भी अन्यमनस्क हो पड़ती।

दोनों युवतियों का इतना वर्णन करना अकारण नहीं है।

छोटे वावा के स्वदेश लौटने के दो-तीन वर्ष वाद उनके पिताजी ने एक दिन उन्हें घर के पुस्तकालय में वुलवाया और अपने सामने खड़ा करके दृढ़ स्वर में कहा, 'देखो हरिचरण, धीरे-धीरे अव मेरा धैर्य शेष हुआ जा रहा है। विवाह के विना सद्भाव से जीवन-यापन करना कितना कठिन है, आशा है, इसे समझा कर कहने की मुझे आवश्यकता नहीं। मेरे इस घर-वार, जमीन-जायदाद, और सवसे वड़ी वात यह कि इस वंश के एकमात्र उत्तराधिकारी तुम्हीं हो। एक सप्ताह का तुम्हें

समय देता हूं। ललिता अथवा नलिनी दोनों में से किसी एक के साथ विवाह की बात निश्चित कर लो। दोनों तुम्हारे उपयुक्त हैं। पहली अगहन को शादी की तारीख निश्चित कर ली है। बंण्ड-पार्टी को अग्रिम ठीक कर लिया है। अब तुम जा सकते हो। हां, इच्छा हो तो किसी दूसरी लड़की का भी चुनाव कर सकते हो।'

आप समझ ही गए होंगे कि इतना सुन कर छोटे बाबा की बेचारी आंखें कैसे *सरसों के फूल देखने लगी होंगी। एक वर्ष तक जो न हो सका, वही अब सात* दिन में कैसे हो जाएगा, वे सोचने लगे।

ये सब बातें गुप्त न रह सकीं। यद्यपि पुस्तकालय में छोटे बाबा और उनके पिता के अलावा कोई और उपस्थित न था, फिर भी देखते-न-देखते यह खबर एक कान से दूसरे कान होती हुई कन्या-पक्ष तक पहुंच गई।

उन दिनों एक सुविधा थी। वह यह, कि अगर कोई द्वन्द्व होता तो वह आमने-सामने निपट लिया जाता था, चाहे प्रेम से अथवा युद्ध से। यहां भी वही हुआ।

ललिता तथा नलिनी के अभिभावकों ने अपने कई बन्धु-बान्धवों को जुटाया और डायमण्ड हार्बर में एक विराट भोज का आयोजन किया। आयोजन का एक-मात्र उद्देश्य यही था, कि छोटे बाबा दोनों लड़कियों में से किसी में से एक का चुनाव कर लें।

अब जहां मिलिट्री वालों का अड्डा है, वहीं गंगा-किनारे पेड़ों की छाया में भोज का आयोजन हुआ। उन दिनों मोटर-गाड़ियों का बहुत कम चलन था, सो सभी ट्रेन द्वारा वहां पहुंचे। साथ में ढेरों बर्तन-बासन, शतरंज, शामियाने, पलंग, हारमोनियम, बंशी और जापानी हाथ-पंखा आदि भी लाये गए।

यह भी खूब रहा। इन दिनों ललिता और नलिनी के बीच खूब बातें होतीं। लेकिन चूंकि दोनों शिक्षित थीं, इसलिए अकारण और बिना मौका पाये तो एक दूसरे को 'कट' कर नहीं सकती थीं, सो हमेशा मौके की ताक में रहतीं। और यह मौका इस भोज के दौरान मिला।

नलिनी ने देखा कि गुलाबी रंग का एक धूप-निरोधक छाता लगा कर ललिता एक काले मखमली कुशन पर तिरछी-सी बैठी है और फूलों का गुच्छा बांध रही है। सट्टी, चटपटी आवाज में नलिनी उससे बोली, 'वाह ललिता, कितनी सुन्दर जंचती हो। गत वर्ष की सफेद साड़ी को गुलाबी रंग देकर सच-मुच उसे नया कर दिया है तुमने। यह बगल में क्या रखा है? बंगला कविता

की पुस्तक ? क्यों भई, कौन पढ़ता है इसे ?'

छोटे बाबा पास ही बैठे थे, उस ओर एक बार तिरछी निगाह से ताक कर ललिता आवाज में सैक्रीन-सी घोल कर बोली, 'ओह, यह पुस्तक ? यह इतनी अनकल्चर्ड पुस्तक है कि मुझसे पढ़ी नहीं गई। तुम पढ़ोगी क्या ? और यह क्या ? खूब ! कहा था न कि नारंगी का रस मलने से चेहरे के काले दाग मिट जाएंगे। यह देखो, एकदम दिखलाई नहीं देते अब।'

छोटे बाबा इतना सुन कर उठे और सीधे रसोई-घर में जा पहुंचे, जहां औरतें खाना बना रही थीं। यहां मछलियों को काटने के सम्बन्ध में छोटे बाबा की मां और बूटली में तर्क-वितर्क हो रहा था और बूटली ऊंची आवाज में बोल रही थी।

छोटे बाबा ने बूटली से कहा, 'छिः ! लड़कियों को लड़कियों की तरह रहना चाहिए। धीर, शान्त, स्थिर और दबे गले से बोलना चाहिए। लज्जा उनका भूषण होना चाहिए।'

बूटली बोली, 'इसमें लज्जा कैसी ? लज्जा नहीं, मेरा ठेंगा !'

छोटे बाबा बोले, 'उफ, तुम्हें तो मैं लड़की ही नहीं मानता। तुममें और एक डकैत में कोई अन्तर नहीं। ओह, थोड़ी देर पहले हाट की औरतों से दाम को लेकर खिच-खिच कर रही थी। कमर में साड़ी बांध कर और सिर के बालों को पीछे फेंक कर, पुरुषों की तरह सब को ठेलठाल कर आगे बढ़ने से ही नहीं होता। ललिता और नलिनी की ओर एक बार देखो तो पता चलेगा, कि नारीत्व किसे कहते हैं। वे दोनों पद्मफूल की तरह हैं।'

बूटली विरक्त होकर थोड़ा कसमसाई। ढेर-सी चिगड़ी मछलियों को उठाया और एक साथ कच-कच कर उन्हें काटने लगी।

'उफ् ! क्या कर रही हो ? यहां खुली प्रकृति में आने के बाद भी तुम मछलियों की चीर-फाड़ कर रही हो ? तुम्हें बचपन से देख रहा हूं, लेकिन कभी भी तुम में सभ्यता नहीं देखी। देखो तो, ललिता और नलिनी किस शान्ति से एक पेड़ के नीचे बैठ कर गाना-बाना कर रही हैं।'

बूटली ने चिंगड़ी की टांगें काट कर फेंकते हुए कहा, 'जाओ, काम के समय परेशान मत किया करो। भागो यहां से। उन्हीं आदर्श नारियों के पास जाओ। जब मछली बन जाएगी, तब तुम्हीं हाथ चाट कर बोलोगे, और दो न ! सबसे अधिक तुम्हीं खाओगे। अब जाओ, भागो !'

छोटे बाबा फिर बोले, 'बचपन से तुम्हें देख रहा हूं। तुम में कभी भी कवित्व, आदर्श या नारीत्व नहीं रहा।'

बूटली चिनाड़ो के सिर काटती हुई बोली, 'अच्छा बाबा, ठीक है। ललिता और नलिनी में तो हैं ये गुण। जाओ उन्हीं के पास। उनका क्या है? तेलचिट्टा देखते ही मूर्छित हो जाती हैं। छिपकली देखी कि पांव कांपने लगे। बड़ी-बड़ी मूछों वाले मर्दों को देख कर उनकी छाती धक-धक करती है। रात को जागते समय मां को बुलाती हैं।'
इस बार वास्तव में यह बात छोटे बाबा को लग गई, बोले, 'जलन के मारे ही तुम उन्हें खुद से हेय समझती हो।'
बूटली हंस कर बोली, 'हेय क्यों समझूंगी?'
छोटे बाबा वहां अधिक देर तक ठहर न सके। नारी अपना नारीत्व खोकर कैसी हो जाती है, इसका इससे अच्छा नमूना कहां देखा जा सकता है? ये सब बातें छोटे बाबा ने खुद अपनी जबान से मुझे बताई थीं।
सारा दिन उन्होंने ऐसी अशान्ति में काटा कि क्या कहा जाए। स्त्रियां इतनी अशान्ति पैदा कर सकते हैं, यह वे तब तक नहीं जानते थे।
घर वापस लौटने के पहले चाय का दौर चला। नलिनी और ललिता क्लान्त पद्मफूल की तरह लग रही थीं। बूटली नौकर-नौकरानियों के दल में ऐसी मिल गई थी कि उसे अलग से पहचान पाना मुश्किल था।
नलिनी कह रही थी, 'यह क्या, ललिता, देखो तो तुम्हारे बालों से गुच्छा निकला जा रहा है? ठहरो, मैं ठीक कर दूं। तुम इतनी सुन्दर हो, इसलिये कैसा तो लग रहा है! मेरी मानो, तुम भी मेरी तरह सुवासित 'कुन्तलीन' लगाया करो। इससे फिर गुच्छा नहीं लगाना पड़ेगा।'
ललिता ने सिर नीचा कर लिया। बोली, 'यह क्या डार्लिंग, तुम मेरी ओर ही देख रही हो, जरा अपनी ओर भी देखो कि तुमने ब्लाउज में पिन कैसे लगा रखी है? कितना खराब लग रहा है! ठहरो, मैं ठीक कर दूं। अरे यह क्या? बटन तो लग ही नहीं रहा है। इतना काम करने के बाद भी इतनी मोटी क्यों हो, कुछ समझ में नहीं आ रहा है? एक बार डाक्टर राईलिक को बुलाकर दिखला दो न। तुम्हारी मुझे बड़ी चिन्ता है, डार्लिंग।'
नलिनी ने तभी खेल-खेल में लाल फूलों का कांटों सहित एक गुच्छा ललिता पर फेंक दिया। प्रत्युत्तर में ललिता ने भी हंसी में वह गुच्छा उसकी ओर दे मारा। लेकिन वह लक्ष्यभ्रष्ट होकर खाने में मस्त एक सांड़ को जा लगा। उसने उसी समय अपना खाना छोड़ दिया और सुन्दरियों की ओर लपका।
तभी मजबूत लाठी लेकर और हट-हट की आवाज लगाती हुई बूटली सामने न आ गई होती, तो उस दिन आनन्दोत्सव की समाप्ति निःसन्देह किसी और ही तरीके से

हुई होती।

सभी ने बूटली की अशोभन दौड़ की निन्दा की। पिण्डलियों से काफी ऊपर तक साड़ी उघड़ गई थी। वाल खुल कर पागलों की तरह छितरा गये थे और वह कर्कश स्वर में चिल्ला रही थी। नलिनी की आंखों में उस समय आंसू भर आये थे, और ललिता भय से अचेत होकर छोटे वावा के चरणों में लोट गई थी।

छोटे वावा ने उसे अपनी गोद में उठा लिया और कुशन के ऊपर लिटा कर जापानी पंखे से हवा करने लगे। उसी के साथ-साथ वे अपने लैवेन्डर की सुगन्ध से भरे रूमाल से नलिनी की अश्रुसिक्त आंखों को पोंछते रहने को भी वाध्य हुए थे। बूटली एक वालटी पानी भर लाई और मन-ही-मन हंसती हुई उन दोनों के मुंह पर पानी छिटकती रही।

घर लौटने पर, उसी दिन रात को छोटे वावा याचक वनकर लाइब्रेरी में पहुंचे और नतमस्तक होकर पितृदेव के सामने खड़े हो गये।

'कुछ कहना है क्या ? किसी को पसन्द किया ?'

'किसे ?' छोटे वावा वोले।

'किसे ? ललिता को या नलिनी को ? दोनो ही तुम्हारे उपयुक्त हैं।'

आरक्त होकर छोटे वावा वोले, 'बूटली को।'

आंखों को ऊपर चढ़ाकर भौंहों से ताकते हुए पिता वोले, 'ठीक है, किन्तु तुम जैसे स्टुपिड से वह शादी करना पसन्द करेगी ?'

अपनी छोटी दादी से ही यह सव सुना कि कैसे एक महीने की आनाकानी के वाद बूटली ने हां की थी। तव छोटे वावा ने उसे हीरे की एक अंगूठी खरीद कर दी थी। दादी आगे वताती है, 'शादी के लिए मेरा मन नहीं था, लेकिन जानती हो, मैं न करती तो उन दो हिंसक लड़कियों में से कोई एक उनसे कर लेती और वे सारा जीवन कष्ट पाते। अन्त में यही सोच कर 'हां' कह दिया था मैंने।'

मीलू दी

इतने दिन बाद मीलू दी की याद आयी, इसकी वजह उनकी लड़की की शादी नहीं है। लड़की की शादी पर पुलिस का जमघट भी इसकी वजह नहीं है। याद आने की वजह और ही है, जो मैं बाद में बतलाऊंगा।

मीलू दी को काफी अरसे से जानता हू। बचपन में उन्हीं पर हम लोगों का दायित्व था।

पिताजी की बदली करीब-करीब हर साल होती थी। आज मेरठ, कल दिल्ली, परसों जबलपुर, और अगले दिन ही शायद कलकत्ते। बदली होने पर पिताजी हम लोगों को मामा के यहां पहुचाकर अकेले चले जाते थे। बाद में घर या क्वार्टर मिलने पर बुला लेते।

इसीलिए मामा के यहां जाना-आना लगा ही रहता था।

मामा के यहां हम लोगों की देख-भाल करना मीलू दी का काम था। हम लोगों को सुलाना, खिलाना, कपड़े पहनाकर बाहर भेजना वगैरह सब उन्हें ही देखना होता था। मामा के यहां जब तक रहते, हम लोगों पर मीलू दी की हुकूमत चलती थी।

याद है, लाइन लगाये हम सब-के-सब छत पर सो रहे थे। आधी रात के वक्त अचानक नींद टूट गयी। डर के मारे जान सूख रही थी। पुकारा, 'मीलू दी...!'

पुकारते-पुकारते भी आवाज जैसे गले से निकल नहीं रही थी। कहीं मार न बैठे! मीलू दी बड़ी मारती थीं। मारते-मारते भुरता बना डालती थीं।

कहतीं, 'बुआ, अपने बड़े सपूत को तुमने बिलकुल बिगाड़ कर रख दिया है।'

आज भी याद है, मीलू दी उन दिनों फ्राक पहनती थीं। वैसे याद बड़ी धुंधली-सी है, गोल-मटोल मीलू दी अपने गोरे-गोरे हाथों में मुझे लिए बरामदे में चक्कर काटा करती थीं। इसके बाद ही मीलू दी ने साड़ी पहनना शुरू कर दिया। बदन अब जरा हल्का हो गया था। रंग भी पहले से साफ हो गया था। एक चांटा मारतीं, तो कनपट्टी झनझना उठती।

लेकिन सारी मुसीबत रात को ही होती थी। मीलू दी मेरे पास ही सोती थीं। सोते-सोते अपने पांव मेरे ऊपर रख देतीं। फिर भी जरा-सा हिला, कि चांटा। मां से कहतीं, 'बुआ, इतनी शैतानी करता है रात को कि...।'

सचमुच रात के वक्त अकेले नल के पास जाने में मुझे बड़ा डर लगता था। सब सोये होते आस-पास में, भाई-बहनों के सांस लेने की आवाज आती। पुनः डरते-डरते धीमे से पुकारता, 'मीलू दी...'

मीलू दी नल के पास ले तो जातीं, लेकिन साथ ही पीठ पर धमाधम घूंसे भी लगातीं।

कहतीं, 'रात को भी चैन नहीं लेने देता बदमाश!'

रोज यही चलता।

फिर कहतीं, 'अगर रात के समय फिर तंग किया तो अगले दिन खाना नहीं मिलेगा, सारे दिन भूखा रहना होगा, समझा?'

लेकिन शाम के वक्त हमेशा की तरह तैयार कर के नौकरानी के साथ पार्क में मुझे भेजतीं, दुलार से पाउडर-क्रीम लगाकर, नये कपड़े पहनाकर, माथे पर डिठौना लगाकर कहतीं, 'आकर पढ़ने बैठना होगा, समझे?'

मीलू दी मुझे चाहती भी काफी थीं। कोई मुझे डांटता या मारता तो मीलू दी फौरन आगे आ जातीं।

'तुम लोग हमेशा पल्टू के पीछे क्यों पड़े रहते हो? इसने क्या बिगाड़ा है तुम लोगों का?'

इसी तरह मेरठ से जबलपुर, जबलपुर से [illegible] और [illegible] में [illegible] मामाजी की बदली होने पर हम लोगों को जाना होता। [illegible] के लिए मामा के यहां रह आता।

[illegible]

लगाती, सेन्ट लगाती। मीलू दी जब प्यार करने के लिए पास में खीच लेती तो खुशबू से सब कुछ भर उठता, मीलू दी के पास रहना अच्छा लगता। आजकल मीलू दी अपने खिलौने भी छूने देती। घूमने जाते वक्त किसी-किसी दिन एक-आध पैसा भी देती। कहतीं, 'किसी से कहना नहीं।'

मैं उस पैसे को मूगफली लाकर चुपचाप मीलू दी को दे देता।

मीलू दी किसी दिन कहती, 'लाला की दूकान से जरा कचौडी ला देगा ?'

'जरूर, मीलू दी।'

'किसी से कहना नही।'

मैं कहता, 'नही, सच कहता हू मीलू दी, किसी से भी नही कहूंगा।'

'अच्छा, तो खा भगवान की कसम।'

मैं कसम खाता और फिर हम दोनो छत पर छोटी-सी कोठरी मे छुपे मूगफली, कचौडी या पकौडे खाते होते। मीलू दी मेरे से चार-पांच साल बडी थी, लेकिन हमारी दोस्ती में इससे कोई रुकावट नही आयी।

एक बार मामा के यहां पहुचने पर पाया, मीलू दी और भी बडी हो गयी हैं। स्कूल जाना बन्द हो गया है। मेरे पहुचने से जैसे उन्हे एक काम मिल गया। गुडिया खेलना बंद हो गया था, सिर्फ किताबें पढती रहती। मैं आस-पास के घरों से किताबें ला देता और मीलू दी छुप कर पढती। उनके पढ लेने पर लौटा आता। मीलू दी ज्यादातर छत पर बैठकर पढती थी। और मैं जीने में बैठा-बैठा पहरा दिया करता।

जीने पर किसी के आने की आहट होते ही मैं इशारा कर देता और मीलू दी किताब छुपा लेतीं। मीलू दी कभी-कभी गाना भी गाती। उनकी गाने की कापी मे पता नही कितने गाने लिखे थे। वह सब मीलू दी के बिस्तरे के नीचे छुपा रहता। मुझे छोड और किसी को इस बारे में कुछ भी पता नही था।

मीलू दी ने खबरदार कर दिया था, 'मैं गाना गाती हू या किताबें पढ़ती हू यह किसी से न कहना, नही तो तेरी खाल उधेड डालूगी।'

हा तो, मीलू दी के लिए कुछ भी कठिन नही था। बात-बात में मारती। घूमने जाते समय अगर पैन्ट पर कोई दाग लगा कि बस खैर नही थी, और अगर कहीं गाना गाने लगू, तब तो बस...

'आजकल बडा उस्ताद हो गया है रे पल्टू! इसी उम्र में गाना ?'

या कहतीं, 'खूब आवारागर्दी होती है न ? अच्छा ठहरो, मैं देखती हू।'

किसी दिन गाल पकड कर कहती, 'मेरी किताबें पढ रहा है, इसी उम्र में नाबेल

पढ़ने की चाट लग गयी है ?'

लेकिन उस दिन एक बात हो गयी।

मामा अचानक दोपहर को ही आफिस से आ गये थे। मैं उस वक्त सो रहा था। मामी भी शायद सो रही थीं। अचानक किसी आवाज से मेरी नींद टूट गयी। उठकर देखता हूं, नीचे मामा मीलू दी को खूब मार रहे थे। देखकर मुझे रुलाई आ गयी। मीलू दी चुपचाप मार खा रही थीं, और मामा बेंत लिए सपासप मारे जा रहे थे। यहां तक कि पीठ से खून गिरने लगा।

सभी आकर इकट्ठे हो गए थे, लेकिन मामा के सामने बोलने की हिम्मत किस की होती ? मामी भी एक ओर चुपचाप खड़ी थीं। मां भी मुंह बाए खड़ी थीं। हम भाई-बहन डर से थर-थर कांप रहे थे।

मामा कह रहे थे, 'आज मैं इसे जिन्दा नहीं छोड़ूंगा। इस लड़की का तो मर जाना ही अच्छा है।'

मामी रो रही थीं, 'यह लड़की एक दिन मेरा मुंह काला करके रहेगी।'

मां कह रही थीं, 'चिल्लाओ मत भाभी, बात फैल जाने पर हम लोगों का ही मुंह काला होगा। इसका क्या बिगड़ना है ?'

मामी तब भी रो रही थीं, 'इतनी-सी लड़की के पेट में दाढ़ी ! मैंने कितनी बार कहा कि इसकी शादी कर दो। तब तो किसी ने मेरी सुनी नहीं। अब हुआ न !'

मां ने कहा, 'बड़ा खराब वक्त आ गया है, यह समय का दोष है। इस उम्र में मेरा पल्टू हो गया था। शादी हो जाती तो यही लड़की तीन बच्चों की मां हो गयी होती।'

लेकिन मीलू दी की उम्र उस समय तेरह साल थी और मेरी यही कोई आठ रही होगी।

तेरह साल की मीलू दी ने ऐसा कौन-सा कसूर किया था, उस दिन नहीं समझ पाया। लेकिन उसे जो सजा मिली, वह आज भी याद है। उस दिन मीलू दी को छत पर कोयला रखने वाली कोठरी में बन्द कर दिया गया था, सारे दिन खाना या एक ग्लास पानी तक नहीं दिया गया। मुझे बार-बार मीलू दी का ख्याल आ रहा था। उनकी हालत देख रोने की इच्छा हो रही थी। लेकिन डर के मारे कोयले की कोठरी के पास नहीं जा पाया। अगर कोई देख ले !

अगले दिन मीलू दी से पूछा था, 'उन लोगों ने तुम्हें किसलिए मारा, मीलू दी ? तुमने क्या किया था ?'

मीलू दी बड़े जोर से गुस्सा हो गयी थी, 'मुझे इन बातों से मतलब ? बड़ा सयाना हो गया है ! पढ़ाई-लिखाई नही है, साले...'

इसके बाद मीनू दी की शादी पर मामा के यहां गया था। मीलू दी अब काफी बड़ी हो गयी थी। शायद सोलह साल की होगी। चेहरा भी काफी भर गया था। दुल्हन सजी मीलू दी बड़ी सुन्दर लग रही थीं। शाम के वक्त चारों ओर रोशनी हो रही थी। शहनाई बज रही थी। नाते-रिश्तेदारों से घर भर गया था। पकवानों की सोंधी-सोंधी सुगन्ध आ रही थी।
मीलू दी को अकेला पाकर मैंने पूछा, 'तुम्हें डर नहीं लग रहा, मीनू दी ?'
मीलू दी ने मुंह बनाकर कहा, 'ट्हु, डर किस बात का ?'
'अब तो तुम ससुराल चली जाओगी।'
'जाऊंगी तो जाऊंगी, तुझे क्या ?'
पता नहीं क्यों, मुझे बड़ा खराब लग रहा था। घर भर की हंसी-खुशी में जैसे मुझे कोई मतलब नहीं था। मामा के यहां एक ही आकर्षण था, मीनू दी का। मीलू दी की गालियां, उनका गुस्सा होना और मारना भी जैसे बड़ा अच्छा लगता था। मामा के यहां आने पर अब तैयार कौन करेगा ? मेरे ऊपर अब कौन पहरा देगा ? मैं नावेल पढ़ रहा हूं या नहीं, इसकी खोज कौन रखेगा ? मेरे अच्छे-बुरे के लिए कौन फिक्र करेगा ?
मीलू दी उस वक्त शीशे के सामने खड़ी अपने को देख रही थी। एक बार इधर, एक बार उधर। नये गहनों में कैसी लगती है यही।
मीनू दी ने कहा, 'जरा देखना। इधर कोई न आए।'
शादी का घर, कितने ही लोग। दरवाजे-खिड़कियां बंद कर दी। कोई भी नहीं देख पायेगा। मीलू दी अपने में खोयी साज-शृङ्गार करने लगीं। मैं भी आदमी हू, इस ओर जैसे उनका ध्यान ही नहीं था। साड़ी को घुमा कर, पलट कर और तरह-तरह से पहन रही थीं। लेकिन फिर भी जैसे कोई कमी रह जाती। मीलू दी उस दिन खुद पर ही कुरबान हो रही थी। एक बार घूंघट डालती, फिर हटा लेतीं। एक बार होठों पर लिपस्टिक लगाती, फिर पोछ डालती। कुछ भी मन माफिक नहीं हो रहा था।
आखिर मुझसे पूछा, 'कैसी लग रही हू रे ?'
लेकिन मैं कोई जवाब नहीं दे पाया। मीलू दी जैसे एक मात्र ही उर्वशी, मेनका, रम्भा, दुर्गा और लक्ष्मी-जैसी सुन्दर लग रही थी।
मीलू दी समझ गयी। बोली, 'मेरी ओर इस तरह से क्या देख रहा है ? मैं

तेरी बड़ी बहन होती हूं। खबरदार, मारे घूसों के पीठ का भरता बना दूंगी। समझा ?'

कहकर न बात न चीत, धम् से मेरी पीठ में एक घूसा जमा दिया।

'यही सब पढ़ाई हो रही है न ?...'

'क्या किया है मैंने ?'

'जबान लड़ाता है ? मैं जैसे कुछ समझती नहीं हूं। लड़कियों की ओर इस तरह से ताकना चाहिए ?'

पीठ के दर्द से मेरी आंखें भर आयी थीं।

'ऊपर से देखिए ? बाहर रहते-रहते यह हाल हो गया है ?'

मुझे बड़ा गुस्सा आ रहा था। दरवाजा खोल कर बाहर जाने लगा।

मीलू दी ने कहा, 'कहां चला ?'

'बाहर।'

मीलू दी ने मेरा हाथ पकड़ कर एक झटका दिया, 'इसी उम्र में इतनी शैतानी ? बाहर जाने की कोई जरूरत नहीं है। एक काम कर...जरा ठहर...'

शाम काफी गहरी हो गयी थी। जरा देर बाद ही दुल्हा आता होगा। बाहर से लोगों की आवाजें आ रही थीं। सभी अपने-अपने काम में लगे थे। बाराती आते ही होंगे। मीलू दी ने अचानक बैठ कर एक चिठ्ठी लिख डाली। थोड़ी देर तक दत्तचित होकर पता नहीं क्या-क्या लिखती रहीं। फिर चिठ्ठी को लिफाफे में रखकर मुंह से ही लिफाफे को चिपका कर मुझसे बोलीं, 'जरा यह चिठ्ठी तो दे आ दौड़कर।'

मैं चिठ्ठी लेकर जा ही रहा था कि मीलू दी ने रोका। पूछा, 'किसे देगा ?'

'तुम जिसे देने को कहोगी।'

'तो सुन, बड़े रास्ते के मोड़ पर जो पेड़ है न, वही जिसमें इतनी बड़ी कोटर है, उसमें ही रख आना। कर पाएगा ? कोई देख न ले।'

'कोई नहीं देखेगा।'

'अगर कोई देख ले ?'

'तब मेरे दस घूसे लगाना।'

मैं खुशी से फूला नहीं समा रहा था ! मीलू दी का एक जरूरी और निजी काम करने को मिल रहा था। मीलू दी ने मुझ पर यकीन किया है।

लेकिन तभी मीलू दी ने एक अजीब काम कर डाला। उस सेंट, स्नो और पाउडर लगे मुंह से मेरे गाल चूम लिए। स्नेह से मीलू दी का चेहरा जैसे एकदम और ही हो गया था। कहने लगीं, 'मेरे अच्छे भाई ! कोई देख न पाए,

समझे ?'
'कोई भी नहीं देख पाएगा मीलू दी, तुम देख लेना।'
'अगर ठीक से चुपचाप रख आएगा तो एक चुम्मा और दूंगी।'
उस दिन बिना किसी को पता लगाए ठीक जगह चिट्ठी रख आया। यहां तक जानने की कोशिश भी नहीं की, कि चिट्ठी किसके लिए लिखी गयी है, और जिसके लिये लिखी गयी है उसने ली या नहीं। उसके साथ मीलू दी का सम्बन्ध क्या है ? अच्छा-बुरा कोई भी खयाल दिमाग में नहीं आया। काम पूरा करते ही मुझे उपहार मिलेगा—मेरा लक्ष्य वही था।
लेकिन मीलू दी से उस दिन वह चुम्बन और नहीं मिला। सिर्फ उसी दिन क्यों, हमेशा के लिए ही वह उपहार बाकी रह गया। इसके बाद जब मुलाकात हुई...
लेकिन वह मुलाकात न होती, तभी शायद ज्यादा अच्छा होता।
मीलू दी ससुराल चली गयीं। अगले दिन हम लोग भी मेरठ चले आए। पिताजी को जबलपुर से उन दिनों मेरठ बदली हो गयी थी। अगले साल गर्मियों में भी मामा के यहां आना नहीं हुआ। दिवाली पर भी नहीं जा पाए।

याद है एक दिन एक पोस्टकार्ड आया था।
चिट्ठी मिलते ही मां पढ़ने लगी। पिताजी के आफिस से लौटने पर उन्हें भी दिखलाया।
चिट्ठी पढ़कर पिताजी का चेहरा, पता नहीं क्यों, बड़ा गम्भीर हो गया। काफी देर तक वैसे ही बैठे रहे, कपड़े उतारना भी भूल गए।
मां को भी जैसे आज खाना पकाने की चिन्ता नहीं थी। कह रही थी, 'मुहजली ने वंश के नाम पर कलंक का टीका लगा दिया। बेचारे भैया की अभी भी दो-दो लड़कियां बिन-ब्याही बैठी हैं।'
'लड़के-लड़कियों का साथ-साथ उठना-बैठना मैं इसी वजह से पसन्द नहीं करता।'
'मरी का रूप देखकर मुझे तभी खटका लगा था। ज्यादा सुन्दर लड़कियां भी कभी सुखी हो पायी हैं ?'
रसोई-घर में जाकर धीरे से मैंने पूछा, 'मां, क्या हुआ ?'
'किस चीज का क्या हुआ रे ?'
'पिताजी से किन बारे में बात कर रही थीं ?'
मां लाल-पीली हो गयीं। बोलीं, 'हर बात में कान देने की यह आदत कहां

से सीखी है ? अपनी पढ़ाई-लिखाई में मन नहीं लगता ?'
लेकिन पता नहीं क्यों, मुझे बड़ा डर लग रहा था। जरूर ही मीलू दी को कुछ हुआ है। सुन्दर के माने तो अपने यहां मीलू दी ही है। मामा के यहां सुन्दर और कौन है ?

फिर एक चिट्ठी मां के नाम आयी। एक ओर जाकर मां ने पढ़ा। फिर पिताजी के आफिस से आने पर उन्हें भी बतलाया। मैं आस-पास चक्कर काट रहा था। सुनने के लिए कि क्या बातें हुईं।
मां ने कहा, 'तू यहां क्यों रे पल्टू, जाकर पढ़ अपने कमरे में।'
मुझे भगाकर ही जैसे मां को चैन मिला। लेकिन मन-ही-मन मुझे बड़ा खराब लग रहा था। पता नहीं, किसके लिए और क्यों खराब लग रहा था। मां और पिताजी आज भी शायद मीलू दी के बारे में ही बात कर रहे थे। मीलू दी ने कोई बुरा काम किया है, जिससे मामा के कुटुम्ब के नाम पर बट्टा लग गया है।
इसके बाद काफी अरसे तक मामा के यहां जाना नहीं हुआ। पिताजी का ट्रान्सफर होने पर अब हम लोग साथ ही रहते। मां कहतीं, 'नहीं, वहां जाकर बच्चे वही सब सुनेंगे, तब क्या होगा ?'

इसके करीब पांच साल बाद जब पिताजी ने बीमारी की वजह से लम्बी छुट्टी ली थी, हम लोग फिर मामा के यहां गये।
मामा और भी बूढ़े हो चुके थे। मामी का भी वही हाल था। मामा के यहां अब पहले जैसा लाड़-दुलार नहीं मिला। सब कुछ जैसे बदल गया था। ममेरे भाई-बहन भी बड़े हो गये थे। पहले मामा की बड़ी इज्जत थी। कितने ही लोग मिलने के लिए आया करते थे। बैठक में घंटों जमघट रहता। आज-कल कोई नहीं आता था। मामा अकेले बैठे-बैठे तम्बाकू पीते। घर का सारा काम पुराने नौकर रामधन के सर पर था। बाजार दौड़ने से तम्बाकू लगाने तक हर काम के लिए रामधन।
घर में घुसते ही फटिक से पूछा, 'मीलू दी कहां हैं रे ?'
फटिक जैसे डर के मारे दो कदम पीछे हट गया। कुछ भी नहीं बोला।
शाम को घूमने जाते वक्त मां ने कहा, 'पल्टू को तरुया की ओर न जाने देना रामधन।'
मामा का मकान शनीचरी बाजार जानेवाली सड़क पर था। आगे पूर्व की ओर

ही तरुया जाने का रास्ता था। पहले कितनी ही बार तरुया जा चुका हूं। वहां नदी के किनारे वाले रेलवे के पंपिंग स्टेशन पर हम लोग खेला करते थे। उधर अमरूद का एक बगीचा था। वहां के माली से हम लोगों ने दोस्ती गांठ ली थी, मुफ्त में अमरूद खाने को मिलते। लेकिन अचानक तरुया जाने के लिए मनाही क्यों? रामधन बूढ़ा आदमी था। उससे कुछ भी पता चलना मुश्किल था।

कहने लगा, 'यह सब बातें तुम्हारे सुनने को नहीं हैं।'

लेकिन बाद में अन्नू ने बतलाया।

शुरू-शुरू में तो उसने भी ना-नुकुर की, 'किसी से कहेगा तो नहीं। देवी-मैया की कसम। नहीं तो मर तोड़ कर रख देंगी मां।'

'नहीं कहूंगा, तू कह।'

'देवी-मैया की कसम खाकर कह।'

'देवी-मैया की कसम।'

अन्नू ने बतलाया, 'मीनू दी हैं न? सासरे से भाग आयी हैं।'

'भाग आयी हैं? अभी कहां हैं?'

'अरे, नुक्कड़ पर वह अम्बिका बाबू रहते थे न, वही जो हम लोगों को लेमनचूस दिया करते थे, वह और मीनू दी दोनों तरुया में एक मकान लेकर रहते हैं।'

'तरुया में किस जगह?'

'ऐडम्स ब्लाक में। मीनू दी के लड़की हुई है।'

'और जीजाजी?'

जीजाजी के बारे में अन्नू को पता नहीं था।

अन्नू ने और भी बतलाया, 'एक दिन चुपके-चुपके मीनू दी से मिलने गया था भाई, कितना गंदा घर था! उफ, एक गंदी-सी साड़ी पहने खाना बना रही थीं। मुझे खाने के लिए मूड़ी दी। भाई, मुझे तो बड़ा खराब लगा देख कर।'

'फिर?'

'मीनू दी ने पूछा, पिताजी कैसे हैं, मां कैसी है। सभी के बारे में पूछा।'

'मेरे बारे में नहीं पूछा?'

'नहीं भाई, तेरे बारे में कुछ भी नहीं पूछा।'

'आज मेरे साथ चलेगा अन्नू? मुझे जरा घर दिखला देगा।'

'न बाबा। मारते-मारते आज तो जान ही निकाल देगी मां। उस दिन ऐसी कुटम्मस हुई थी, कि छठी का दूध याद आ गया।'

आज भी याद है, तरुया की ओर जाने को मन कितना छटपटा रहा था। स्टेशन जानेवाली सड़क के बांयी ओर तरुया है। खाली मैदान पार करते ही बड़े-बड़े

दो आम के पेड़ों के नीचे ही ऐडम्स ब्लाक है। उसी ओर ताकता रहता। अगर कहीं से, किसी खिड़की के पीछे से, मीलू दी आ जाएं। ऐडम्स साहब का बंगला दु-मंजिला था, उसी की दाहिनी ओर एक-मंजिले छः मकानों की कतार थी। इनमें किराएदार रहते थे। बूढ़े गार्ड ऐडम्स को मैं जानता था। रिटायर होने पर यहां मकान बनवा लिया था। शादी-वादी नहीं की थी। सुबह-शाम हर रोज अपनी पुरानी साइकिल पर रनिंग-रूम तक जाते थे, वहां और गार्ड बाबुओं के साथ गप्प लड़ाते। लेकिन मां के डर से मैं उस ओर नहीं जा पाया।

मीलू दी के पास मेरी एक चीज बाकी थी। उस दिन कोटर के अन्दर वह चिट्ठी तो मैं रख ही आया था। बाद को शादी के हुल्लड़ में मीलू दी मेरी बात भूल ही गयीं।

सोचता, आखिर मीलू दी को अम्बिका बाबू में ऐसा क्या दीख गया? जीजाजी तो अच्छे ही हैं। कितनी खोज-बीन करने के बाद मामा ने शादी ठीक की थी। उस दिन तरुया की ओर निकल ही तो गया। मीलू दी किस मकान में रहती हैं, यह भी मालूम नहीं था। फिर भी जा रहा था। जो होगा, देखा जाएगा। मां अगर मार भी डालें, तो भी मीलू दी से मिलूंगा।

सामने ही ऐडम्स ब्लाक था। बाहर से अन्दर का कुछ भी दिखलायी नहीं देता था। फिर भी एक आशा थी, मीलू दी देख पाने पर जरूर बुलाएंगी। काफी देर चक्कर काटता रहा। किसी ने भी नहीं बुलाया। कुछ मद्रासी लड़के खेल रहे थे, उनसे पूछते-पूछते भी पूछ नहीं पाया।

अगले दिन शाम को फिर एक बार जाने को सोचा, लेकिन अचानक पिताजी के टेलीग्राम ने सारा प्रोग्राम गड़बड़ा दिया। सुबह ही नागपुर पैसेंजर से हम लोग रवाना हो गये।

मामा के यहां जितने दिन रहा, देखा, रोज एक साधू आता था। मामा उसको काफी मानते थे। मामा को पहले कभी भी साधू-संन्यासियों के बारे में माथापच्ची करते नहीं देखा था। मुझे बड़ा अजीब लगा।

रामधन ने बतलाया, 'बहुत बड़े तान्त्रिक महात्मा हैं। खोयी चीज को वापस ला देते हैं। दुश्मन हो तो उसे खत्म कर देते हैं।'

फटिक ने कहा, 'यह आदमी श्मशान में जाकर मीलू दी के लिए पूजा करता है।'

'क्यों?'

'कहता है कि पूजा करने से मीलू दी जीजाजी के पास वापस आ जायेंगी।'

लेकिन मीलू दी तब नहीं लौटीं। जब लौटीं, उनकी लड़की और भी बड़ी हो गयी थी। मामा उनका लौटना नहीं देख पाये। लड़की के दुःख में चारपाई पकड़ी,

तो फिर नहीं उठे। हम लोग तब कानपुर में थे।
सुना 'मीनू दी अपने मायके वापस आ गयी हैं।'
मैं नौकरी में लगा ही था। फटिक भी उन दिनों रेलवे में नौकरी करता था।
उसी ने लिखा था, 'जीजाजी दूसरी बीवी के मरने के बाद एक बार मामा के यहां आये थे। तभी काफी रोने-धोने के बाद मीनू दी मायके जाने को राजी हो गयी। अपनी लड़की को लेकर मीनू दी आज-कल मायके ही हैं।'
मैंने लिखा, 'और तुम्हारे वो अभिजित भाई साहब ?'
फटिक ने जवाब में लिखा, 'वह लखनऊवाले मकान में ही हैं। क्या करते हैं, किसी से मिलते भी हैं या नहीं, भगवान ही जाने।'
तब मैं बड़ा हो गया था। सब कुछ समझने-बूझने लगा था। पुरानी सारी बातों के नये माने लगाता। फिर भी सब जैसे बड़ा अजीब लगता। यह सब कैसे हुआ ? सोचता, दूसरे की सन्तान के साथ स्त्री को अपनाने के लिए कितनी बड़ी छाती की जरूरत है। कितना विशाल हृदय होने पर यह सम्भव हो सकता है। और भी एक बात समझ में आयी, इस दुनिया में सारी चीजें कानून से बांधी जा सकती हैं, लेकिन मन को काबू करना बड़ा मुश्किल काम है। वह कोई हुकूमत नहीं मानता, कोई कानून नहीं मानता, किसी निश्चित रास्ते पर चलना भी उसे मंजूर नहीं है। सिर्फ एक बात समझ में नहीं आयी—यह मीनू दी आखिर अपने पति के पास लौटकर क्यों आयीं ? यह ठीक है कि इस गुत्थी को मैं सुलझा नहीं पाया, लेकिन इसे सुलझाने की कोशिश की हो, ऐसा भी नहीं है। सोचा, शायद मियां-बीवी के मन में अन्दर-ही-अन्दर शायद कोई भेद रहा होगा, जिस तक पहुंचना मुश्किल और साथ-ही-साथ बेकार भी है। मीनू दी का अपने पति को छोड़ना जैसे एक रहस्य था, जीजाजी का उन्हें फिर से अपना लेना भी उससे कम रहस्य की बात नहीं थी। इस बारे में बाहरी लोगों की राय सिर्फ बेकार ही नहीं, झूठी भी लगी। उसमें इन्साफ की जगह बेइन्साफी की ही ज्यादा गुंजाइश थी। इसलिए वह कोशिश भी छोड़ दी।

मामा के मर जाने के बाद उनके घर जाना कम जरूरी हो गया, लेकिन रिश्ता बदस्तूर कायम था। शादी-ब्याह या गमी के मौकों पर आना-जाना या पत्र-व्यवहार होता रहता। हम लोगों की उम्र के साथ जिन्दगी भी जैसे अधिक कटु और संघर्षमय होती जा रही थी।
गृहस्थी का बोझ फटिक के सर ही था। तीन-तीन बहनों की शादी और दो भाइयों की पढ़ाई से लेकर घर को दो-मंजिला करवाने तक की सारी जिम्मेदारियां

उसी की थीं। इसके अलावा समाज और लौकिकता निभाना, और वह भी रेलवे की साधारण-सी नौकरी के बूते पर, कोई छोटी-मोटी बात नहीं थी।

उस बार अनू की शादी के मौके पर जाकर देखा—फटिक ने जोरदार तैयारियां कर रखी हैं। फर्नीचर, कपड़े, बरतन, आतिशबाजी और बिलासपुर के सारे बंगाली परिवारों का खाना—कम खर्चे की बात नहीं थी। एक बार तो लगा—क्या फटिक घूस लेता है?

कहा भी, 'इस बार तो काफी कर्जा हो गया होगा?'

फटिक ने कहा, 'मैं और कर्जा? तुझे पता है, मेरी नौकरी क्या है? दस आना रोज। उधर मिन्टू के दूल्हे को बिलायत भेजना पड़ा। इसके अलावा घर ति-मंजिला कराना होगा। इन कमरों में गुजर नहीं होती।'

'सो तो है ही।'

'इस बार पूजा पर सभी को कपड़े दिये। सभी खुश हैं, देने पर सब खुश। है न?'

'लेकिन इस तरह रुपया उड़ाने से फायदा?'

'अपनी कौन सुनता है? मीलू दी से कह न।'

'मीलू दी?'

'और क्या, मीलू दी ने ही तो सन्तू-अन्तू की शादी करायी, सारा खर्च उन्होंने ही किया। मीलू दी की वजह से ही तो आज फिर से बिलासपुर में सर ऊंचा किये खड़ा हूं, भाई। इन्हीं मीलू दी की वजह से एक बार हम लोगों के मुंह पर कालिख लगी थी, आज उन्हीं ने जैसे फिर से इज्जत बख्शी है। इस बार दुर्गा-पूजा पर आठ-सौ रुपये चंदा भेजा, सब लोग बड़े खुश हैं। यहां के 'लेपर-होम' के लिए पांच हजार रुपये देने को कहा है। जीजाजी के पास रुपये की तो कोई कमी है नहीं।'

'इतना रुपया कैसे हो गया?'

'बिजनेस में तो तेजी-मंदी होती ही है। इस समय जीजाजी के चढ़ती के दिन हैं, दोनों हाथ से रुपये कमा रहे हैं।'

मैंने पूछा, 'मीलू दी के बच्चे हैं?'

'वही एक लक्ष्मी है।'

ये सब काफी दिनों पहले की बातें हैं। मीलू दी की जिन्दगी के बारे में बात करके कोई हल ढूंढ नहीं पाया, ढूंढने की कोशिश भी नहीं की। अब समझ में आयी बात, कहानी और उपन्यास को फारमूले में कसा जा सकता है; इन्सान की जिन्दगी को फारमूले में कसना मुश्किल काम है। नहीं तो यही

मीलू दी जीजाजी के मर जाने के बाद अपना चलता धन्धा बन्द कर बिलासपुर क्यों आतीं ? कोतवाली के सामने आलीशान बंगला बनवाया है। स्वर्गीय पिताजी के नाम पर रखा है 'जानकी भवन'। जिन मामा को मीलू दी की ही वजह से अपमान और शर्म के मारे मरना पड़ा, वही जानकीनाथ बसु बिलासपुर में अमर हो गये। बिलासपुर में आज उनका बड़ा नाम है। मीलू दी ने उनके नाम पर अस्पताल खुलवा दिया है। ट्रेजरी के पास ही कचहरी के सामने दो-सौ बीघे जमीन पर खड़ा है—'जानकीनाथ मेमोरियल हास्पिटल'। हजारों मील दूर के आदमी को भी जानकीनाथ बोस का नाम मालूम है। सुनते ही नमस्कार करते हैं। 'बेटी दे, तो भगवान ऐसी दे।'

इसके अलावा गुण भी क्या कम हैं ?

महाराष्ट्रियों के गणेशोत्सव, मद्रासियों के पोंगल, बंगालियों की दुर्गा-पूजा, छत्तीस-गढ़ियों के छट्ठ-पर्व, हर त्योहार पर हजारों लोगों को कपड़े और खाना मिलता है।

जैसे बात खास पुरानी भी नहीं है। लेकिन इन्सान को समझता हूं, उसका काफी कुछ जानता हूं, इसलिए बड़ाई की भी जैसे सीमा नहीं है। क्या से क्या हो गया—सब सोचते-सोचते लगता है, जैसे कोई उपन्यास पढ़ रहा हूं।

लक्ष्मी की शादी पर यही सब सोच रहा था। मीलू दी की इकलौती लड़की लक्ष्मी। बड़े जोर-शोर से तैयारियां हो रही थीं।

मीलू दी को काफी दिनों बाद देखा। टसर की साड़ी पहने एक ओर बैठी थीं। कितनी ही सधवा-विधवा औरतें उन्हें घेरे थीं। पास ही लक्ष्मी बैठी थी।

जना दीदी कह रही थीं, 'अब तो कुछ खा ले मीलू। हम लोग तो हैं ही। सब ठीक हो जायेगा।'

कल मीलू दी को एकादशी थी। निर्जला एकादशी का व्रत करके अभी तक कुछ खाया नहीं था, इसलिए नाते-रिश्तेदार बड़े परेशान थे। लेकिन एक बात बड़ी अजीब लगी। सुबह से ही बंगले के चारों ओर पुलिस का कड़ा पहरा बैठ गया था।

फटिक से पूछा, 'इतनी पुलिस क्यों है रे ?'

'बाद में बतलाऊंगा।'

सारा घर जैसे चहक रहा था। अन्नू, नन्नू सभी आयी हैं। जमाई, भाई, भाभी, बहन, भतीजे, भतीजियां—सभी आये थे।

मीलू दी ने कहा, 'बच्चों को क्यों नहीं लाया ? कब से देखा नहीं है। बहू

को भी नहीं लाया ? बड़े होकर क्या पराये हो गये तुम लोग ?'

शाम के वक्त पुलिस का पहरा और भी बढ़ गया।

फटिक से पूछा, 'इतनी पुलिस क्यों है ?'

फटिक काफी व्यस्त था। फिर भी धीमे से कहा, 'कोतवाली के बड़े दरोगा से कहकर मीलू दी ने खुद्र यह इन्तजाम किया है।'

'क्यों ?'

'इसी लक्ष्मी की वजह से। भागलपुर में जब तक थी, बेचारी मीलू दी इसकी वजह से परेशान हो गयी थीं। कम उम्र है, अपना भला-बुरा नहीं समझ पाती। एक बार तो मोहल्ले के एक आवारा लड़के के साथ भाग निकली थी, बड़ी मुश्किल से वापस लाया गया।'

मुझे बड़ा अजीब लग रहा था।

फटिक कह रहा था, 'इसी वजह से शादी होने के बाद कड़ी निगरानी रखनी पड़ रही है। एक गुमनाम चिट्ठी भी आयी थी, इसीलिए मीलू दी ने अपने पास बैठा रखा है।'

'दूल्हे को पता है ?'

'हां, सब सुन कर ही शादी कर रहा है।'

'तब तो बड़ा अच्छा लड़का है।'

'रुपये से सब होता है भैया, सास की इकलौती लड़की। बाद में तो सब कुछ उसी को मिलने वाला है।'

खैर जो भी हो, धूमधाम से शादी हो गयी। बारात आयी। शंख बजे। मंगल-ध्वनि हुई। हजारों लोग कब खा-पीकर चले गये, पता ही नहीं लगा। सब कुछ मजे में हो गया। गड़बड़ होने की कोई बात थी भी नहीं, हुई भी नहीं।

मैं चुपचाप खिसकने की सोच रहा था।

लेकिन फटिक ने देख लिया, 'अभी से क्यों जा रहा है ? तुम्हारी गाड़ी तो कल सुबह है।'

'गाड़ी तो सुबह चार बजे ही है, लेकिन जाड़ों में इतनी सुबह उठकर स्टेशन जाना, फिर स्टेशन क्या पास ही है ?'

'सुबह गाड़ी से पहुंचा दूंगा।'

फिर भी मैं रुकने को राजी नहीं हुआ। खा-पीकर निकल पड़ा। रात को वेटिंग रूम में आराम से सोऊंगा। फिर ट्रेन आने की घंटी के बजते ही उठ जाऊंगा। जाड़े की रात। चार बजे घुप्प अंधेरा ही रहता है। बिलासपुर का अपर-क्लास वेटिंग-रूम सुनसान ही रहता है। दो-मंजिले पर है। ज्यादा लोग भी नहीं रहते।

सुबह की ट्रेन से जब भी जाता, इसी तरह रात वेटिंग-रूम में काट कर जाता। आज कोई पहली बार नहीं जा रहा था।

एक तांगा मंगवा कर स्टेशन के लिए चल दिया।

उस रात वेटिंग-रूम में जो कुछ देखा, उसके बाद लग रहा था कि मौलू दी वास्तव में एक कहानी बन गयी हैं।

वही कहता हूं।

तांगे का किराया चुकाकर, कुली के सर पर माल लदवाये वेटिंग-रूम में जा पहुंचा। वेटिंग-रूम एक तरह से खाली ही था। सिर्फ एक आदमी चारपाई पर लेटा था।

कुली से कह दिया था कि लाइन क्लीयर होने की घंटी बजते ही आकर उठा देना। इसके बाद सोने का इन्तजाम करने लगा।

सोने से पहले एक बार उस आदमी की ओर देखा।

फिर कहा, 'रोशनी आफ कर देने से क्या आपको कोई तकलीफ होगी ?'

वह आदमी जैसे सिटपिटा गया। बोला, 'क्यों ?'

'रोशनी होने पर मुझे नींद नहीं आती।'

'मैं जरा देर बाद ही चला जाऊंगा, साढ़े ग्यारह बजे मेरी गाड़ी है। आप इस चारपाई पर ही सो सकते हैं। बड़ी अच्छी चारपाई है। मैं सारे दिन इसी पर सोया रहा।'

कहकर वह अपना सामान बटोरने लगा, फिर एक कुली को बुलाकर चला गया।

मैं आराम से बत्ती बुझाकर उसी चारपाई पर लेट गया। बाहर सिर्फ जीने पर एक बत्ती जल रही थी। बड़ी ठण्डी रात थी। सारा बदन अच्छी तरह से कम्बल में लपेट कर कब सो गया, पता नहीं।

जब पता लगा, लग रहा था एक मिनिट भी नहीं बीता। गहरी नींद में दो घण्टे कब गुजर गये।

अंधेरे में ही अचानक किसी ने पुकारा, 'बाबूजी, बाबूजी!'

पहले तो कुछ समझ में नहीं आया। फिर लगा जैसे रामधन की आवाज थी। मामा का बूढ़ा नौकर रामधन। लेकिन इस समय मुझे क्यों पुकार रहा है? मैंने सिर्फ 'हूं' कर दी।

रामधन ने कहा, 'बीबीजी आपके ऊपर खूब गुस्सा हो रही हैं, एक बार गये क्यों नहीं! यह खाना भेजा है। और यह चिट्ठी।'

मुझे बड़ा अजीब लग रहा था।

रामधन कह रहा था, 'उधर काफी काम है। मैं चलूं। खाना रखा है। खा लीजिएगा, बीवीजी ने कहा है...'
सचमुच दो-एक बार और आवाज देकर रामधन चला गया। रात काफी हो चुकी थी। कई दिन से बेचारा बुरी तरह काम कर रहा था। बेचारे को इतनी रात में लौट कर जाना होगा।
जल्दी से उठ बैठा। लाइट आन की। टिफिन कैरियर खाने और मिठाई से ठसाठस भरा था। उसी के बीच थी एक चिट्ठी। चिट्ठी खोलकर देखा, मीलू दी की ही लिखावट थी।

कहानी अगर यहीं पूरी कर देता तो शायद अच्छा होता। लेकिन जो पूरा नहीं हो सकता उसे मैं जबरदस्ती पूरा कैसे कर सकता हूं ? आरम्भ से पहले जिस तरह आरम्भ है, अन्त के बाद भी अन्त होता है, यह मैं उस दिन तक नहीं जानता था। उस दिन जो जाना वही कहता हूं।
मीलू दी ने लिखा था :
'तुम्हारी सारी जिन्दगी इस तरह नाराजी में ही बीती, इससे आखिर फायदा क्या हुआ ? कल सुबह तक खाना खराब हो जायेगा, इसीलिए रामधन से भेज रही हूं। तुम्हारे लिए क्या समाज, लोक-लाज सब छोड़ दूं ? इतनी कीमती साड़ी भेजने की क्या जरूरत थी ? जैसी तुम्हारी लड़की, वैसे ही मेरी भी तो है। मैंने तो दिया ही है। मेरा देना और तुम्हारा देना क्या अलग है ? रात की ट्रेन से ही न चले जाना, काफी दिनों बाद आये हो, मिल कर जाना। तुम्हें तो मुझसे पैसे लेने में भी एतराज है। लगातार कितनी ही बार मनीआर्डर वापस आ गया। बात क्या है ? इस बुढ़ापे में मनाना होगा क्या ? तुम्हें देखनेवाला कोई नहीं है, यह बात ध्यान में रख कर अपनी सेहत का खयाल रखना...'
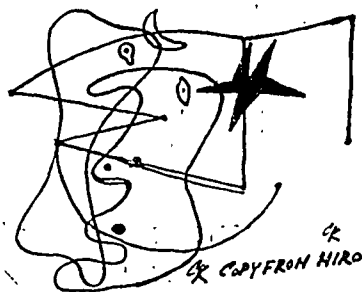
ज्योतिरिन्द्र नन्दी

टैक्सीवाला

बताइये, कैसे समझूं कि वह विधवा थी या सधवा ? महीन किनारी वाली अथवा किनारी रहित साड़ियां तो आजकल प्राय सभी पहनती हैं। यह तो स्टाइल है। चूड़ी न पहनना, मांग न भरना। सिन्दूर की रेखा को इस तरह घने बालो के बीच छुपाये रखना कि सर-से-सर टकराने पर ही शायद आपको पता चले कि यहां कुछ है।

इसके अलावा, वह बराबर अपने मुह को बाईं ओर ही किये बैठी रही, इसलिये उसकी माग नजर ही नही पड रही थी।

बाईं कलाई पर चूड़ी के बदले बच्चों की जुराबो के गार्डर की तरह पतले काले फीते में घड़ी बंधी थी।

नीचे रखे हाथ की जरा चपटी-सी पतली गोरी कलाई मे इमली की गुठली के मानिन्द छोटी-सी घडी को देखते-देखते, पता नहीं क्यो, मैंने उसकी उम्र का अन्दाजा लगा लिया था—यही तीस-बत्तीस। अट्ठाईस की भी हो सकती है, या जरा और कम चौबीस या फिर बाईस।

बाईस शायद कम ही हो जाती। सच तो यह है कि एक ओर वर्षा की कच्ची मूली की तरह पतली कोमल कलाई, और दूसरी ओर उसके मांसल पुष्ट पैर, उम्र के बारे में भ्रान्ति पैदा कर रहे थे।

कभी-कभी किसी लड़की की चिबुक और जबड़े को देखकर आप जिस उम्र का अनुमान लगायेंगे, गले या गर्दन पर नजर पड़ते ही आपका अनुमान गलत हो जायेगा। चिबुक पर अगर चौबीस साल उम्र लिखी हो, गर्दन को देखते ही आपको लगेगा, नहीं और ज्यादा, बत्तीस।

इस प्रकार की भ्रान्ति में एक बार मैं भी पड़ गया था।

कुर्सी के नीचे से उस लड़की के चप्पलों से निकले हुए पैर, जहां सफेद लेसयुक्त पेटीकोट ऊपर को उड़-उड़ जा रहा था, (असल में पंखा उसने इतनी जोर से चला रखा था कि लग रहा था, कमरे में तूफान उठा है) दो बार मैंने उस स्थान को अच्छी तरह ही देखा था। तांवे के रङ्ग का सख्त मांसल-पिण्ड। लेकिन इस तुलना में उसके हाथ शुभ्र कोमल और नरम लग रहे थे।

चुनांचे उसके हाथ जो उम्र बता रहे थे, उसके पैर ठीक उसका उल्टा।

किन्तु फिर भी मैंने उसके पैर की उम्र को रद्द कर दिया, क्योंकि तेज हवा के कारण उसका आंचल बार-बार जूड़े से खिसक-खिसक पड़ रहा था; तब मैंने उसके गले और गर्दन के सुन्दर और कोमल उतराव एवं रेखाओं को देखकर पूरी तरह से विश्वास कर लिया, कि उसकी उम्र चौबीस से ज्यादा नहीं है।

मुझे इतना सब देखने की सुविधा कैसे हुई? असल में मैं बहुत पहले ही चाय पीकर चुपचाप बैठा हुआ था। पर्दा लगे केबिन में बैठा कोई खा रहा है, यह मैंने रस्टोरेन्ट में घुसते ही अनुमान लगा लिया था। हालांकि पर्दे के अन्दर एक आदमी है या दो, यह अन्दाज मैं पहले नहीं लगा पाया था। लेकिन इस अन्दाज को न लगा पाना कोई खास बात नहीं है। लड़की अकेली है या साथ में कोई और भी है, यह बिना जाने कोई भी अक़्लमन्द आदमी रह नहीं सकता। मैं कुर्सी को एकदम घुमाकर, पर्दे पर आंखें गड़ाये, कुछ और आर्डर देने की सोचने लगा।

पुरुप-ग्राहक की आवाज सुनकर, या भगवान जाने क्यों, अचानक उसके केबिन का पंखा जोर से चलने लगा, और फिर तो न जाने कितनी बार पर्दा उठा और गिरा, और कितनी ही बार दरवाजे से हट-हट गया। जो लड़का चावल की प्लेट लेकर उधर की तरफ जा रहा था उसने शायद अन्दर के हुक्म से ही पर्दे को पार्टीशन के ऊपर कर दिया।

मैं देख रहा था। चावल की प्लेट के बाद, दाल की कटोरी उधर गई और फिर उबले हुए आलू भी।

अण्डा, मीट, कलिया, कोर्मा, दो-प्याजी और हिल्सा-भात की सुगन्ध से सारा रेस्टो-रेन्ट महक रहा था।

अन्य ग्राहकों की ओर से चाप, कटलेट, ग्रिल, मोगलाई पराठों के आर्डर दिये जा

रहे थे। रेस्टोरेन्ट काफी बडा था, लेकिन उस केबिन के डिश में दाल, चावल और आलू के अतिरिक्त और कुछ नहीं गया—यह देखकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ। हालांकि यह कोई खास बात नही है। अवस्था और रुचि के अनुसार खाने-पीने की अपनी-अपनी पसन्द होती है।

एक सिगरेट खत्म करने के बाद मैंने कटलेट के लिये आर्डर दिया।

सामने के केबिन मे लडकी खाना खा रही हो तो उसकी तरफ मुह फाडे देखना, कुर्सी दखल किये बैठे रहना, अशोभन लगता ही है। मैं अधिक खर्चे पर उतर आया था।

लड़के को बुलाया। जिस उद्देश्य से मैंने लडके को गला फाडकर बुलाया था, उसमें भी कामयाबी हासिल हुई। दो बार उसने गर्दन घुमाकर मेरी ओर देखा। एक लडकी के प्रति मैं इस कदर उत्सुक क्यो हू, आप लोगो के मन मे यह प्रश्न जागना स्वाभाविक है। आप सोच रहे होगे, यह आदमी कितना बदमाश है, आवारा है।

असल में मैं ऐसा कुछ नही हू, मैं टैक्सी चलाता हू। जो टैक्सी चलाते हैं, उनकी आंखें और कान हर समय सचेत रहते हैं। कब कौन बुलाता है, कब किसे हठात् टैक्सी की जरूरत पडे, क्या मालूम ? हा, मुझे शुरू में ही ऐसा लग रहा था कि खाना खा चुकने के तुरंत बाद ही इस लड़की को टैक्सी-वैक्सी की जरूरत पड सकती है।

आप लोग दबी हंसी हंस रहे है न ? लेकिन यह तो आप मानेंगे ही, कि रोजाना मुसाफिरो को इधर-उधर ले जाने वाले को, किस समय और किसे टैक्सी की जरूरत है, सड़क पर चलते आदमियो के चेहरे व आंखो को देखकर ही वह आप लोगो से कुछ अधिक भांप सकता है।

हां, आठ साल से मैं कलकत्ता शहर में टैक्सी चला रहा हू। मेरी अपनी गाड़ी है। इस व्यवसाय के लिये ही मैंने यह गाडी खरीदी, सो बात नहीं है। बल्कि गाड़ी मे बैठकर मजे मे हवा-खोरी करूंगा, इस मतलब से ही यह गाड़ी खरीदी थी।

हम्बर, यह मेरी नम्बर वन गाड़ी है साहब। वैसे इस गाड़ी में बैठकर घूमने का शौक मेरे पिताजी को ज्यादा था, लेकिन खरीदने के एक साल बाद मेरे पिताजी की मृत्यु हो गई। मैं उन दिनो फटेहाल था, जमा-पूजी प्रायः खत्म हो चुकी थी। जमींदारी मे तो कई सालो से घुन लग गया था।

फिर क्या, एक मात्र गाड़ी और अपनी पत्नी रमा को लेकर मैं हिन्दुस्तान अर्थात् कलकत्ते में अपने बड़े मामा के घर पर आ हाजिर हुआ। एकडालिया रोड में

उनका मकान है।

गाड़ी और (मुझे संकोच नहीं) रमा दोनों ही प्रायः नई ही थीं। गाड़ी खरीदने के छः महीने पहिले ही तो मैंने शादी की थी।

खैर, अब जमींदार का बेटा नौकरी पेशेवाले मामा के मत्थे पेट भरेगा, और वह भी अकेला नहीं, सपत्नी, अत्यन्त निन्दनीय बात है। मैं समझता था। इसके अतिरिक्त, मामा यह बोझ सम्भाल भी तो नहीं पाते।

किसी तरह अक्ल भिड़ाकर बहू को उसके ममिया-श्वसुर के जिम्मे कर दिया और गाड़ी लेकर खुद निकल पड़ा।

टैक्सी का लाइसेन्स लेकर (किसी तरह सरकारी नौकरी करनेवाले मामा ने ही इधर-उधर की भिड़ाकर लाइसेन्स निकलवाने में सहायता की थी) दो पैसे कमाने लगा।

आफिस में लिखा-पढ़ी की नौकरी के लायक मेरी विद्या नहीं थी साहब, यह मैं पहले से ही आपको बता दूं। जमींदार का बच्चा, दूध मलाई और मछली खाकर अपनी प्रजा पर आंखें नीली-पीली करके जमींदारी चलाऊंगा, यह स्वप्न देखता हुआ ही मैं बड़ा हुआ हूं, पर यह सुख तो मेरे भाग्य में था नहीं।

हां, मैं और मेरी गाड़ी जब रात-दिन कलकत्ता शहर छान रहे थे, तब एकडालिया रोड में रमा भी चुप नहीं बैठी थी।

पाकिस्तान से वह भी नई-नई आई थी इस अजीब शहर में। गाड़ी अगर एकडालिया रोड के मकान में यों ही पड़ी रहती, तो मेरे मामा विकास राय की लड़की टूनी (फर्स्ट ईयर में पढ़ती है) उसे व्यवहार में लाती, सो भी क्या एक-दो बार ही? इस बात का तो मुझे इस घर में आते ही पता चल गया था। कालेज की नई हवा लगी थी टूनी को, और फिर वह देखने में भी बड़ी मीठी थी, तिस पर हाल ही में वसन्त की हवा लगी थी उसे, सोलहवें वसन्त की हवा। अरे साहब! वह क्या आपे में थी? टूनी को अपने मित्रों से ही फुर्सत नहीं मिलती थी। विकास बाबू एक कार खरीदने की बात बहुत दिन से सोच रहे थे, लेकिन नौकरी पेशावालों के लिये कभी-कभी यह सम्भव नहीं होता, वह भी उनकी ग्रेड में। तो समझ लीजिये, अपने घर में ही लगे हाथ गाड़ी मिल जाने से दिल खोलकर उसने घूमना शुरू कर दिया। गाड़ी अपने साथ अगर न लाता, तो क्या हालत होती? गाड़ी को तो मुक्ति मिल गई, लेकिन रमा को छुटकारा नहीं मिला। गांव से नई-नई लड़की आई है, वह भी एकडालिया रोड जैसे फैशनेबल पड़ोस में, तिस पर रमा देखने में वहां की बहुत-सी लड़कियों से सुन्दर थी और हाल ही में तो उसकी शादी हुई है, अभी-अभी यानी......

'भाभी, भाभी...'

हां, विक्रम राय का बड़ा लड़का बेनू राय। कितना पाजी है साहब! वैसे शक्ल से लगेगा, माल धमड़ लगाइये, मुंह से 'रा' भी नहीं निकालेगा, जैसे कुछ भी नहीं जानता है बेचारा, लेकिन भीतर-ही-भीतर एक नम्बर का पाजी।

'भाभी...भाभी!'

मैंने कहा न, टूनी मेरी कार का उपयोग करती थी, और बेनू हरामजादा उपयोग करने लगा मेरी बीवी रमा का। हां, यही एक यथार्थ शब्द है। भाभी के बगैर चाय नहीं पी सकता, बाबू साहब का बिस्तर ठीक नहीं रहता, भाभी टेबिल पर किताबें ठीक करके न रखे तो किताबें ठीक नहीं रहतीं। धोबी के धुले कपड़े आये तो सूटकेस में उनको रखने की जिम्मेदारी भाभी की, और जब जिस कपड़े की जरूरत हो, उसे निकाल के देना है, वो भाभी को ही। खाना खाने के बाद पान या मीठा मसाला देगी तो भाभी, बाथरूम जाते हुए तौलिया साबुन थमायेगी, तो भाभी।

क्यों न हो साहब! रात-दिन मरी-मरी लड़कियों को देखता था। समर्थ लड़कियां समर्थ पुरुषों पर डोरा डाल रही थीं; एक साथ घूमना, एक साथ सिनेमा देखना।

मैं तो पहले भी कलकत्ता आया था, पर इस बार पाकिस्तान छोड़कर जब आया तो यहां की हालत देखकर मेरे देवता कूच कर गये। एकडालिया रोड जैसे बाबुओं के पड़ोस में अबाध मिलने-जुलने की जैसे बाढ़ आई हो, लेकिन हमारे बेनू बाबू कुछ जोगाड़ नहीं कर पा रहे थे। बाप की हालत और दस बच्चों के बाप-जैसी तो नहीं थी न? आप तो अनुमान लगा ही सकते हैं। नवाबो-जमींदारों जैसी अवस्थावाले घरों के लड़कों की संख्या वहां बहुत है। वे ही सब लूट रहे थे। अपना मकान है, कार है, प्राय. सभी लड़कों के हाथों में एक नहीं, दो-दो हीरे-पन्नों की अंगूठियां हैं। और बेनू बाबू के बाप पुराने पड़ोस के बड़े आदमियों के साथ मुकाबला करते हुए किराये के फ्लैट में किसी तरह रह रहे थे, बस।

लड़का और लड़की, दोनों, अभाव में दिन काट रहे थे। टूनी को एक गाड़ी नहीं मिल रही थी, कि वह अपने मित्रों से मिलने जा सके।

वाह, कैसे सब मित्र हैं! हाथी बागान या शिमला स्ट्रीट से एक दिन एक लड़का आया था, इस घर में। फटी चप्पल, कंधे से लटका हुआ फटा मैला-सा कुरता, पता चला, वह टूनी का 'लेटेस्ट' है। आखिर जो अवस्था लड़की के घर की हो गई थी, इससे अच्छा लड़का वह कहां से ढूंढ कर लाती।

दूसरी ओर वेनू बाबू भुगत रहे थे। कुछ दिन से ही दाढ़ी-मूंछ बनवाने ल हैं। कालेज से अभी एक ही परीक्षा पास की है। मलमल का कुरता भी त पर पहना है। पैरों में हिरन छाल की चप्पलें, कुरते के वटन-होल में कभी-कभ फूल भी लगा लेते हैं और वालों में सुगन्धित तेल भी। लेकिन वस यहीं तक और अधिक नहीं। पर्स में दो-चार रुपये डाले घूमा करते थे सब-डिप्टी के वेटे इतने-से दिखावे के बल पर वहां की लड़कियों से प्रेम करना? मुझे लगता है, कि उस मुहल्ले की किसी लड़की के वालों के छोर को भी वह स्पर्श नहीं कर पाया होगा।

और उसका वदला लिया उसने रमा से। हां मेरी बीवी से। रिश्तेदारी भी थी ही, औरत तो खैर थी ही। अभी अठारहवां साल ही लगा था रमा को। वेनू को भी वह कहां मिली? रास्ते में नहीं, अपने घर में, एकदम हाथ की मुट्ठी में।

'भाभी, भाभी!' यानी भूखे शेर को हिरणी दिख गई। 'क्या?'... नहीं, मैं रमा को अधिक दोष नहीं देता। इस उम्र में उसकी क्या समझ या बुद्धि हो सकती है? गांव में रहकर, पढ़-लिखकर कुछ तेज-तर्रार बनती, वह अवसर भी उसे नहीं मिला था। पिता की लाड़ली बेटी, माघ मंगल व्रत रखती थी और दीवाली की रात को हजार बत्तियां, और रंगीन आतिशबाजियां जलाने के समय ही, अचानक एक दिन शादी हो गई। और फिर कोई शैतान अगर एक लड़की के ऊपर चौबीस घन्टे अपना निःश्वास छोड़ता रहे...!

एकडालिया रोड के मकान के सोने के कमरे, बाथरूम, बगीचे ओर छत ने रमा का आधा दिमाग खराब कर दिया था, और आधा दिमाग खराब कर दिया था शहर के होटल-रेस्टोरेन्ट ने। और भी न जाने कौन-कौन-सी जगह वेनू उसे ले गया था, पता नहीं।

इधर मुझे गाड़ी लेकर वाहर-बाहर रहना पड़ रहा था। रोजगार-धन्धे के लिये मैं वेखबर था। लेकिन जब पता चला, तब सब खत्म हो चुका था। नहीं, मुझे सान्त्वना मिलती, अगर बेनू उसे लेकर कहीं भाग जाता। कहीं घर-गृहस्थी जमाता, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसकी ऐसी इच्छा भी नहीं थी। शायद यह सब रिवाज अब इस शहर से उठ गया है।

एकडालिया रोड वाला मकान मैंने छोड़ दिया था। मुझे जरूरत नहीं थी। रमा भी वहां नहीं थी, यह मैं जानता था। नारकेलडांगा के पास ही कहीं किराये के एक टीन-शेड में टैक्सी लेकर मैं रहने लगा। उन्हीं दिनों मुझे खबर मिली थी कि रमा धर्मतल्ला के किसी 'बार' में रात को शराब पीकर बेहोश पड़ी है। वेनू